पंजाब यूनिवर्सिटी की 'रत्न' परीक्षा में नियत

पुष्प-पराग

सटीक

शब्दार्थ, भावार्थ और व्याख्या सहित।

सम्पादक

टेकचन्द शास्त्री एम. ए., एम. ओ. एल.

दोआबा कालेज

जालंधर

प्रकाशक

भा र ती-स द न

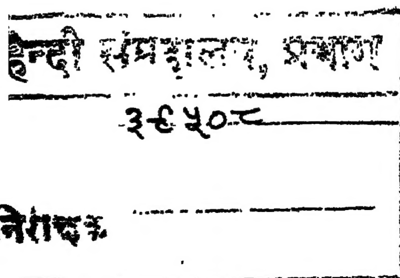
२० मॉडल बस्ती,

दिल्ली।

मूल्य सजिल्द का ३।।) तीन रुपया आठ आना

प्रकाशक :
भारती-सदन
२० मॉडल बस्ती,
दिल्ली ।

प्रथम बार १९५४ द्वितीय बार १९५५



मुद्रक :
युगान्तर प्रेस,
डफ़रिन पुल, दिल्ली ।

प्राक्कथन

कविता का उद्देश्य है—रमण-वृत्ति। रमण-वृत्ति का व्यापार प्राचीन कवियों की अनुभूति-प्रधान कविताओं में ही मिल सकता है। इसलिए इस संग्रह में वीर-गाथा-काल के कवियों से लेकर रीतिकाल के विशेष-विशेष कवियों की मधुर एवं प्रसादमयी कविताओं का संग्रह किया है। चन्दबरदाई की कविताएँ बहुभाषामर्मज्ञ विद्वानों को ही बुद्धिगम्य हैं, और इस संग्रह का उद्देश्य सुकुमारमति रसिकों को लाभ पहुँचाना है, इसलिए चन्द को केवल चयनिका में ही स्थान दिया गया है। यहां अमीर खुसरो की मनोरंजनात्मक कविताओं को प्रथम स्थान दिया गया है क्योंकि इनके पढ़ने से विनोद की उपलब्धि के साथ-साथ बुद्धि में तीव्रोत्पादक शक्ति भी पैदा होती है। रसिक वृन्द खुसरो की पहेली एवं मुकरियों द्वारा विनोद-सरिता में स्नान करके कबीर की उपदेशमयी कविताओं से जीवन में आनन्द की उपलब्धि प्राप्त कर सकेंगे। कबीर की कठिन रहस्यवादात्मक निगूढ़ कविताओं को इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया।

श्री गुरुनानक देव ने एकेश्वरवाद को मानते हुए साम्प्रदायिकता के झमेले को दूर करने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार की कविताओं को इस संग्रह में स्थान दिया गया है। तुलसीदास के परम प्रसिद्ध, विशाल रामचरितमानस, दोहावली आदि ग्रन्थों से, हिन्दी-साहित्य में प्राचीन कवि प्रकृति-चित्रण किस प्रकार करते थे, इसको स्पष्ट करने के लिए वर्षा तथा शरद्-ऋतु-वर्णन दिये गये हैं, और दोहावली से उपदेश-

परक एवं सुगम दोहे भी दिये गये हैं।

सूरदास के विनय-पद, वात्सल्य रस एवं विप्रलम्भ का वर्णन, साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। अतः तीनों प्रकार की सरस एवं सरल कविताओं का संग्रह यहाँ मिल सकेगा।

मीरा प्राचीनकालीन अनुभूतिगम्य भक्ति-रस-स्नातिका है। उसकी भक्तिपरक कविताओं को स्थान न देने से यह संग्रह अधूरा रह जाता, अतः इसकी प्रेम तथा भक्तिमयी कविताओं की झलक यहाँ विशद रूप से मिल सकेगी।

मुसलमान (पठान) होते हुए भी रसखान की कृष्ण-विषयक भक्ति-भावना कितनी ऊँची थी, इसका दिग्दर्शन उसके मनोरंजक सवैयों द्वारा किया गया है।

रहीम के दोहे नीतिपरक तथा सन्मार्ग-प्रदर्शक होने के कारण नहीं छोड़े जा सकते थे, अतः उत्कृष्ट कोटि के भाव वाले चुने हुए दोहों को यहाँ संग्रहीत किया गया है।

बिहारी शृङ्गार रस का तो कवि था ही, पर इसके साथ-साथ उसका पाण्डित्य अन्य विषयों पर कुछ कम जादू-सा असर न रखता था। इस कथन को पुष्ट करने के लिए हमने हास्य एवं नीतिपरक दोहों का संग्रह करके पाठकों को बिहारी की विशेषज्ञता से परिचय करा दिया है।

वृन्द की बनाई हुई 'वृन्द-सतसई' में दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि संसार में मानव व्यवहार-निपुण कैसे हो सकता है। क्योंकि कविता का लक्ष्य निर्दिष्ट करते हुए बताया गया है कि कविता 'व्यवहारविदे' अर्थात् कविता का जानना व्यवहार-ज्ञान के लिए होता है। अतः वृन्द को यहाँ स्थान देना परमावश्यक था। मतिराम की कविताएँ कृष्णभक्ति के चित्रण तथा व्यावहारिक ज्ञान के विषय में

विशेषता रखती हैं, अतः उसकी सरस कविताओं की भी यहाँ झलक दिखला दी है। कौन नहीं समझता कि रसनिधि के दोहे और गिरिधर की कुण्डलियाँ जगत् का यथार्थ रूप दिखलाने के लिए हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं? अतः जगत् का वास्तविक रूप दिखानेवाली कुण्डलियों से पाठकों के ज्ञान में कितनी वृद्धि होगी इसको पाठक स्वयं समझ सकेंगे। पाठकों के लाभार्थ विभिन्न कवियों के, चयनिका में, उपदेशात्मक, व्यावहारिक, धार्मिक एवं मनोरंजक दोहे भी दिये गये हैं।

इस प्रकार विशेष-विशेष कवियों की, विशेष महत्त्व रखने वाली सरल, सरस एवं प्रसादमयी कविताओं का यह संग्रह सहृदयों के हृदय की अन्तस्थली को उल्लसित करेगा।

कविता के श्रेय और प्रेय दोनों रूपों की यहाँ झलक मिलेगी। सब कविताओं की 'सार और आलोचना' भी दे दी गई है जिससे पाठकों को कविता के रसपान में विशेष आनन्द मिल सके और वे उन कविताओं की सरसता अनुभव कर सकें। साहित्य के अरुणोदय के समय आदर्श कवियों की कविता-पुष्प-पराग की सुगन्धि, शीतल मलयानिल द्वारा विद्वानों के मस्तिष्क को सदा सुवासित करती रहेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। पाठकों से त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करता हूँ।

—टेकचन्द

नोट—प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक दोहे के नीचे ही उसमें आये हुए कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं, और साथ ही सम्पूर्ण दोहे का भावार्थ खोलकर रख दिया गया है। इससे यह पुस्तक सर्वगुण-सम्पन्न हो गई है इसलिए छात्रों को इसकी कुंजी आदि लेने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। जहां आप मूल का अध्ययन करेंगे वहां आपको साथ-ही-साथ उसकी व्याख्या भी मिल जायेगी।

प्रकाशक

विषय-क्रम-निर्देश

अमीर खुसरो

परिचय

जन्म-संवत् १३१२ मृत्यु-संवत् १३८२

आपका जन्म १३१२ में हुआ। मुसलमान कवि होने पर भी खड़ीबोली के प्रथम कवि होने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त है। संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, ब्रज, खड़ीबोली और अवधी आदि भाषाओं पर आपका पूरा अधिकार था। आपने 'ख़ालिकबारी' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अरबी, फ़ारसी और तुर्की आदि शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी-शब्द पद्य में बताये गये हैं। आपकी शैली तत्कालीन कवियों की छाया पर आश्रित नहीं है, प्रत्युत अपनी प्रतिभा पर ही अवलम्बित है। आपकी पहेलियाँ, मुकरियाँ और ढकोसले हिन्दी-साहित्य की अक्षय सम्पत्ति हैं। आपका देहावसान १३८२ में हुआ।

पहेलियाँ, मुकरियाँ और ढकोसले

सार तथा आलोचना

आपकी पहेलियों में उत्सुकता से पूर्ण, बुद्धि को तीव्र करने वाली भावना सजग रूप से विद्यमान है। पाठकों के हृदय में क्षण-भर के लिये यह उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि यह क्या वस्तु हो सकती है ? वहीं उत्तर मिलने पर उत्कण्ठा तत्काल शान्त हो जाती है और आनन्द की लहर हृदय में हिलोरें मारने लगती है। इसी प्रकार मुकरियों में भी छेकापन्हुति मिलती है अर्थात् किस प्रकार एक सच्ची बात को छिपाकर झूठी बात की स्थापना की जा सकती है। ढकोसले और गीत भी ऊटपटाँग होने के कारण मनोरंजक हैं।

आपकी कविता की विशेषता खड़ीबोली का विकास करना है। मनोरंजन के साथ-साथ बुद्धि को चमत्कारिणी बनाना भी आपका ध्येय है। हिन्दी में हास्य-रस का उद्गम भी आपकी कविताओं से होता है।

पहेलियाँ

मिला रहे तो नर रहै, अलग होय तो नार।
सोने के सा रंग है, कोई चतुरा करे विचार॥ (चना)

शब्दार्थ—नर=मनुष्य (यहाँ पर प्रयोजन पुँलिंगवाचक संज्ञा से है) नार=वार, स्त्री (यहां स्त्रीलिंगवाचक संज्ञा से प्रयोजन है)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो यदि मिली रहे तो पुरुष (वाचक) हो जाती है और अलग हो जाय तो स्त्री (लिंगवाचक) हो जाती है। उसका रंग सोने के समान पीला है। कोई चतुर मनुष्य विचार कर बताये कि ऐसी वस्तु कौन-सी है। इस पहेली का उत्तर 'चना' बताया गया है क्योंकि उसके दोनों भाग अलग-अलग कर दिये जायँ तो उस चने की 'दाल' बन जाती है। 'दाल' स्त्रीवाचक संज्ञा है। अतः

कहा गया है कि अलग होने पर वह स्त्री बन जाती है। चने की दाल का रंग सोने जैसा पीला होता ही है।

एक नार तरवर से उतरी, वाके सर पर पाँव।
ऐसी नार कुनार को, मैना देखन जाव॥ (मैना)

शब्दार्थ—तरवर=वृक्ष (इसका शुद्ध रूप तरुवर है)। वाके= उसके। कुनार=बुरी स्त्री। देखन=देखने के लिए। मैना=मैं नहीं और मैना नामक पक्षी।

भावार्थ—एक स्त्री वृक्ष से उतरी जिसके सिर पर पाँव हैं। ऐसी कुनारी-स्त्री को मैं नहीं देखने जाता। पहेली के उत्तर में इसका अर्थ होगा ऐसी नारी को देखना है तो मैना को देखो।

मैना वृक्षों पर रहती है। उसके सिर पर (पंख) और पाँव होते हैं। 'मैना' शब्द स्त्रीवाचक है। इसलिए उसे स्त्रीलिंग के रूप में सम्बोधित किया गया है।

आवे तो अंधेरी लावे, जावे तो सब सुख ले जावे।
क्या जानूँ वह कैसा है, जैसा देखो वैसा है॥ (आँख)

भावार्थ—वह जब आती है तो अंधेरी या अंधापन ला देती है। यदि वह चली जाये तो सब सुख अपने साथ ही ले जाती है। अमीर खुसरो कहते हैं कि मैं क्या जानूँ वह कैसी है। तुम उसे जैसी देखते हो वह वैसी ही है। इस पहेली का उत्तर 'आँख' बताया जाता है, क्योंकि यदि आँख आ जाय अर्थात् आँखें दुखने लग पड़ें तो आँखों में अंधापन छा जाता है। और यदि आँख चली जाय तो सब सुख चला जाता है। उसका वर्णन कोई क्या करे कि वह कैसी है। उसको तो प्रत्यक्ष देख लो। जैसी है वह अपने आप दीख जाती है।

सावन भादों बहुत चलत है, माघ पूस में थोरी।
'अमीर खुसरो' यों कहे, तू बूझ पहेली मोरी॥ (मोरी)

शब्दार्थ—**पूस**=पौष का महीना। **बूझ**=बता। **मोरी**=मोरी और नाली।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो सावन-भादों में तो बहुत चलती है पर पौष और माघ के महीने में कम चलती है। अमीर खुसरो कहते हैं कि तुम मेरी इस पहेली का सोच समझ कर उत्तर दो। इसका उत्तर मोरी या नाली है। मोरी सावन भादों में बरसात के दिनों में खूब चलती है। बरसात में मोरियों में पानी खूब बहता है। इसके विपरीत पौष माघ में वर्षा कम होने से या न होने से मोरियाँ थोड़ी चलती हैं—उनमें पानी कम बहता है।

नारी से तू नर भई, औ' श्याम बरण भइ सोय।
गली गली कूकत फिरे, कोइलो कोइलो लोय॥ (कोयला)

शब्दार्थ—**भई**=हो गई। **औ**=और। **श्याम**=काला। **बरन**=रंग। **कोइलो**=कोई ले लो अथवा कोयला। **लोय**=लोग।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि तू स्त्री से तो पुरुष बन गई और रंग भी तेरा काला हो गया है, अब तुझे लोग अपने साथ लिये 'कोइलो, कोइलो' कह कर चिल्लाते हैं। इसका उत्तर 'कोयला' बताया गया है। क्योंकि लकड़ी से कोयला बनता है। लकड़ी स्त्रीलिंगवाचक संज्ञा है और कोयला पुँल्लिंगवाचक संज्ञा है, इसलिए कहा गया है कि लकड़ी कोयला बन जाने पर स्त्री से पुरुष हो गई। कोयले का रंग तो काला हो ही जाता है। कोयला बेचने वाले लोग अपने साथ कोयलों को लिये हुए कोइलो-कोइलो की आवाज़ लगाते फिरते हैं। (व्रजभाषा में और राजस्थानी में ओकारान्त शब्दों का प्रयोग होता है अतः 'कोयले' के स्थान पर 'कोइलो' शब्द ठीक ही है) 'कोइलो' पद से पहेली का उत्तर भी दे दिया गया है।

झिलमिल का कुआँ, रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ, नहीं दूँगी गारी॥ (दर्पण)

शब्दार्थ—**झिलमिल**=झिलमिलाहट, प्रकाश। **रतन**=हीरे जवाहरात।

भावार्थ—एक जगमगाहट या प्रकाश का कूआँ है। उसके चारों ओर हीरे, जवाहरात, रत्न आदि की क्यारियाँ हैं। यदि बता सकते हो कि वह कौन-सी वस्तु है तो बताओ, नहीं तो गाली दूँगी। इसका उत्तर 'दर्पण' बताया गया है। दर्पण या शीशा मानो प्रकाश का कूआँ है। उसकी चौखट पर चारों ओर जड़े हुए कांच के टुकड़े मानो रत्न आदि पदार्थों की क्यारियाँ हैं।

बाला था जब सब को भाया, बढ़ा हुआ कछु काम न आया।
'खुसरो' कह दिया इसका नाँव, अर्थ करो या छोड़ो गाँव॥ (दिया)

शब्दार्थ—**बाला**=बच्चा और जलाया। **भाया**=अच्छा लगा। **बढ़ा हुआ**=आयु में बड़ा हुआ अथवा बुझा दिया गया।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जो जब तक बच्चा थी तब तक सब को अच्छी लगती थी, पर जब बड़ी हो गई तो किसी काम न आई। खुसरो ने इसका नाम कह दिया है। इस पहेली का अर्थ बताओ या गाँव छोड़ दो। इसका अर्थ 'दिया' बताया गया है। दिये के पक्ष में बाला का अर्थ जलाया और 'बढ़ा हुआ' का अर्थ 'बुझाया' कर देने पर इस पहेली का अर्थ इस प्रकार होगा कि दिये को जब जलाते हैं तो वह सब को अच्छा लगता है और जब बुझा देते हैं तो वह किसी काम नहीं आता। 'कह दिया' इस पद में 'दिया' शब्द कह कर पहेली का उत्तर भी अपने आप बतला दिया गया है।

श्याम बरन पीताम्बर काँधे, मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोय॥ (भौंरा)

शब्दार्थ—**श्याम**=काला। **बरन**=वर्ण—रंग। **पीताम्बर**=पीला वस्त्र। **मुरलीधर**=मुरली—वंशी को धारण करने वाले श्रीकृष्ण।

नाद=शब्द। **बिरला**=कोई-कोई।

भावार्थ—एक जीव ऐसा है जिसका रंग श्याम है और जिसके कंधे पर पीताम्बर है। पर वह मुरली धारण करने वाला श्रीकृष्ण नहीं है। वह बिना ही वंशी के वंशी की ध्वनि करता है। ऐसा वह जीव कौन-सा है इस बात को कोई विरला ही समझ सकता है। इसका उत्तर 'भौंरा' बताया गया है। क्योंकि भौंरे का रंग काला होता है। उसके ऊपर पीली धारी होती है, वही पीताम्बर है। वह गूँजता रहता है, यही उसकी वंशी-ध्वनि है।

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने खूब रिझाया।
बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा आधा नाम है ओरी।
'अमीर खुसरो' यों कहे बूझ पहेली मोरी॥ (निंबोरी)

शब्दार्थ—**तरवर**=पेड़, वृक्ष, तरुवर। **तिरिया**=स्त्री।

भावार्थ—वृक्ष से एक स्त्री उतरी, जिसने सबको बहुत प्रसन्न किया। उसके पिता का नाम पूछा गया तो उसने अपना आधा नाम पिता का बताया। उसका आधा नाम अपने पिता पर है, आधा नाम 'ओरी' है। अमीर खुसरो कहते हैं कि मेरी इस पहेली को बूझो। इस पहेली का उत्तर 'निम्बोरी' बताया गया है। निंबोली नीम के वृक्ष से गिरती है। स्त्रीलिंग-वाचक संज्ञा होने के कारण उसे तिरिया—स्त्री कहा गया है। 'निंबोरी' शब्द में उसके पिता नीम का आधा नाम 'निम्ब' है और उसके साथ ओरी जोड़ने से निंबोरी बना। इसलिये इस पहेली का उत्तर निंबोरी ठीक ही है।

आदि कटे ते सबको पारै, मध्य कटे ते सबको मारै।
अन्त कटे ते सबको मीठा, सो 'खुसरो' मैं आँखों दीठा॥ (काजल)

शब्दार्थ—**आदि**=पहला। **पारै**=पालन करे। **मध्य**=बीच का। **अन्त**=आखिरी। **दीठा**=दीखा।

भावार्थ अमीर खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जिसका पहला अक्षर कट जाय तो वह सबका पालन करने वाला बन जाता है, यदि उसका बीच का अक्षर कट जाय तो सब को मारने वाला बन जाता है, यदि उसका अन्तिम अक्षर कट जाय तो सबको प्यारा लगने लगता है। कवि कहता है कि मैंने उसे आँखों से देखा है, बताओ वह क्या वस्तु है। इसका उत्तर 'काजल' दिया गया है। 'काजल' का पहला अक्षर (का) कट जाय तो जल रह जाता है जो सबका पालन करता है। यदि उसके बीच का अक्षर 'ज' हटा दिया जाय तो 'काल' बन जाता है जो सब को मार डालता है। यदि उसका अन्तिम 'ल' काट दिया जाय तो काज बन जाता है। काज या कार्य सबको प्रिय लगता है। अमीर खुसरो कहते हैं कि उस वस्तु को मैंने आँखों में देखा है। काजल आँखों में होता है।

एक नार कूएँ में रहे, वाका नीर खेत में बहे।
जो कोई वाके नीर को चाखे, फिर जीवन की आस न राखे॥ (तलवार)

शब्दार्थ—नीर=जल।

भावार्थ—एक स्त्री कुएँ में रहती है। उसका जल युद्ध-क्षेत्र में बहता है, जो कोई उसके पानी को चख लेता है वह फिर जीवन की आशा नहीं रखता इसका उत्तर 'तलवार' दिया गया है। क्योंकि तलवार रूपी नारी म्यान रूपी कुएँ में रहती है। उससे बहाया हुआ खून रूपी जल युद्ध-क्षेत्र में बहता है अथवा तलवार का पानी (धार) युद्ध-क्षेत्र में बहता या चमकता है। तलवार के इस पानी को जो कोई चख लेता है वह मर ही जाता है।

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे॥ (आकाश)

शब्दार्थ—औंधा=उल्टा।

भावार्थ—एक थाल मोतियों से भरा हुआ है। वह सबके सिर पर

उलटा पड़ा हुआ है, चारों ओर थाली फिरती है फिर भी उसमें से कोई मोती नहीं गिरता। इसका उत्तर 'आकाश' दिया गया है क्योंकि आकाश रूपी थाल तारे रूपी मोतियों से भरा हुआ है और वह सबके ऊपर उल्टा पड़ा हुआ है, फिर भी उसमें से तारारूपी मोती एक भी नहीं गिरता।

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥ (ताला)

शब्दार्थ—ठठोली=हँसी-मज़ाक।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि यह बात की तो बात है और हँसी की हँसी है कि पुरुष की गाँठ औरत ने खोली। इसका उत्तर 'ताला' दिया गया है। ताले रूपी पुरुष की गाँठ 'चाबी' रूपी स्त्री खोलती है।

उज्वल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान॥ (बगुला)

शब्दार्थ—उज्वल=सफ़ेद। अधीन=विनयी, नम्र। तन=शरीर। साधु=सज्जन। निपट=बिल्कुल, सर्वथा।

भावार्थ—एक जीव ऐसा है, जिसका रंग बिल्कुल सफ़ेद है और जो बड़ा विनयी है। उसका चित्त तो एक है पर ध्यान दो में लगा रहता है। देखने में तो वह बड़ा सज्जन प्रतीत होता है पर वास्तव में बिलकुल पाप की खान है, इसका उत्तर 'बगुला' है। बगुले में ये बातें पूरी-पूरी घटती हैं।

एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम न पायो।
बाप को नाम जो वासे पूछ्यो आधो नाँव बतायो।
आधो नाँव बतायो 'खुसरो' कौन देस की बोली।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैंने अपना नाँव न बोली॥ (निंबोरी)

भावार्थ—एक स्त्री वृक्ष से उतरी, उसका जन्म माँ से नहीं हुआ है। उससे उसके पिता का नाम पूछा तो उसने अपना आधा नाम 'निम्ब' बताया, मैंने जो उससे उसका अपना नाम पूछा तो वह अपना नाम कुछ न बोली, अथवा उसने अपना नाम 'निंबोली' वता दिया। पहले आई हुई 'निंबोली' की पहेली के समान इसमें भी सब बातें घटती हैं।

श्याम बरन और दाँत अनेक, लचकत जैसे नारी।
दोनों हाथ से 'खुसरो' खींचे और कहूँ तू आरी॥ (आरी)

शब्दार्थ—श्याम=काली। बरन=रंग। अनेक=बहुत-से।

भावार्थ—खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जिसका रंग काला है, बहुत से दाँत हैं और स्त्रियों की तरह लचकती है। खुसरो कहते हैं—आ री अर्थात् अरी तू इधर आ। इसका उत्तर 'आरी' बताया गया है। आरी काले रंग की है, उसके कई दाँत होते हैं और वह स्त्रियों की तरह लचकती चलती है। लकड़ी को चीरते हुए लोग उसे दोनों हाथों से खींचते हैं।

पौन चलत वह देह बढावै, जल पीवत वह जीव गँवावै।
है वह प्यारी सुन्दर नार, नार नहीं पर है वह नार॥ (आग)

शब्दार्थ—पौन=हवा। देह=शरीर।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है, जिस का शरीर हवा के चलने पर बढ़ जाता है और पानी पीते ही वह मर जाती है, वह बड़ी प्यारी सुन्दर नारी है। इसका उत्तर 'आग' दिया गया है। आग हवा चलने से बढ़ जाती और पानी पड़ने पर बुझ जाती है।

फारसी बोली आईना, तुर्की ढूँढ़ी पाई ना।
हिन्दी बोली आरसी आए, 'खुसरो' कहे कोई न बताए॥ (आरसी)

शब्दार्थ—आईना=शीशा। आरसी=शीशा।

भावार्थ—फ़ारसी भाषा में तो वह वस्तु कहीं आई नहीं अथवा फ़ारसी में उसे 'आइना' कहते हैं। तुर्की भाषा में उसका कहीं पता नहीं लगा। हिन्दी बोली में उसे आरसी कहते हैं। खुसरो कहते हैं कि कोई नहीं बताता वह क्या वस्तु है। इसका उत्तर आरसी या शीशा बताया गया है। शीशे को फ़ारसी में 'आइना' और हिन्दी में 'आरसी' कहते हैं।

चोरी की ना खून किया, वाका सिर क्यों काट लिया।। (नाखून)
बीसों का सिर काट लिया, ना मारा ना खून किया।। (नाखून)

भावार्थ—उस बेचारे ने न तो किसी की चोरी की और न किसी का खून ही किया है। फिर भी तुमने उसका सिर क्यों काट लिया ? इसका उत्तर 'नाखून' दिया गया है। हाथ पैर की बीसों अंगुलियों के नाखूनों का सब लोग सिर काटते ही हैं।

आना जाना उसका भाए, जिस घर जाए लकड़ी खाए।। (आरी)

भावार्थ—उसका आना-जाना सबको अच्छा लगता है। वह जिस घर जाती है उसी घर लकड़ी खाती है। इसका उत्तर 'आरी' दिया गया है। आरी चलती हुई सबको अच्छी लगती है और वह लकड़ी चीरती है, इस प्रकार वह लकड़ी खाती है।

हाथ में लीजे, देखा कीजे। (दर्पण)

भावार्थ—इसका उत्तर 'शीशा' दिया है जो सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि शीशे को हाथ में लेकर लोग देखते रहते हैं। इसलिए इसका उत्तर दर्पण ठीक है।

एक नार ने अचरज किया, साँप मार पिंजरे में दिया।
जों-जों साँप ताल को खाए, ताल सूख साँप मर जाए।। (दिया की बत्ती)

भावार्थ—एक स्त्री ने बड़ा आश्चर्यजनक काम किया कि साँप को मारकर पिंजरे में डाल दिया। ज्यों-ज्यों साँप तालाब को खाता है त्यों-त्यों

तालाव सूखता जाता है और अन्त में साँप मर जाता है। इसका उत्तर दिये की बत्ती दिया गया है। दिये की बत्ती रूपी मरा हुआ साँप दिये रूपी पिंजरे में पड़ा है। वह बत्ती रूपी साँप दिये के तेल रूपी तालाब को खाता है। ज्यों-ज्यों वह इस तेल को सुखाती है त्यों-त्यों वह स्वयं भी जलकर भस्म हो जाती है।

एक अचम्भा देखो चल, सूखी लकड़ी लागे फल।
जो कोई इस फल को खावै, पेड़ छोड़ कहिं और न जावै ॥(बरछी)

भावार्थ—चलकर यह एक आश्चर्य की बात देखो कि सूखी लकड़ी पर फल लगे हुए हैं। जो कोई उस फल को खा लेता है वह उस पेड़ को छोड़कर और कहीं नहीं जाता। इसका उत्तर 'बरछी' दिया गया है। बरछी का फल सूखे डंडे पर लगा हुआ होता है। शस्त्रों के लोहे के काटने वाले अंश को 'फल' या 'फलक' कहते हैं। बरछी का फलक जिसको लग जाता है वह मर जाता है। इसलिये कहा गया है कि जो कोई उसके फलक (की चोट) को खा लेता है वह उसको छोड़कर और कहीं नहीं जाता बल्कि मरकर वहीं ढेर हो जाता है।

एक तरुवर का फल है तर, पहिले नारी पीछे नर।
वा फल की यह देखो चाल, वाहिर खाल और भीतर बाल ॥(भुट्टा)

भावार्थ—एक वृक्ष का फल बड़ा तर (सरस) होता है। उसके पहले तो नारी है बाद में नर है। उस फल की यह विचित्र चाल देखो कि उसके बाल अन्दर हैं और खाल बाहर है। इसका उत्तर भुट्टा है। भुट्टे की मंजरी या मूँछ रूपी नारी पहले निकलती है और भुट्टा रूपी नर बाद में निकलता है। भुट्टे के बाल अन्दर होते हैं और पत्ते रूपी खाल ऊपर होती है।

आगे आगे बहिना आई, पीछे पीछे भइया।
दांत निकारे बाबा आए, बुरका ओढ़े मइया ॥ (भुट्टा)

भावार्थ—आगे-आगे बहन आई और पीछे-पीछे भाई, दाँत निकालते

हुए बावा आये और बुर्का ओढ़कर माँ आ गई। इसका उत्तर भी भुट्टा है। मंजरी रूपी बहन आगे-आगे आती है और भुट्टा रूपी भाई पीछे आता है। मक्की के दाने रूपी दाँत निकाले मानो बाबा आता है। उस मक्की ने पत्ते रूपी बुर्का अपने ऊपर ओढ़ रक्खा है।

अचरज बँगला एक बनाया, ऊपर नींव तले घर छाया।
बाँस न वल्ली बन्धन घने कह 'खुसरो' घर कैसे बने॥ (बया का घोंसला)

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि ऐसा आश्चर्यजनक बँगला बना हुआ है कि जिसकी नींव तो ऊपर है और घर नीचे है। उसमें बाँस या वल्ली कोई नहीं है फिर भी बहुत सालों से वह बँधा हुआ है। अमीर खुसरो कहते हैं कि ऐसा घर भला कैसे बन सकता है। इसका उत्तर बया का घोंसला है। बया का घोंसला ऊपर से किसी वृक्ष की शाखा से लटकता है अतः कहा गया है कि उसकी नींव ऊपर है। इसमें कोई बाँस या वल्ली नहीं होती, फिर भी अनेक स्थानों से वह बँधा रहता है।

एक नार करतार बनाई, सूहा जोड़ा पहिन के आई।
हाथ लगाये वह शर्माये, या नारी को चतुर बताये॥ (बीरबहूटी)

शब्दार्थ—करतार=ईश्वर। सूहा=लाल।

भावार्थ—भगवान् ने एक ऐसी नारी बनाई है जो लाल जोड़े पहन कर आई है। हाथ लगाते ही वह शरमा जाती है। कोई चतुर उस नारी का नाम बताये। इसका उत्तर वीरबहूटी है। वीरबहूटी लाल रंग की होती है और हाथ से छूते ही इकट्ठी हो जाती है।

धूपों से वह पैदा होवे, छाँव देख मुर्झाये।
ए री सखी मैं तुझसे पूँछूँ, हवा लगे मर जाये॥ (पसीना)

भावार्थ—धूप से तो वह पैदा होता है। छाया में मुरझा जाता है और हवा लगने पर वह मर जाता है। हे सखी, मैं तुझ से पूछती हूँ कि

वह कौन-सी वस्तु है। इसका उत्तर 'पसीना' है। पसीना धूप में पैदा होता है, छाया में कम हो जाता है और हवा के लगते ही सूख जाता है।

खेत में उपजे सब कोई खाय। घर में होवे घर खा जाय ।। (फूट)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो यदि खेत में उत्पन्न हो तो उसे सब कोई खाते हैं, पर यदि वह घर में उत्पन्न हो जाय तो घर को ही खा जाती है। इसका उत्तर 'फूट' है। खेत में उगने वाली फूट को सब कोई खाते हैं। पर यदि घर के लोगों में आपस में फूट पड़ जाय तो वह घर ही नष्ट हो जाता है।

एक पुरुष बहुत गुन भरा। लेटा जागे सोवै खड़ा।
उलटा होकर डाले बेल। यह देखो करतार का खेल ।। (चरखा)

शब्दार्थ—गुन=गुण और धागा।

भावार्थ—एक पुरुष कई गुणों से भरा हुआ है। वह लेटा रहता है तो जागता है और खड़ा रहता है तो सो जाता है, वह उल्टा होकर बेल डालता है। भगवान् का यह विचित्र खेल देखो इसका उत्तर 'चरखा' है। चरखा बहुत से गुण (सूतों) से भरा हुआ होता है जब उससे सूत नहीं कातते तो उसे खड़ा कर देते हैं। और जब काम करते हैं तो उसे लिटा देते हैं। उसके सूत को उल्टा चला कर लपेटते हैं इसलिए कहा गया है कि वह उल्टा होकर बेल डालता है।

चालीस मन की नार रखावै, सूखी जैसी तीली।
कहने को पर्दे की बीवी, पर वह रंग रंगीली ।। (चिलम)

भावार्थ—वह चालीस मन की नारी है फिर भी तिनके के समान सूखी हुई है। कहने को तो वह परदे की बीवी है पर है वह पूरी रंग-रंगीली। इसका उत्तर 'चिलम' है। आदमी चिलम पीते हुए दोनों हाथों से उसे ऐसे उठाता है मानो भारी (चालीस मन की) हो। वह सूखी

पतली सी होती है। चिलम के नीचे साफ़ी या कपड़ा लिपटा रहता है इसलिए कहा गया है कि वह परदे की नारी है। वह लाल रंग की होती है इसलिए उसे रंग-रंगीली कहा गया है।

दानाई से दाँत उस पै लगाता नहीं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहीं कोई ॥ (रुपया)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जिसे सब कोई भुनाते हैं पर खाता कोई भी नहीं और न कोई उस पर दाँत ही लगाता है। इसका उत्तर 'रुपया' दिया गया है।

जब काटो तब ही बढ़ै, बिन काटे कुम्हिलाय।
ऐसी अद्‌भुत नार का, अन्त न पाया जाय॥ (दीपशिखा)

भावार्थ—एक नारी ऐसी है उसे जब काटो तभी बढ़ती है और बिना काटे मुरझा जाती है। ऐसी अद्‌भुत नारी का कुछ अंत नहीं पाया जाता। इसका उत्तर 'दिये की बत्ती' है। दिये की बत्ती को जितना काटो उस की उतनी ही लौ बढ़ती है और न काटो तो उसकी लौ मंद पड़ जाती है।

एक पुरुष का अचरज लेखा। मोती फलते आँखों देखा।
जहाँ से उपजे वहाँ समाय। जो फल गिरे सो जल जल जाय॥(फुआरा)

भावार्थ—एक मनुष्य का बड़ा आश्चर्य-जनक काम है। मैंने उसे अपनी आँखों से मोती फलते हुए देखा। वे मोती जहाँ से उत्पन्न होते हैं वहीं समा जाते हैं। जो फल गिरते हैं वे सब जल जल जाते हैं। इसका उत्तर 'फव्वारा' है। फव्वारे की बून्दें मोती रूपी हैं। वे मोती पानी से उत्पन्न होकर पानी में समा जाते हैं और जल में जल बन जाते हैं।

जल कर उपजे जल में रहे। आँखों देखा 'खुसरो' कहे। (काजल)

भावार्थ—खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है, जो जल कर उत्पन्न होती है और जल ही में रहती है। उसे अपनी आँखों से देखा है। इसका

उत्तर काजल है। काजल दिये के जलने से उत्पन्न होता है और आँखों के पानी में रहता है। वह आँखों में देखा जाता है।

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग अलग पक जाय इकट्ठा ॥ (चाक)

भावार्थ—एक चार अंगुल का छोटा-सा पेड़ है पर उसका पत्ता सवा मन का है। उसके फल अलग लगते हैं और पक जाते हैं तो सब इकट्ठे हो जाते हैं। इसका उत्तर कुम्हार की 'चाक' है। कुम्हार की चाक की धुरी या आधार चार अंगुल की होती है और उस पर चाक रूपी सवा मन का पत्ता होता है। उससे उत्पन्न होने वाले बरतन रूपी फल अलग-अलग उत्पन्न होते हैं और जब पक जाते हैं तो सबको इकट्ठा धर दिया जाता है।

पानी में निसि दिन रहे, जाके हाड़ न मांस।
काम करे तलवार का फिर पानी में वास ॥(कुम्हार की डोरी)

शब्दार्थ—निसि=रात।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो रात दिन पानी में रहती है उसके हड्डी या मांस कुछ नहीं है फिर भी वह तलवार का काम करती है और पानी में ही रहती है। इसका उत्तर 'कुम्हार की डोरी' है।

एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बाँध गले में सूत ॥ (पतंग)

भावार्थ—हे मेरे पुत्र, तू सुन, तुझे मैं एक कहानी कहती हूँ। एक वस्तु ऐसी है जो बिना ही परों के गले में सूत बाँध कर आकाश में उड़ गई। इसका उत्तर पतंग दिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

मुकरियाँ

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठै लागैं वाके बोल, ऐ सखि साजन? ना सखी ढोल॥

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि उसके आने पर ही विवाह होता है, उसके बिना दूसरा कोई अच्छा नहीं लगता, उसके बोल बड़े मीठे लगते हैं। इतना कह चुकने पर सुनने वाली सखी ने जब उससे पूछा कि क्या तुम अपने प्रियतम की बात कह रही हो तो वह उत्तर देती है कि नहीं मैं तो ढोल की बात कह रही हूँ। यहाँ पर ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है जो ढोल और 'साजन' दोनों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

जब मेरे मन्दिर में आवे, सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर, ऐ सखि साजन? ना सखि, मच्छर॥

शब्दार्थ—मन्दिर=महल, घर।

भावार्थ—हे सखी, वह जब मेरे घर आता है तो मुझे सोई हुई को जगा देता है और सदा विरह के गीत गाता रहता है। इस पर सखी पूछती है कि क्या अपने साजन की बात कह रही हो। तब वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो मच्छर की बात कह रही हूँ।

बेर बेर सोवतहिं जगावे, ना जागूँ तो काटे खावे।
व्याकुल हुई मैं हक्की बक्की, ऐ सखि साजन? ना सखि, मक्खी॥

भावार्थ—वह मुझे बार बार सोई पड़ी को जगाता है और न जागूँ तो काटता खाता है। मैं उसके मारे व्याकुल हो जाती हूँ, हक्की-बक्की रह जाती हूँ। इस पर सखी ने पूछा कि क्या तुम अपने उस प्रियतम की बात कह रही हो? तो वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो मक्खी की बात कह रही हूँ।

सोभा सदा बढ़ावनहारा, आँखिन ते छिन होत न न्यारा।
आये फिर मेरे मनरंजन, ऐ सखि साजन ? ना सखि, अंजन ॥

भावार्थ—वह सदा मेरी शोभा बढ़ाने वाला है, वह मेरी आँखों से एक क्षण भर के लिए भी अलग नहीं होता, वह मेरे मन को प्रसन्न करने के लिए बार-बार आता है। यह सुन कर सखी ने पूछा कि क्या तू अपने साजन की बात कह रही है ? इस पर वह यह उत्तर देती है कि नहीं; मैं तो 'अंजन' की बात कह रही हूँ।

बरस-बरस वह देस में आवे, मुँह से मुँह लगा रस प्यावे।
वा खातिर मैं खरचे दाम, ऐ सखि साजन ? ना सखि आम ॥

भावार्थ—वह प्रत्येक वर्ष या हर साल देश में आता है, मेरे मुँह में अपना मुँह लगा कर रस पिलाता है। इसके लिए मैं खूब पैसे खर्चती हूँ। इस पर सखी पूछती है कि क्या अपने साजन की बात कह रही हो ? तो वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो आमों की बात कह रही हूँ।

रात समय वह मेरे आवे, भोर भये वह घर उठ जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा, ऐ सखि साजन ? ना सखि, तारा ॥

शब्दार्थ—भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—वह रात के समय मेरे यहाँ आता है। प्रातःकाल होते ही उठकर चला जाता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। सखी के यह पूछने पर कि प्रियतम की बात कह रही हो ? वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो तारे की बात कह रही हूँ।

जब माँगूं तब जल भर लावे, मेरे मन की तपन बुझावे।
मन का भारी तन का छोटा, ऐ सखि साजन ? ना सखि, लोटा ॥

भावार्थ—वह जब मैं मांगूँ तभी पानी भर लाता है, मेरे मन की तपन को बुझा देता है। उसका मन तो बड़ा भारी है पर शरीर बहुत

छोटा है। इस पर सखी पूछती है क्या अपने प्रियतम की बात कह रही हो ? तो वह कहती है कि नहीं, मैं तो लोटे की बात कह रही हूँ।

दोसखुना हिन्दी

उत्तर

रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों; फेरा न था।

भावार्थ—चूल्हे या तवे पर रक्खी हुई रोटी को यदि न फेरा जाय तो वह जल जाती है। घोड़े को तांगे आदि में जोतने से पहले यदि उसे गोल चक्कर में न घुमाया जाय तो वह अड़ जाता है, इसलिये कहा गया है कि घोड़े को न फिराने से वह अड़ जाता है। इसी प्रकार टोकरी में पड़े हुए पानों को यदि ऊपर-नीचे न फेरा जाय तो वह सड़ जाते हैं। इसलिए इन तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर हुआ।

अनार क्यों न चक्खा, वज़ीर क्यों न रक्खा; दाना न था।

भावार्थ—यदि अनार में दाना न हो तो कोई कैसे खा सकता है। और वज़ीर या मन्त्री दाना या समझदार न हो तो राजा उसे कैसे रख सकता है।

गोश्त क्यों न खाया, डोम क्यों न गाया; गला न था।

भावार्थ—अच्छी तरह न गलने के कारण मांस न खाया गया और गला अच्छा न होने के कारण डोम गा न सका।

राजा प्यासा क्यों, गदहा उदासा क्यों; लोटा न था।

भावार्थ—कुएँ से पानी निकाल कर पीने के लिये लोटा न होने के कारण राजा प्यासा का प्यासा रह गया। और भूमि पर न लेटने के कारण गधा उदास रहता है।

ढोलकी क्यों न बजी, दही क्यों न जमी; मढ़ी न थी।

भावार्थ—ढोलकी जब तक चमड़े से न मढी गई हो तब तक नहीं

बज सकती। और छाछ आदि खटाई न हो तब तक दही नहीं जम सकती।

सितार क्यों न बजाई, औरत क्यों न नहाई; परदा न था।

भावार्थ—सितार के परदे या बन्द नहीं हों, तो भला वह कैसे बज सकती है और यदि परदा न हो तो औरतें भला कैसे नहा सकती हैं।

घर क्यों अंधियारा, फकीर क्यों बिगड़ा; दिया न था।

भावार्थ—यदि घर में दिया न हो तो घर में अंधेरा हो ही जाता है। यदि फ़कीर को कुछ न दिया जाय तो वह बिगड़ ही जाता है।

ढकोसले

भादों पक्की पीपली, झड़ झड़ पड़े कपास।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी, या नंगा ही सो रहूँ॥

कोठी भरी कुल्हाड़ियाँ, तू हरीरा करके पी।
बहुत ताडल है तो छप्पर से मुँह पोंछ॥

पीपल पकी पपोलियाँ, झड़ झड़ परे हैं बेर।
सर में लगा खटाक से, वाह वे तेरी मिठास॥

भैंस चढ़ी बबूल पर और लपलप गूलर खाय।
दुम उठा कर देखा तो पूरनमासी के दिन तीन॥

गोरी के नैना ऐसे बड़े जैसे बैल के सींग॥

खीर पकाई जतन से और चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा, ला पानी ला॥

सावन का गीत

अम्माँ मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो बाबा तो बुड्ढा री कि सावन आया॥

अम्माँ मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो भाई तो बाला री कि सावन आया॥
अम्माँ मेरे मामू को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो मामूँ तो बाँका री कि सावन आया॥

जैसा कि ऊपर सार और समालोचना में कहा गया है यह ढकोसले और गीत ऊट-पटाँग हैं। इनका कुछ अर्थ नहीं है।

कबीरदास

परिचय

जन्म-संवत् १४५५ मृत्यु-संवत् १५५१

आप जाति के जुलाहे थे और आपका जन्म काशी में सं० १४५५ में हुआ। आपके गुरु का नाम रामानन्द था। आपने स्वयं लिखा है कि "काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये"। आपकी पत्नी का नाम लोई था। आपने हिन्दू और मुसलमानों को एक पिता (ईश्वर) के पुत्र माना है। आपने अपनी कविता में आश्चर्य प्रकट किया है कि दोनों (हिन्दू और मुसलमान) एक पिता की सन्तान होकर भी आपस में मतभेद क्यों रखते हैं। आपने अपनी कविता में दोनों के आडम्बरों की घोर निन्दा की है। केवल मसजिदों और मन्दिरों में ईश्वर को ढूढ़ने वाले हिन्दू और मुसलमान आपके भर्त्सना-पात्र बने हैं। आप बहुश्रुत थे, पंडित नहीं; उपदेशक कवि थे, केवल कवि नहीं। बहुत देशों में भ्रमण के कारण आपकी भाषा सधुक्कड़ी है। इसमें ब्रज, अवधी, खड़ीबोली, पंजाबी आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं का पुट मिलता है।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं—१. रमैनी, २. शब्द, और ३. साखी। आपका मृत्यु-समय गवेषणा करने पर १५५१ उपलब्ध होता है। परन्तु जनश्रुति के आधार पर १५७५ माना जाता है।

साखी

सार और आलोचना

आपकी कविता में निर्गुण-उपासना का स्पष्टीकरण है। आप गुरु को मान देने के लिये कहते हैं कि गुरु और परमात्मा यदि दोनों खड़े हों तो मैं गुरु के चरण पहले पकड़ूँगा क्योंकि गुरु ही परमात्मा के बतलाने वाले हैं। आप मनुष्य-जीवन को पानी के बुद्बुद के समान समझते हैं, इस लिए अपनी कविता में यही उपदेश देते हैं कि इस थोड़े-से जीवन में ईश्वर का भजन करो; वही सच्चा सहायक है। ईश्वर-प्रेमाचार की शिक्षा ही जीवन को सफल बना सकती है।

आपकी कविता मानव-जीवन में क्या हेय है और क्या उपादेय है इस विषय को खोलकर सुलझाने वाली है। ईश्वर की सत्ता सर्वत्र है, उससे कोई पाप छिपा नहीं रह सकता। मानव-कर्तव्य है कि वह उसके रूप को भली-भांति समझ ले जो फूल की सुगन्धि से भी सूक्ष्मतर है, तभी यह जीवन सफल हो सकता है।

कबिरा मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जुगादि सकल भगत ताको सुखु बिस्रामु॥

शब्दार्थ—सिमरनी=माला। **रसना**=जीभ। **सकल**=सब। **बिस्रामु**=विश्राम, आराम।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मेरी माला और जीभ पर सदा राम का नाम रहता है। आदि, युगादि अर्थात् अनादि काल से सब भक्तों को राम का भजन करने से ही सुख और विश्राम या शान्ति प्राप्त होती रही है।

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, का के लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया बताय॥

शब्दार्थ—गोबिन्द=भगवान्। का के=किसके। पाय लागूँ=पैरों में पड़ूँ। बलिहारी=धन्य।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि गुरुदेव और भगवान् दोनों के एक साथ दर्शन हो गये तो मैं या भक्त बड़ी दुविधा में पड़ गये कि दोनों में से पहले प्रणाम किसे किया जाय। अन्त में विचारपूर्वक महात्मा कबीर कहते हैं कि मैं तो अपने गुरुदेवजी की बलिहारी हूँ, जिनकी कृपा से भगवान् के दर्शन हो गये। गुरु के ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को भगवान् के दर्शन हो सकते हैं, इसीलिए गुरु का कवि विशेष धन्यवाद करता है।

दुख में सुमिरन सब करैं सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करैं तो दुख काहे होय॥

शब्दार्थ—सुमिरन=स्मरण (याद)। कोय=कोई। काहे=क्यों-कर। होय=होवे।

भावार्थ—महात्मा कबीर कहते हैं कि दुःख में तो भगवान् का सब कोई स्मरण करते हैं, परन्तु सुख में कोई नहीं करता। यदि कोई सुख में भी भगवान् का स्मरण करता है तो उसे दुःख कभी हो ही नहीं सकता।

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले निहकामी निज देव॥

शब्दार्थ—सकाम=फल की इच्छा से युक्त। निष्फल=व्यर्थ। सेव=सेवा। निकामी=निष्काम, जिसको कोई इच्छा नहीं। निज=अपना। देव=देवता (ईश्वर)।

भावार्थ—जब तक भक्त किसी फल की इच्छा करता हुआ भक्ति

करता है तब तक उसकी भक्ति और सेवा व्यर्थ है। कबीर जी कहते हैं कि वह अपना परम प्रियतम प्रभु तो निष्काम है। उसे तो किसी प्रकार की इच्छा नहीं। फिर भला वह निष्काम प्रभु हमारी सकाम भक्ति से हमें कैसे मिल सकता है।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय॥

शब्दार्थ—**नौबत**=नगारा। **पुर**=नगर, शहर। **पट्टन**=कस्बा। **बहुरि**=फिर।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम अपनी नौबत दस दिन बजा लो अर्थात् इस जीवन के थोड़े से समय में जो कुछ करना है सो कर लो, क्योंकि मरने के पश्चात् इस नगर, कस्बे या गली को फिर आकर देख भी न सकोगे। यह मानव-शरीर फिर मिलने का नहीं। इसलिए जो कुछ करना है, अभी कर लो।

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय॥

शब्दार्थ—**ठगाइये**=स्वयं धोखा खाना। **कोय**=कोई। **ऊपजै**=उत्पन्न हो।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि स्वयं धोखा खाना अच्छा है, परन्तु किसी दूसरे को धोखा नहीं देना चाहिए। स्वयं ठगे जाने पर प्रसन्नता होती है, पर दूसरे को ठगने से पीड़ा होती है। भाव यह कि दूसरे को कष्ट या दुःख देना किसी भी दशा में उचित नहीं।

केसन कहा बिगारिया जो मूँडो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये जामें विषै विकार॥

शब्दार्थ—**केसन**=बाल। **कहा**=क्या। **बिगारिया**=बिगाड़ा।

मूंडो=काटना । जामें=जिसमें । विषै-विकार=काम-भावना, वासना ।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि इन वालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुम इन्हें बारम्बार काटते हो । उस मन को क्यों नहीं मूंडते जो वासना तथा कामना से भरपूर है । कवि का विचार है कि निर्दोष बालों को कटवाकर साधु बनना सहज है किन्तु मन की बुरी भावनाओं को हटाकर संत बनना कठिन है । अतः साधु बनने के लिए मन का सुधार आवश्यक है ।

कबिरा गर्व न कीजिए काल गहे कल केस ।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥

शब्दार्थ—गर्व=अभिमान । काल=मौत । गहे=पकड़े । केस=बाल । कित=कहां । मारिहै=मारेगा ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य को कभी अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि कल यमराज बालों से पकड़ लेगा और इस बात का भी पता नहीं कि वह कहाँ और किस स्थान पर पटक देगा । सारांश यह कि मौत का कुछ पता नहीं, इसलिए अहंकार नहीं करना चाहिए ।

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात ।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात ॥

शब्दार्थ—केरा=का । अस=यह । मानुस=मनुष्य । जात=जाति । परभात=प्रातःकाल ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य-शरीर पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर है और वह देखते-देखते इस प्रकार छिप जाता है, जिस प्रकार प्रातःकालीन तारे ।

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ॥

शब्दार्थ—इक=एक। कोउ=कोई। काहू=किसी का। नारी=स्त्री, नारी=नाड़ी।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि एक दिन ऐसा होगा जब कोई किसी का न रहेगा। तुम घर की नारी अर्थात् अपनी पत्नी की शिकायत कर रहे हो कि वह बेवफ़ा है परन्तु एक दिन तो तुम्हारे शरीर की नाड़ी भी तुम्हारा साथ न दे सकेगी। भाव यह कि घर की नारी का गिला तो दूर रहा शरीर की नाड़ी भी बन्द हो जायेगी।

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञ्जर बसै प्रेम कहावै सोय॥

शब्दार्थ—छिनहि=क्षण में। अघट=निरन्तर। पिंजर=शरीर सोय=वह।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो क्षण में चढ़ जाय और क्षण में उतर जाय वह प्रेम नहीं होता। जो शरीर में निरन्तर एकरस रहे उसे वास्तव में प्रेम कहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रेम में उतराव-चढ़ाव नहीं होता। उसका प्रवाह सदा एक-सा रहता है।

प्रेम प्रेम सब कोई कहै प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै प्रेम कहावै सोय॥

शब्दार्थ—प्रेम=स्नेह। चीन्है=पहचाने। कोय=कोई। आठ पहर=रात-दिन। भीना=भीगा। सोय=वही।

भावार्थ—कबीरदास जी प्रेम की व्याख्या करते हैं कि प्रेम की दुहाई सभी देते हैं परन्तु प्रेम को कोई नहीं समझता और न पहचानता है। प्रेम वह है जिसमें मनुष्य आठों पहर खोया रहे। भावार्थ यह है कि प्रेम का नशा कभी नहीं उतरता।

जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं॥

शब्दार्थ—साँकरी=तंग। **ता में**=उसमें।

भावार्थ—जब अहंकार था तब प्रभु न थे। जब परमात्मा हृदय में आये तो अहंभाव चला गया। इसलिए कबीरदास जी कहते हैं कि प्रेम की गली अत्यन्त तंग है, उसमें दो का वास कठिन है। अहंकार और वह परम प्रियतम प्रभु दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ ले जाय॥

शब्दार्थ—बाड़ी=बगीची। **ऊपजै**=पैदा होता है। **हाट**=दुकान। **बिकाय**=विकता है। **परजा**=प्रजा। **जेहि**=जिसे। **रुचै**=भाये। **सीस**=सिर।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि प्रेम न तो बगीची में पैदा होता है और न ही दुकान पर बिकता है। राजा और प्रजा में से जिसको प्रेम चाहिए वह आत्मदान देकर ले सकता है। भाव यह कि प्रेम में बलिदान, त्याग आदि की अत्यन्त आवश्यकता है।

कबिरा हँसना दूर करु रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मीत॥

शब्दार्थ—चीत=पहचान (प्रेम)। **पाइये**=प्राप्त करना। **पियारा**=प्यारा। **मीत**=मित्र।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हँसना छोड़कर रोने से प्रेम करना चाहिए। बिना आँसू बहाये किसी ने अपना प्यारा परमेश्वर नहीं पाया। दुःख सहकर ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि भये कबीर उदास॥

शब्दार्थ—हाड़=शरीर। **जरै** = जले। **लाकड़ी** = लकड़ी।

जरता=जलता। **करि**=कर। **भये**=हुए।

भावार्थ—शरीर लकड़ी की तरह जल रहा है और बाल सूखी घास की तरह। सारे संसार को जलता देखकर कबीरदास जी अत्यन्त उदास हो गये हैं। चिता पर मनुष्य-देह सूखी लकड़ी की तरह जलकर राख हो जाती है। इस महानाश को देखकर कबीरदास जी उन्मन हो गये।

पाँचों नौबत बाजती होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा बैठन लागे काग॥

शब्दार्थ—**पाँचों**=पांच। **नौबत**=नगारे। **छतीसो**=अनेकों। **राग**=रागरंग। **सो**=वह। **मन्दिर**=महल।

भावार्थ—जिन महलों में पाँच समय नगारे बजते थे और नाना प्रकार के राग-रंग होते थे आज उन्हीं महलों में कोई नहीं रहता और उनकी चोटियों पर कौवे बैठे काँय-काँय कर रहे हैं। भाव यह है कि मृत्यु के पश्चात् यह शरीररूपी मंदिर जो मनुष्य के जीवन-काल में अनेकों भोग-विलास करता है, मरने के पश्चात् इस प्रकार निस्सार हो जाता है कि कौए उस पर बैठते और मांस नोच-नोच कर खाते हैं।

यह तन काँचा कुम्भ है लिये फिरै या साथ।
टपका लागा फूटिया कछु नहिं आया हाथ॥

शब्दार्थ—**काँचा**=कच्चा। **कुम्भ**=घड़ा।

भावार्थ—कबीरदास जी शरीर के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह एक कच्चा घड़ा है, जिसे मनुष्य साथ लिये फिरता है। ज्यों ही यह शरीर-रूपी घड़ा गिर पड़ा त्यों ही फूट जायेगा। फूट जाने पर इसका कुछ उपयोग न हो सकेगा। यह शरीर नश्वर है। मृत्यु के पश्चात् इसका कुछ उपयोग न हो सकेगा।

भक्ति भाव भादौं नदी सबै चली घहराय।
सरिता सोइ सराहियै जो जेठ मास ठहराय॥

शब्दार्थ—भक्ति=श्रद्धा। भादौं=एक मास का नाम। घहराय=गर्जती हुई। सरिता=नदी। सोइ=वही। सराहियै=प्रशंसा कीजिये। ठहराय=रहे अर्थात् बहे।

भावार्थ—भक्ति की भावना भादों मास की नदी के समान भरकर बहती है, परन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि नदी तो वही है जो जेठ के मास में निरन्तर बहे। प्रायः वर्षा ऋतु में नाना नदी-नाले बहने लगते हैं और ग्रीष्म में सूख जाते हैं। यही हाल भक्ति का है। आरम्भ में भक्ति-भावना बलवती होती है परन्तु धीरे-धीरे कम होती जाती है। इसका एक-रस होना, निरन्तर बहना, आवश्यक है।

सिख तो ऐसा चाहिए गुरु को सब कुछ देय।
गुरु तो ऐसा चाहिए सिख से कछु नहिं लेय॥

शब्दार्थ—सिख=शिष्य।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि शिष्य का धर्म यह है कि वह गुरु के श्रीचरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दे और गुरुदेव का कर्तव्य है कि वह अपने प्रिय शिष्य से कुछ भी ग्रहण न करे।

साधु कहावन कठिन है ज्यों खाँडे की धार।
डगमगाय तो गिरि परे निहचल उतरै पार॥

शब्दार्थ—साधु=संत। कहावत=कहलाना। खाँडे=तलवार। निहचल=दृढ़, निश्चल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधु बनना ऐसे ही कठिन है जैसे तलवार की धार पर चलना। यदि डगमगा गया तो गिर जायगा और अगर दृढ़ रहा तो निस्संदेह पार हो जायगा।

भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होत न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस नीति॥

शब्दार्थ—भय=डर। भाव=विचार (प्रेम)। प्रीति=प्यार। हिरदे=मन। नीति=विधान।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि भय (डर) के बिना श्रद्धा की भावना नहीं पैदा होती और न ही प्रेम की उत्पत्ति होती है। जब हृदय से डर निकल जाता है तो सब प्रकार का रस-विधान प्रेमभाव समाप्त हो जाता है।

दया दिल में राखिये तू क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव हैं कीड़ी कुंजर दोय॥

शब्दार्थ—दया=कृपा। निरदइ=निष्ठुर, कठोर। साईं=ईश्वर। जीव=जीवधारी (प्राणी)। कीड़ी=चींटी। कुंजर=हाथी।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी का कथन है कि मनुष्य को अपने मन में दया भाव रखना चाहिये और कभी किसी के साथ निर्दयता का व्यवहार नहीं करना चाहिये क्योंकि चींटी से लेकर हाथी तक सभी जीव ईश्वर ही के हैं। अतः इन पर अत्याचार करना ईश्वर को अप्रसन्न करना है।

बुरा जो मैं देखन चल्या बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना मुझ सा बुरा न कोय॥

शब्दार्थ—चल्या=चला। कोय=कोई।

भावार्थ—जब मैं नीच और पापी मनुष्य देखने चला तो मुझे कोई नं दिखाई दियां, परन्तु जब मैंने अपने मन की छान-बीन की तो मुझ-सा कोई पापी न निकला। आत्म-निरीक्षण से ही वस्तुतः मनुष्य अपनी स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

मधुर वचन है औषधि कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर॥

शब्दार्थ—मधुर=मीठे। बचन=शब्द। औषधि=दवाई। कटुक=कड़वे। स्रवन-द्वार=कान। संचरै=प्रवेश करें। सालै=दुःख दे। सकल=सारा। सरीर=शरीर (तन)।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मीठे वचन दवाई के समान हैं और कड़वे शब्द बाण के सदृश। दोनों कान के द्वार से भीतर प्रवेश करते हैं परन्तु एक शरीर को प्रफुल्लित करता है, दूसरा उसे काँटे के समान चुभता और दुःख देता है।

सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उजियारा होय॥

शब्दार्थ—सोय=शोभित होता है। बाती=बत्ती। दीप=दिया। उजियारा=प्रकाश, रोशनी।

भावार्थ—मनुष्य यदि अपने सिर को बचाना चाहता है, प्राणों से मोह करता है तो उसका सिर अर्थात् स्वाभिमान नष्ट हो जाता है और यदि सिर को कटा दे अर्थात् प्राणों का मोह न करे तो उसके सिर की शोभा हो जाती है, उसका मान होता है। जैसे कि दिये की बत्ती को काटो तो उसकी रोशनी बढ़ जाती है।

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल॥

शब्दार्थ—तोको=तुमको। तिरसूल=त्रिशूल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य तुम्हारे मार्ग पर काँटे बिछाता है, तू उसकी राह पर फूल बिछा। तुझे तो फूल के बदले में फूल ही मिलेंगे किन्तु उसे काँटों के कारण त्रिशूल का-सा कष्ट सहन करना पड़ेगा। भाव यह कि तू सदा परोपकार करता जा और इस बात

की चिन्ता न कर कि कौन तेरा क्या अपकार करता है। क्योंकि तुम्हें भलाई का भला ही फल मिलेगा और बुरा करने वाले को बुरा फल मिलेगा।

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय॥

शब्दार्थ—बानी=शब्द। आपा=अभिमान। सीतल=ठण्डा, शान्त।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मन के अभिमान को खोकर ऐसी मधुर कोमल वाणी बोलनी चाहिए कि दूसरों के हृदय को भी शीतल करे और स्वयं भी शीतल, शान्त और प्रसन्न हो जाय।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया गहरै पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ॥

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि उस परम प्रियतम प्रभु को जिन्होंने परिश्रम करके ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, गहरे पानी में प्रविष्ट होने पर अर्थात् पूरी साधना करने पर वह उन्हें प्राप्त हो जाता है। पर मैं पागल तो डूबने से डरता रहा अर्थात् परिश्रम या साधना करने से घबराता रहा, इसलिए किनारे पर ही बैठा रह गया, उस प्रभु को प्राप्त न कर सका। भाव यह है कि जो मनुष्य अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उस प्रभु को प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं उन्हें वह मिल भी जाता है। पर जो लोग सराहना ही नहीं करते उन्हें भला वह कैसे मिल सकता है। वह तो देखते ही रह जाते हैं।

जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संशय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटे चारों दीरघ रोग॥

शब्दार्थ—आपा=अभिमान। तहँ=वहाँ। आपदा=संकट। संशय=सन्देह। सोग=दुःख। दीरघ=बड़े।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जहाँ अभिमान है वहाँ संकट एवं दुःख है और जहाँ संदेह व दुविधा होती है वहाँ शोक व दुःख होता है। यह चारों—अभिमान, सन्देह, संकट और शोक-रूपी बड़े रोग कैसे मिट सकते हैं। भाव यह है कि मनुष्य को अभिमान और संदेह नहीं करना चाहिये।

नैना अन्दर आव तूँ नैन झाँपि तोहिं लेव।
ना मैं देखौं और को ना तोहिं देखन देव॥

शब्दार्थ—नैना=आँखें। झाँपि=बन्द करके। तोहिं=तुझे।

भावार्थ—कवि अपने परम प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे परम प्रियतम प्रभो! मुझे एक बार दर्शन दो और मेरी आँखों में समा जाओ तो अपनी आँखें इस प्रकार बन्द कर लूँगा कि उन आँखों से न तो मैं स्वयं तुम्हारी छवि के सिवाय किसी और को देखूँगा और न तुम्हें ही देखने दूँगा। प्रियतम की छवि जब आँखों में समा जायगी तो यह स्वाभाविक है कि उन बन्द आँखों से न तो संसार को देखा जा सकेगा और न संसार ही उन्हें देख सकेगा।

पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग देखा सुना न कान॥

शब्दार्थ—मान=अभिमान। खडग=तलवार।

भावार्थ—यदि कोई प्रेम का रस भी पीना चाहे और अपना अभिमान भी न छोड़े तो यह होने का नहीं, ये दोनों बातें एक साथ कभी नहीं हो सकतीं, इन दोनों का साथ रहना वैसे ही असम्भव है, जैसे कि—एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इसलिए जो प्रभु के प्रेम का रस चखना चाहते हैं उन्हें अभिमान का त्याग कर देना चाहिए।

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय॥

शब्दार्थ—निन्दक=निन्दा करने वाला। नियरे=पास में(निकट)। कुटी=कुटिया। छवाय=छाकर (बनाकर)। निर्मल=स्वच्छ। सुभाय=स्वभाव।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि अपनी निन्दा करने वाले मनुष्य अपने आँगन में उसके लिए कुटिया बना कर चौबीसों घण्टे अपने पास रखो, क्योंकि वह निन्दा करने वाला व्यक्ति तो बिना पानी व बिना साबुन के हमारे स्वभाव को निर्मल व पवित्र बना देता है। भाव यह कि जो पुरुष हमारी निन्दा करता है वह हमारी त्रुटियों को बताता है, हमें सहनशील व उदार बनाता है। इसलिए अपनी निन्दा करने वालों से दूर न भागो। प्रत्युत यदि कोई हमारी निन्दा करे तो उसे बड़े प्रेम से सुनो और अपनी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करो ताकि हमारा स्वभाव निर्मल हो जाये।

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार को साँस लेत बिन प्रान॥

शब्दार्थ—घट=शरीर (हृदय)। संचरै=व्याप्त होता (रहता) है। खाल=चमड़ी, यहाँ इसका अर्थ 'धौंकनी' है।

भावार्थ—कबीर जी प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस हृदय में प्रभु के प्रेम का संचार नहीं होता उस हृदय या शरीर को श्मशान के समान घिनौना और छोड़ देने योग्य समझो। वास्तव में वह मनुष्य जीवित होते हुए भी वैसे ही मुर्दा है जैसेकि लोहार की धौंकनी बिना प्राणों के श्वास लेती रहती है। इसलिए मनुष्य को सदा ईश्वर-प्रेम से अपने हृदय को भरे रखना चाहिए।

आगि लगी आकास में झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया काँच भया संसार॥

शब्दार्थ—आगि=आग। झरि झरि परै=झड़ झड़ कर गिरते हैं। कंचन=सोना।

भावार्थ—इस संसार रूपी आकाश में काम, क्रोध, दुःख आदि की आग लगी हुई है। उससे अंगारे झर-झर कर गिर रहे हैं। उस आग में इस संसार के विषयी प्राणी तो कांच के समान पिघल गये पर कबीर उसमें तप कर सोने के समान कान्तिमान् हो गये।

जल में बसै कमोदिनी चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास॥

शब्दार्थ—बसै=रहती है। कमोदिनी=कमलिनी। अकास=आकाश। जाको=जिसको। भावता=अच्छा लगता। सो=वह। ताही=उसके।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो जिसको अच्छा लगता है वह उसी के पास रहता है। जैसे कुमुदिनी तो सरोवर में रहती है और चांद उससे बहुत दूर आकाश में रहता है; दोनों एक दूसरे से बहुत दूर हैं तो भी उनका परस्पर बड़ा प्रेम है, दूर रहने के कारण उनके प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता।

तरबर तासु बिलम्बिये बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल पंछी केल करन्त॥

शब्दार्थ—तरबर=पेड़। बिलम्बिये=आश्रय लीजिए। बारह मास=वर्ष भर। फलन्त=फल दे। सघन=घनी। केल=क्रीड़ा (खेल)। करन्त=करते हैं।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि उस बड़े पेड़ की शरण

लेनी चाहिये जो वर्ष पर्यन्त फल देता रहे और जिसकी ठण्डी एवं सुख-दायक छाया हो, व पंछी उसकी शाखाओं पर तरह-तरह की क्रीड़ा करते हों। भाव यह कि मनुष्य को सर्वश्री-सम्पन्न भगवान् का ही आश्रय लेना चाहिये। इससे उसके सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाते हैं।

गाँठि दाम ना बाँधई नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साधु के हम चरनन की खेह॥

शब्दार्थ—**गाँठि**=जेब में, गांठ में। **दाम**=रुपया। **नेह**=प्यार। **चरनन**=चरण (पैर)। **खेह**=मिट्टी, धूल।

भावार्थ—संत कबीर साधु की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि सच्चा साधु वही है जो जेब में पैसा नहीं रखता और न स्त्री से प्यार करता है अर्थात् संत को न तो लोभ ही होता है और न मोह। कबीरदास जी कहते हैं—मैं ऐसे नेक संत के चरणों की धूल के समान हूँ।

साधु सती औ' सूरमा ज्ञानी औ' गज-दंत।
ऐसे निकसि न बाहुरै जो जुग जाहि अनंत॥

शब्दार्थ—**साधु**=सज्जन। **सती**=पतिव्रता स्त्री। **सूरमा**=शूरवीर। **गजदंत**=हाथी का दांत। **बाहुरै**=पुनः (फिर लौटते)। **जुग**=युग। **जाहि**=व्यतीत हो जाये। **अनंत**=अनेक।

भावार्थ—सज्जन, सती, शूरवीर, ज्ञानी पुरुषों के वचन और हाथी का दांत एक बार अपने स्थान से निकल जाने पर पुनः युग-युगान्तरों तक उस स्थान पर नहीं आ सकते। साधु या नारी यदि पतित हो जायँ तो एक की तपस्या और दूसरी की धर्म-मर्यादा कभी लौट नहीं सकती। इसी प्रकार ज्ञानी, शूर और हाथी के दांत का हाल है।

अथवा—जैसे हाथी के दांत एक बार उसके मुँह से बाहर निकल आते हैं तो फिर वे उसके मुख के अन्दर वापस कभी नहीं जा सकते चाहे कितने

युग क्यों न बीत जायँ; उसी प्रकार हाथी, शूरवीर, सती व साधु पुरुष एक बार जो मुँह से कह देते हैं उससे वे कभी नहीं फिरते ।

रूखा सूखा खाइकै ठंडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥

शब्दार्थ—रूखा सूखा=सादा । (बिना घी वाला) । पीव=पी । बिरानी=दूसरे की । जीव=मन ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू सादी अर्थात् बिना घी वाली रूखी-सूखी रोटी खाकर और शीतल जल पीकर सहर्ष निर्वाह कर । किसी दूसरे की चुपड़ी रोटी देख कर अपने मन को न तरसा । भावार्थ यह कि संतोष ही सर्वोत्तम धन है ।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
ढाई अक्खर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय ॥

शब्दार्थ—पोथी=पुस्तक । मुआ=मर गया । पंडित=ज्ञानी । अक्खर=अक्षर ।

भावार्थ—कबीरदास जी व्यंग्य कसते हुए कहते हैं कि यह संसार ग्रंथ व पुस्तकें पढ़-पढ़कर भी परम ज्ञानी नहीं हो सका और न ही प्रभु-प्रेम के महत्व को समझ सका है । प्रेम के केवल ढाई अक्षर (राम) हैं जो इसे पढ़ लेता है वह वास्तव में विद्वान् हो जाता है ।

कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूँढै बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है दुनिया जानै नाहिं ॥

शब्दार्थ—कुण्डल=नाभि । बसै=रहती है (होती है) । मृग=हरिण । माहिं=में (भीतर) । घट=शरीर । पीव=परमात्मा ।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार हरिण की नाभि में कस्तूरी होती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में परमात्मा का वास है ।

जैसे मृग सुगंध के कारण बन-बन भटकता फिरता है वैसे ही मनुष्य हृदयवासी ईश्वर को बाहर खोजता है। दुःख तो यह है कि इस रहस्य को अज्ञानी संसार नहीं जानता। ईश्वर को खोजने के लिए बन बन भटकने की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है उसे अपने भीतर देखने की।

हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत॥

शब्दार्थ—**हरि**=भगवान्। **जनि**=मत। **हेत**=प्रेम। **हरिजन**=भगवान् के भक्त। **माल मुलुक**=वैभव (धन-दौलत)।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि तू चाहे भगवान् से भले ही प्रेम मत कर, पर भगवान् के भक्त से अवश्य प्रेम कर; क्योंकि भगवान् तो प्रसन्न होकर केवल धन-धाम ही देंगे पर भगवान् का भक्त तो भगवान् को ही दे देगा।

जो आवै तो जाय नहिं जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की समझ लेहु मन माहिं॥

शब्दार्थ—**आवै**=आता है। **अकथ**=जो कही न जाय। **लेहु**=लो। **माहिं**=अन्दर।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि प्रेम की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि जिसके हृदय में प्रभु-प्रेम का संचार हो जाता है फिर वह प्रभु-प्रेम उसके हृदय में से निकल नहीं सकता और जिसके हृदय में उसका संचार नहीं होता वह उससे वंचित ही रह जाता है।

सपने में साईं मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मति सुपना ह्वै जाय॥

शब्दार्थ—**साईं**=प्रियतम। **सोवत**=सोता हुआ। **डरपता**=डरता हुआ। **मति**=मत।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मुझे प्रियतम स्वप्न में मिले और उन्होंने मुझ सोते हुए को जगाकर सचेत कर दिया। अब मैं इस डर के मारे अपनी आँखें नहीं खोलता कि कहीं यह सारी सच्ची घटना स्वप्न न बन जाय।

कबिरा बैद बुलाइया पकरिके देखी बाहिं।
बैद न बेदन जानइ करक करेजे माँहि॥

शब्दार्थ—बैद=वैद्य। बुलाइया=बुलवाया। पकरिके=पकड़ कर। बाहिं=हाथ। बेदन=पीड़ा। करक=कसक। करेजे=हृदय।

भावार्थ—कबीरदास जी ने वैद्य बुलवाया और उसने हाथ पकड़ कर नाड़ी की परीक्षा की परन्तु वह हृदय की पीड़ा या दर्द को न समझ सका और न ही उसके कारण को खोज पाया। भला अनाड़ी वैद्य पिया-मिलन की व्याकुलता को क्या समझ सके। यह रोग शरीर का रोग नहीं प्रत्युत आत्मा का है। उस परम प्रियतम के विरह की वेदना को भला यह संसारी वैद्य क्या जान सकता है।

मांस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया मन्द हमारे भाग॥

शब्दार्थ—गया=नष्ट हो गया। पिंजर=हड्डी का ढाँचा मात्र। ताकन=देखने। मन्द=बुरे।

भावार्थ—प्रभु-विरह में व्याकुल कबीरदास जी अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अब तो प्रतीक्षा करते-करते मेरे शरीर का बुरा हाल हो गया है। यहाँ तक कि मांस नाम-मात्र को नहीं रहा। कौवे इस अभिप्राय से देख रहे हैं कि यह कब मरे और इसकी आँखें निकालें। ऐसी अवस्था में भी ईश्वर ने दर्शनों की कृपा नहीं की। अतः हम अत्यन्त मन्द-भाग्य हैं।

रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय॥

शब्दार्थ—गँवाई=खोई। सोय=सोकर। दिवस=दिन। हीरा=उत्तम।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि रात सोकर खो दी और सारा दिन खाने-पीने में काट दिया परन्तु ईश्वर का भजन न किया। हीरे के समान उत्तम और अमोल जन्म को बेकार कौड़ी के समान तुच्छ बनाकर नष्ट कर दिया।

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करेगा कब्ब॥

शब्दार्थ—काल=कल। अब्ब=अभी। पल=अल्प काल में। परलै=प्रलय। बहुरि=फिर।

भावार्थ—तत्वज्ञानी कबीरदास जी कहते हैं कि जो कुछ तुझे कल करना है वह आज कर ले और जो तुझे आज करना है वह अभी कर। थोड़े समय के पश्चात् जब प्रलय (मृत्यु) हो जायगी तब तू कुछ नहीं कर सकेगा केवल पश्चात्ताप ही करता रह जायगा, इसलिए जो-कुछ अच्छा काम तुझे करना है उसे अभी कर ले। आज का काम कल पर न टाल।

जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानन्द॥

शब्दार्थ—जा=जिस। जग=संसार। मरिहौं=मरूँगा। पाइहौं=पाऊँगा। परमानन्द=परमात्मा।

भावार्थ—निडर कबीरदास जी कहते हैं कि जिस मृत्यु से संसार डरता है मुझे उस मृत्यु से कोई भय नहीं लगता। मैं तो उसके आने पर आनन्द मनाऊँगा, क्योंकि कौन जाने कब मर कर परमेश्वर को पा लूँ। भक्त कबीर को मृत्यु भयभीत नहीं करती प्रत्युत प्रियतम-मिलन का विश्वास

दिलाती हैं, इसलिए उन्हें आनन्द होता है।

जो देखे सो कहै नहिं कहै तो देखे नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं रसना द्रिग स्रुति काहिं॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। द्रिग=आँख। स्रुति=कान।

भावार्थ—जिसने उस प्रभु का साक्षात्कार कर लिया वह तो उसका वर्णन कर नहीं सकता और जो उसका वर्णन करते फिरते हैं उन्होंने उसको देखा ही नहीं। इसी प्रकार जो उसके गुणों को सुनते हैं वे दूसरे को समझा नहीं सकते अथवा जो नेत्र से देखते हैं वे तो कह नहीं सकते और जो जिह्वा बोलती है वह देख नहीं सकती। इस प्रकार जो कान सुनते हैं वह दूसरे को समझा नहीं सकते। ये सब भिन्न-भिन्न हैं।

जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम॥

शब्दार्थ—बाढ़ै=बढ़ जाये। दाम=रुपया। दोऊ=दोनों। उलीचिये=फेंकिये। काम=कार्य।

भावार्थ—नीति-निपुण कबीरदास जी कहते हैं कि नाव में जल और घर में धन-सम्पत्ति, रुपये बढ़ जावें तो दोनों हाथों से उलीचना (देना) ही सज्जनों का काम है। भाव यह कि पानी न निकाला गया तो नौका डूब जायेगी और दान न किया गया तो घर का विनाश हो जायगा।

जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं रवि रजनी इक ठाम॥

शब्दार्थ—काम=काम-वासना। नाम=भगवान् का नाम। रवि=सूर्य। रजनी=रात। इक=एक। ठाम=स्थान।

भावार्थ—संत कबीरदास जी कहते हैं कि जहाँ कामवासना है वहाँ भगवान् का नाम नहीं होता और जहाँ भगवान् का नाम होता है वहाँ

कामवासना नहीं। क्या कभी सूर्य और रात्रि एक स्थान पर मिले हैं अर्थात् कभी नहीं मिलते। इसी प्रकार भगवान् का नाम और कामवासना दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते।

प्रभुता को सब कोइ भजे प्रभु को भजे न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥

शब्दार्थ—**प्रभुता**=बड़प्पन। **भजे**=ले। **चेरी**=दासी।

भावार्थ—सब लोग चाहते हैं कि हम प्रभु—स्वामी बन जायँ, पर उस प्रभु की उपासना कोई नहीं करता। यदि ईश्वर की उपासना करें तो सारी प्रभुता दासी बन जायगी।

आवत गारी एक है उलटत होत अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक॥

शब्दार्थ—**आवत**=आती हुई। **गारी**=गाली। **उलटत**=लौटती हुई।

भावार्थ—नीतिकुशल कबीर कहते हैं कि गाली आती तो एक है किन्तु यदि उल्टी दी जाय तो अनेक हो जाती हैं। अतः यदि उसे न उल्टो तो वही एक की एक ही रहती है अर्थात् गाली देने वाले को फिर गाली नहीं देनी चाहिये।

कबिरा गर्व न कीजिये अस जोवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस खंखर भया पलास॥

शब्दार्थ—**गर्व**=अभिमान। **अस**=इस। **जोबन**=यौवन। **दिवस**=दिन।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि इस यौवन की आशा पर अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह दस दिन खिलने वाले टेसू के समान है और बाद में सूखकर खंखर हो जायगा।

दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन।
रहिबे को अचरज बड़ो जाय तो अचरज कौन ॥

शब्दार्थ—द्वारे=दरवाजे पर। पींजरा=शरीर रूपी पिंजरा। तामें=उसमें। पौन=वायु, प्राण। अचरज=आश्चर्य।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि शरीर रूपी (आँख, कान, नाक, मुख आदि) दस द्वार के पिंजरे में प्राण रूपी पक्षी है। यदि यह इस पिंजरे से उड़ जाय तो क्या आश्चर्य है। हां, रहने में तो निश्चय ही आश्चर्य की बात है।

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय।
दुइ पाटन के बीच में साबित रहा न कोय ॥

शब्दार्थ—दुइ=दो। पाटन=पुड़ों। साबित=पूरा।

भावार्थ—कबीरदास जी चलती चक्की देखकर रो पड़े। क्योंकि इस संसार रूपी चक्की के जन्म-मरण रूपी दोनों पाटों के बीच में पड़कर कोई भी बचकर नहीं निकल सका। अन्त में सब मृत्यु का ग्रास बनते हैं।

सिंहन के लहँड़े नहीं हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ साध न चलैं जमात ॥

शब्दार्थ—सिंहन=शेरों के। लहँडे=झुण्ड। पांत=पंक्तियां। जमात=टोली।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि शेरों के समूह नहीं होते, हंसों की पंक्तियां नहीं होतीं, हीरों के ढेर नहीं होते, और महात्माओं की जमात नहीं होती। भाव यह कि सज्जन कोई लाखों में एक आध ही होता है।

पतिबरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिबरता के रूप पर वारौं कोटि सरूप ॥

शब्दार्थ—**पतिवरता**=पतिव्रता (सती) । **कुचित**=बुरी । **कुरूप**=बुरे रूप वाली । **कोटि**=करोड़ों ।

भावार्थ—चाहे काली, कुचैली और कुरूप भी क्यों न हो, यदि स्त्री पतिव्रता है तो वह श्रेष्ठ है । पतिव्रता के साधारण स्वरूप पर भी करोड़ों सुन्दर रूपों को न्योछावर किया जा सकता है ।

नीर पियावत का फिरै घर घर सायर वारि ।
तृषावंत जो होइगा पीवैगा झख मारि ॥

शब्दार्थ—**नीर**=जल । **सायर**=समुद्र । **वारि**=जल । **तृषावंत**=प्यासा ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि तू पानी क्या पिलाता फिरता है, प्रत्येक घर में सरोवर बने हैं । इसलिए जो प्यासा होगा वही स्वयं झख मार वहां पानी पीने आयेगा । भाव यह कि तू घर-घर जाकर लोगों को उपदेश मत देता फिर । जिसको ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होगी वह स्वयं तेरे पास आ जायगा ।

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते का लागत है मोर ॥

शब्दार्थ—**तोर**=तेरा । **लागत**=लगता है । **मोर**=मेरा ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु, मेरा मुझ में कुछ नहीं है, यह जो कुछ भी है वह तुम्हारा है । तेरी वस्तु तुझे सौंप रहा हूँ । इसमें मेरा कुछ मोल नहीं लगा है या मेरा इसमें क्या लगता है ।

जब लगि मरनै से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ो दूर है प्रेम घर समुझ लेहु मन माँहि ॥

शब्दार्थ—**जब लगि**=जब तक । **लेहु**=लो ।

भावार्थ—मनुष्य जब तक मरने से डरता रहता है तब तक वह

सच्चा प्रभु-प्रेमी नहीं बन सकता, इसलिए इस बात को हृदय में समझ लो कि प्रेम का घर बहुत दूर है। प्रभु-प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।

देखा देखी भक्त का कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाँड़सी ज्यों केंचुली भुजंग॥

शब्दार्थ—चढ़सी=चढ़ता है। विपति=कठिनाई। छाँड़सी=छोड़ता है। भुजंग=सर्प।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि दूसरों की देखा-देखी भक्ति का रंग कभी नहीं चढ़ सकता। थोड़ी-सी विपत्ति में साँप की केंचुली के समान भक्ति का नकली रंग उतर जायेगा। भाव यह कि भक्ति तो हृदय से होनी चाहिए।

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

शब्दार्थ—लाल=प्रियतम। जित=जहाँ। तित=तहाँ। लाली=उस प्रियतम का प्रकाश।

भावार्थ—सत्यवादी कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे प्रियतम का ही प्रकाश सर्वत्र दिखाई दे रहा है। मैं जो उस प्रकाश को देखने के लिये प्रस्तुत हुआ तो मैं उसी का स्वरूप बन गया। ब्रह्मज्ञान के हो जाने पर आत्मा और परमात्मा में कोई भेद-भाव नहीं रहता।

जाको राखे साईयाँ मारि सके न कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥

शब्दार्थ—जाको=जिसको। राखे=रक्षा करे। साईयाँ=स्वामी। बाल=केस। बांका=टेढ़ा।

भावार्थ—भगवान् जिसके रक्षक हों उसको कोई नहीं मार सकता।

चाहे सारा संसार ही उसका बैरी क्यों न हो जाय, पर उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देइ उड़ाय॥

शब्दार्थ—साधू=सज्जन। सूप=छाज। सुभाय=स्वभाव। सार=तत्व। गहि=ग्रहण करना।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधु तो छाज के समान गुणग्राही होना चाहिये, जो सार को तो ग्रहण कर ले और निस्सार वस्तु को उड़ा दे, त्याग दे।

एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे कहैं कबीर विचारि॥

शब्दार्थ—दोय=दो। गारि=गाली। विचारि=विचार कर।

भावार्थ—संत कबीरदास जी कहते हैं कि प्राणी मात्र ब्रह्मस्वरूप है, अतः उसे एक ही नहीं कहा जा सकता, परब्रह्म दो भी तो नहीं हैं। इसलिये वह जैसा है वैसा ही है अर्थात् अनिर्वचनीय है।

जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास से पातरा ऐसा तत्व अनूप॥

शब्दार्थ—जाके=जिसके। रूप=स्वरूप। पुहुप=पुष्प। वास=गंध। पातरा=पतला। अनूप=विचित्र।

भावार्थ—जिसके मुख, मस्तक तथा कोई भी आकार प्रकार नहीं, वह प्रभु पुष्प की सुगन्धि से भी सूक्ष्म है। अतः उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

जनम मरन से रहित है मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय॥

शब्दार्थ—**जनम**=पैदा होना। **बलिहारी**=न्यौछावर। **पीव**=प्रियतम। **सिरजा**=रचा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मेरा प्रियतम जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त है। मैं उस प्रियतम पर न्योछावर हो जाता हूँ जिसने संसार के कण-कण की रचना की है।

साहेब सों सब होत है बंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माँहि॥

शब्दार्थ—**साहेब**=ईश्वर। **बंदे**=मनुष्य।

भावार्थ—ईश्वर सब कुछ करने वाला है मनुष्य नहीं, यदि प्रभु चाहे तो राई को पर्वत और पर्वत को राई कर सकता है।

कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर।
माला स्वाँस उसास की जामें गाँठ न मेर।

शब्दार्थ—**काठ**=लकड़ी। **जतन**=यत्न। **स्वाँस**=श्वास। **जामें**=जिसमें। **मेर**=माला का सुमेरु।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस लकड़ी की माला को बड़े परिश्रम से क्यों फेरता है। सच्ची माला तो अपने श्वासों की है जिसमें न तो गाँठ है और न सुमेरु ही, अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ प्रभु का स्मरण करता रहे।

कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिन्ते क्या होय।
मेरी चिन्ता हरि करैं चिन्ता मोहि न कोय॥

शब्दार्थ—**चिन्तहूँ**=चिन्ता करूँ। **मम**=मेरे। **हरि**=ईश्वर। **मोहि**=मुझे। **कोय**=कोई।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैं अपने लिए चिन्ता क्यों करूँ और मेरे चिन्ता करने से होता ही क्या है। मेरी तो प्रभु को चिन्ता

है, अतः मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं।

कथनी मीठी खाँड सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय॥

शब्दार्थ—कथनी=कथन (कहना)। विष=ज़हर। करनी=कर्म। लोय=लोया।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि केवल बातें बनाना तो शक्कर के समान मीठा अर्थात् अत्यन्त सरल है परन्तु कार्य करना विष के समान है अर्थात् अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य केवल बातें बनाना छोड़कर कार्य करने लग जाये तो विष भी अमृत हो जाता है अर्थात् काम ठीक हो जाते हैं।

एक अचंभौ देखिया हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा है नहीं कौड़ी बदले जाय॥

शब्दार्थ—अचम्भौ=आश्चर्य। हीरा=रत्न। हाट=दुकान। परखनहारा=पहचान वाला।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि हमने एक आश्चर्यजनक बात यह देखी कि हीरा बाज़ार में बिक रहा है परन्तु सच्चे परीक्षक के न होने से वह एक कौड़ी में ही बिक जाता है। भाव यह कि ज्ञानी पुरुष के ज्ञान का मूर्ख लोग आदर नहीं कर सकते।

जो हंसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय॥

शब्दार्थ—चुगै=खाये। पतियाय=विश्वास करे। काँकर=पत्थर। नवै=झुके।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हंस तो मोती चुगता है पत्थर नहीं। यदि मोती मिल जाय तो उन्हें आदरपूर्वक उठा लेता है परन्तु

पत्थरों को वहीं त्याग देता है, उनके उठाने के लिए सिर नहीं झुकाता। भाव यह कि ज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट पदार्थों—सारभूत वस्तुओं को ही ग्रहण करता है निस्सार को नहीं।

मैं मरजीवा समुद्र का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक॥

शब्दार्थ—मरजीवा=गोता लगाने वाला, गोताख़ोर। वस्तु=चीजें।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मैं संसाररूपी सागर में मरजीवा (गोताख़ोर) बनकर आया हूँ। अतः मैं इसमें डुबकी लगाकर ज्ञान की ऐसी मुट्ठी भर लाया हूँ जिसमें अनेकों महत्वपूर्ण वस्तुएँ समाई हुई हैं।

कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस॥

शब्दार्थ—सीप=सीपी। समुद्र=सागर। गहै=ग्रहण करना। स्वाति=एक नक्षत्र का नाम।

भावार्थ—महात्मा कबीर कहते हैं कि सागर की सीप प्यास के कारण अत्यन्त व्याकुल हो रही है परन्तु फिर भी सागर का खारा पानी नहीं पीती। वह तो स्वाति नक्षत्र की एक बूँद की प्यासी है और उसी की आशा रखती है।

गाया जिन पाया नहीं अनगाये तें दूरि।
जिन गाया विश्वास गहि ताके सदा हुजूरि॥

शब्दार्थ—गाया=भजन किया। अनगाये=बिना भजन किये। गहि=ग्रहण कर। ताके=उसके। हुजूरि=हाजिर।

भावार्थ—जो केवल भगवान् का नाम रटते फिरते हैं तथा कहते फिरते हैं उन्होंने भगवान् को प्राप्त नहीं किया और जो कभी भी भगवान् का नाम नहीं लेते उनसे भी भगवान् दूर रहते हैं परन्तु जो भगवान् का भजन पूर्ण विश्वास के साथ करते हैं वे सदा ही उसके साथ रहते हैं।

गुरु नानक

परिचय

जन्म-संवत् १५२६ मृत्यु-संवत् १५६६

आपका जन्म १५२६ में हुआ। आप बचपन से ही सरल प्रकृति के थे। आपकी रुचि ईश्वरीय ज्ञान की ओर प्रवृत्त थी। सांसारिक वस्तुओं से आपका तनिक मात्र भी लगाव न था। आप निर्गुणोपासक थे। साम्प्रदायिकता से आपको बड़ी घृणा थी। भक्ति के आवेश में आकर आप जो गीत गाते थे, उन सब का संकलन सं० १६६१ में 'गुरु-ग्रंथ साहब' में किया गया। ये भजन पंजाबी का पुट लिये हुए देश की सामान्य काव्य-भाषा हिन्दुस्तानी में हैं। आपका गोलोकवास १५६६ में हुआ।

जपुजी और पद

सार और आलोचना

संगृहीत कविताओं में ईश्वर को अनादि काल से सत्य माना गया है। इन कविताओं में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ईश्वर की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। यहाँ गुरु को ईश्वर से बढ़कर स्थान दिया गया है। बतलाया गया है कि गुरुदर्शन के बिना आन्तरिक प्यास कभी शान्त हो ही नहीं सकती। आपकी कविता का सार यह है कि दम्भ, अहंकार आदि कुत्सित भावनाओं को त्याग कर केवल ईश्वर का भजन करो।

आपकी कविता का लक्ष्य केवल मनोरंजन नहीं, प्रत्युत उपदेश है। आपका उपदेश आत्मिक ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। आडम्बर आत्मज्ञान में बाधक है, इसलिए आपने इसे अच्छा नहीं समझा।

आदि सचु जुगादि सचु।
हैं भी सचु 'नानक' होसी भी सचु ॥

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपै चुपि न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिआ भुख न उतरी जे बना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ॥
किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि ॥
हुकुमि रजाई चालणा 'नानक' लिखिआ नालि ॥१॥

शब्दार्थ—आदि=सृष्टि का आरम्भ। **सचु**=सच, सत्य। **जुगादि**=युग का आरम्भ। **होसी**=होगा। **सोचै**=शौच, पवित्रता करने

से या सोचने-विचारने से । **सोचि न होवई**=पवित्रता नहीं हो सकती, या विचार का विषय नहीं बन सकता । **लखवार**=लाखों बार । **लिव**= लौ, उस प्रियतम में लगन । **तार**=इक तार, निरन्तर । **भुखिआ**=भूखों की । **पुरीआ**=पुरी, भुवनों का । **भार**=समूह । **सहस**=हज़ारों। **सिआणपा**=चतुरता । **लख**=लाखों । **नालि**=साथ । **सचिआरा**= सत्य स्वरूप, सच वाला । **किव**=कैसे । **कूड़ै**=असत्य की । **पालि**= दीवार । **तुटै**=टूटे । **रजाई**=आज्ञा, उस प्रभु का आदेश ।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि वह प्रभु और उसका नाम अनादि युगों से सत्य है । वह सत्य-स्वरूप था, सत्य-स्वरूप है और सत्य-स्वरूप ही रहेगा ।

मनुष्य चाहे कितना ही किसी वस्तु के बारे में सोच-विचार करे पर उसके सोचने से कुछ नहीं होता । चाहे वह लाख बार सोच ले, उसका सोचा हुआ कभी पूरा नहीं हो सकता । होता तो वही है जो ईश्वर करना चाहता है । चुप रहकर प्रभु में अपनी चित्त-वृत्ति लगा देने से भी मनुष्य का मन चुप (शान्त) नहीं रहता । चाहे पूरियों का ढेर भी क्यों न बना ले, पर उनके देखने मात्र से बिना खाये किसी भूखे की अथवा यदि उसके भाग्य में नहीं हैं तो भूख नहीं मिटती । चाहे कोई हज़ारों प्रकार की चतुरता क्यों न दिखाये, पर उसकी कोई चतुरता उसके साथ नहीं जायेगी । भला मनुष्य को सचाई से प्राप्त होने वाली शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, और असत्य की दीवार कैसे टूट सकती है । नानक जी कहते हैं कि मनुष्य के साथ जो भाग्य के लेख लिखे हुए हैं मनुष्य को उन्हीं की आज्ञा के अनुसार चलना पड़ता है ।

भाव यह कि वह सत्य स्वरूप परब्रह्म आदि अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से पूर्व भी विद्यमान था । वह सर्वादि सत्य-स्वरूप परमात्मा सृष्टि के मध्य में—वर्तमान समय में—भी विद्यमान है और अन्त में भी बना रहेगा ।

इस पद के अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न प्रकार से किये हैं। हमारी धारणा है कि इस पद में श्री गुरु नानकदेव जी—भगवान् ने जो भाग्य में लिख दिया है, भाग्य के लिखे को कोई नहीं मिटा सकता, इसी आशय का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि—मनुष्य के अपने सोचने से कुछ नहीं होता, चाहे वह लाखों बार क्यों न सोच ले, मनुष्य का सोचा कभी नहीं होता, होता तो वह है जो प्रभु सोचता है। मनुष्य चाहे कितना ही एकाग्र भाव से लगन लगा कर मन को चुप अर्थात् शान्त करने का प्रयत्न क्यों न करे, मन कभी चुप नहीं होता; वह तो इधर-उधर भटकता ही रहता है।

मनुष्य भूखा है, वह चाहता है कि उसकी भूख मिट जाय, और उसके सामने परियों का भार अर्थात् नाना प्रकार के पदार्थों का ढेर भी लगा पड़ा है फिर भी उसके भाग्य में नहीं लिखा तो उसकी भूख मिट नहीं सकती, उसे वे पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते। चाहे मनुष्य में हज़ारों चतुराइयाँ क्यों न हों, पर एक भी उसके साथ न जायगी। भाव यह कि जब मनुष्य के भाग्य में कोई बात लिखी नहीं होती तो उसकी कोई भी चतुराई काम नहीं आती। फिर भला मनुष्य को कैसे शक्ति प्राप्त हो और असत्य या दुःखों की दीवार कैसे टूट सकती है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा जो उसने जन्म के समय ही मनुष्य के भाग्य के रूप में लिख दी है उसी के अनुसार मनुष्य को चलना होगा।

इस पद्य के निम्न दो प्रकार के और भी अर्थ प्राप्त हुए हैं :—

(वह परमात्मा, जिसका स्वरूप इससे पहले मूलमन्त्र में वर्णन किया गया है) आदि में सत्य था, युगों के आदि में सत्य था, अब भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य होगा (यह श्री नानक जी कहते हैं)।

(इस सत्य स्वरूप अकाल पुरुष को प्राप्त करने के लिए, सत्य स्वरूप बनने के लिए असत्य की दीवार तोड़ने की आवश्यकता है, वह दीवार

शरीर धोने वाले मनुष्यों से कर्मों द्वारा नहीं टूटती; क्योंकि शारीरिक) शौच कर्म से (मन की शुद्धि) नहीं प्राप्त होती, चाहे लाख बार शुद्धि करते रहें। (अगर मैं बोलूँ ही नहीं, तो झूठ बन्द हो गया और स्वयं ही सत्य बन गया, इस पर बताते हैं कि बोलने की अपेक्षा) चुप रहने से (मन को वासना के वेग की झूठी लगन से) चुप अर्थात् शान्ति नहीं हो सकती, चाहे निरन्तर लगाये रखूँ। (इसी तरह व्रत धारण करने या) भूखे रहने से (वासना में रहने वाले झूठे पदार्थों की) भूख (तृष्णा कभी) तृप्त नहीं होती। चाहे (व्रतों के प्रभाव से चौदह) पुरियों के भार (धनाधिक्य) प्राप्त कर लूँ। (बुद्धि के चातुर्य) बुद्धिमत्ता चाहे हज़ारों लाखों हों। (वे अहम् [अहंकार] के आश्रित होने से इधर ही रह जाती हैं) (वहाँ सत्य के देश तक) एक भी साथ नहीं जाती। (फिर बताइये) कैसे सत्यस्वरूप बनें और असत्य की दीवार कैसे टूटे (जो कि हमारे और उस परब्रह्म परमात्मा के मध्य विघ बोल रही है) ? हे नानक ! परमेश्वर की (उस) आज्ञा के अनुसार चलना (करना, जो उसने जीव के) साथ लिख दिया है (सत्यस्वरूप बन जाता है)। (उसकी आज्ञा का विषय अगली पौड़ी में बताया है)।

अथवा

निराकार को जो मनुष्य अपने विचार का विषय बनाना चाहे तो चाहे वह लाखों बार ध्यान जमाये निराकार उसकी सोच का विषय नहीं बन सकता। अगर कभी मैं अपनी लगन चुपचाप होकर उस निरंकार के ध्यान में लगाये रखूँ तो भी अन्तरात्मा में शान्ति नहीं आती। आत्मज्ञान के भूखों की भूख नहीं उतरती यदि उनको पदार्थों वाली दुनियाँ की एक पुरी (लोक) नहीं कई पुरियों (भुवनों) के समूह (loads of worlds) मिल जायें। हज़ारों नहीं, लाखों ही सांसारिक चतुराइयों का मनुष्य स्वामी हो जाय परन्तु उसको निरंकार तक पहुँचाने के लिये कोई भी चतुराई

साथ नहीं देती। फिर कैसे सच वाले बनें ? झूठ की दीवार कैसे टूटे ? गुरु नानक जी कहते हैं—निरंकार की आज्ञा में चलने से सिद्धि प्राप्त होती है। यह आज्ञा निरंकार ने मनुष्य को बनाते समय ही साथ लिख दी है।

सुणिऐ ईसरु बरमा इन्दु।
सुणिऐ मुखि सलाहण मंदु।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद।
सुणिऐ सासत सिमृति वेद।
'नानक' भगता सदा विगासु।
सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ—**सुणिऐ**=(उस प्रभु के नाम के) सुनने से। **ईसरु**=ईश्वर-भगवान् शंकर। **बरमा**=ब्रह्मा। **इन्दु**=इन्द्र। **मुखि**=मुख से। **सलाहण**=सलाह, विचार या प्रशंसा। **मंदु**=मन्द पुरुष–छोटे आदमी भी। **जोग जुगति**=योग की युक्तियाँ। **तनि**=के। **भेद**=रहस्य। **सासत**=शास्त्र। **सिमृति**=स्मृति=मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थ। **भगता**=भक्तों को। **विगासु**=आनन्द, प्रसन्नता या खिला हुआ। **नासु**=नाश।

भावार्थ—उस प्रभु के नाम के सुनने से शिवजी, ब्रह्मा और इन्द्र की पदवी प्राप्त होती है। नाम के श्रवण से पापी लोग भी निरंकार प्रभु की प्रशंसा करने लग जाते हैं। नाम के श्रवण से प्रभु से मिलने की युक्ति और शरीर का भेद खुल जाता है। नाम के सुनने से शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। गुरु नानक जी कहते हैं—भक्तों के अन्दर सदा वह ईश्वर खिला हुआ रहता है। नाम के श्रवण से दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

१

मन की मनहीं माँहि रहि।
ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही।
दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्ण मही।
और सकल जग मिथ्या जानो, भजना राम सही।
फिरत-फिरत बहुते जग हार्यो, मानस देह लही।
'नानक' कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरन कहा नहीं।
गुरु गोविन्द गायो नहीं, जनम अकारथ कीन।
'नानक' भजु रे हरि मना, जेहि बिन जल को मीन।
विषयन सों काहे रच्यो, निमिष न होय उदास।
कहि 'नानक' भजु हरि मना, परै न जम की फाँस।

शब्दार्थ—भजे=भजन किया। गही=पकड़ ली। दारा=स्त्री। मीत=मित्र। पूत=पुत्र। संपति=धन। पूर्ण=भरी हुई। जन=मनुष्य। मही=पृथ्वी। सकल=सब। मिथ्या=झूठा। मानस=मनुष्य। देह=शरीर। लही=प्राप्त की। बिरियाँ=समय, अवसर। अकारथ=व्यर्थ। कीन=किया। मीन=मछली। विषयन=काम, क्रोध आदि विषय-वासनाएँ। काहे=क्यों। रच्यो=लीन हुआ, लगा रहा। निमिष=पल भर, ज़रा-सा।

भावार्थ—नानक जी मनुष्य के विनाश की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं कि जब काल ने आकर चोटी पकड़ ली तो हमारे मन के सब विचार मन ही में रह गये। न तो हम भगवान् का भजन कर सके और न तीर्थ-यात्रा ही कर पाये। स्त्री,पुत्र,मित्र,रथ,धन-दौलत और सगे-सम्बन्धियों से भरे हुए यह घर-बार (ज़मीन-जायदाद) और जो दूसरे भी पदार्थ हैं वह सब झूठे हैं। राम का भजन ही सच्चा है। संसार में इधर-उधर बहुत भटकते हुए अथवा चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् यह दुर्लभ

मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। इसलिए नानक जी कहते हैं कि इस मनुष्य शरीर को पाकर जब प्रभु से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ तो तू उसका स्मरण क्यों नहीं करता ? तूने गुरु और गोविन्द का भजन नहीं किया। इस प्रकार मनुष्य-जन्म को व्यर्थ खो दिया। नानक जी कहते हैं कि हे मन ! तू हरि का भजन कर, उसके विना यह मानव शरीर वैसे ही व्यर्थ है जैसे कि पानी के विना मछली। हे मन ! तू काम क्रोध आदि विषय-वासनाओं में क्यों लगा हुआ है ? एक पल के लिए भी विषय-वासनाओं से उदास नहीं होता। अब भी तू हरि का भजन कर, ताकि यमराज की फाँसी में न बँधना पड़े।

२

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध संगति दुर्जन की, ताते अहनिस भागो।
सुख-दुख दोनों सम करि जाने और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्त पिछाना।
अस्तुत निन्दा दोउ तिआगे खोजे पद निरवाना।
जग 'नानक' यह कठिन है किनहूँ गुरुमुख जाना॥

शब्दार्थ—**त्यागो**=छोड़ दो। **संगति**=साथ। **दुर्जन**=दुष्ट। **ताते**=उससे। **अहनिस**=रात-दिन। **सम**=बराबर। **हर्ष**=खुशी, प्रसन्नता। **शोक**=दुःख। **अतीता**=परे। **तत्त**=तत्त्व, सार। **अस्तुत**=प्रशंसा, स्तुति। **निरवाना**=निर्वाण, मोक्ष।

भावार्थ—हे सज्जनो ! मन के अभिमान को छोड़ दो। काम, क्रोध और दुष्टों की संगति से रात-दिन बचते रहो (दूर भागते रहो)। जो व्यक्ति दुःख और सुख दोनों को तथा मान और अपमान को समान समझता है और हर्ष व शोक से परे रहता है अर्थात् सुखदायक वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता और दुःखदायक वस्तु को पाकर दुःखी नहीं होता, स्तुति और

निन्दा दोनों को छोड़ देता है वही संसार के तत्त्व को पहचानता है और उसी ने निर्वाण पद अर्थात् मोक्ष का पद खोज लिया है। नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार समदर्शी बन जाना अत्यन्त कठिन है। कोई-कोई साधक ही गुरु की कृपा से इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

३

इस दम दा मैनु की भरोसा, आया आया न आया न आया।
या संसार रैन दा सुपना, कहिं दीखा कहिं नाहिं दिखाया॥
सोच विचार करे मत मन में, जिसने ढूँढ़ा उसने पाया।
'नानक' भक्तन के पद परसे, निसदिन रामचरन चित लाया॥

शब्दार्थ—रैन=रात। पद=चरण, पैर। परसे=छूना, स्पर्श करना। निसदिन=रात-दिन।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि इन श्वासों का मुझे क्या भरोसा है। जो श्वास मैं ले रहा हूँ उससे अगला श्वास आ जाये तो आ जाये और यह भी हो सकता है कि न आये। यह संसार तो रात्रि के स्वप्न के समान है, जो कभी दीखता है और कभी नहीं दीखता। हे मन! तू अब उस प्रभु की भक्ति करने के सम्बन्ध में अधिक सोच-विचार मत कर। क्योंकि जो उसे ढूँढ़ता है वही उसे प्राप्त करता है। नानक जी कहते हैं कि मैं तो भक्तों के चरणों को छू कर रात-दिन राम के चरणों में चित्त लगाये रहता हूँ।

४

सब कछु जीवत का ब्योहार।
मात पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार।
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार॥
आध घरी कोऊ नहिं राखे घर तें देत निकार।
कहु 'नानक' भज राम नाम नित जातें होत उधार॥

शब्दार्थ—**जीवत को**=जीते रहने का। **ब्योहार**=व्यवहार। **सुत**=पुत्र। **बांधव**=सम्बन्धी। **अरु**=और। **पुन**=फिर। **गृह**=घर। **नार**=स्त्री। **तन**=शरीर। **न्यारे**=अलग। **प्रेत**=मुर्दा। **टेरत**=कहते हैं। **उधार**=उद्धार।

भावार्थ—संसार में सब कुछ व्यवहार तभी तक है जब तक मनुष्य जीता है। उसके मर जाने पर कोई किसी का नहीं रहता। यहाँ तक कि माता, पिता, भाई, पुत्र, सम्बन्धी और घर की स्त्री आदि सभी लोग मनुष्य के शरीर से ज्योंही प्राण निकलते हैं कि उसे मुर्दा कहने लगते हैं। कोई आधी घड़ी भी उसे घर में नहीं रहने देता। तत्काल घर से बाहर निकाल देते हैं। इसलिये नानक जी कहते हैं कि तू नित्य राम नाम का भजन कर जिस से तेरा उद्धार हो जाय।

५

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै।
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोक तें रहे नियारो नहीं मान अपमाना।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।
काम क्रोध जेहि परसैं नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी।
'नानक' लीन भयो गोबिन्द सों ज्यों पानी सँग पानी॥

शब्दार्थ—**सनेह**=प्रेम। **भय**=डर। **जाके**=जिसको। **कंचन**=सोना। **माटी**=मिट्टी। **लोभ**=लालच। **मोह**=ममता। **त्यागिकै**=छोड़कर। **निरासा**=निराशा। **जेहि**=जिसको। **परसैं**=छूए। **घट**=हृदय या शरीर। **ब्रह्म**=ईश्वर। **जुगति**=युक्ति, तरीका।

भावार्थ—जो मनुष्य दुःख को दुःख नहीं समझता। सुख, प्रेम

और भय आदि के भाव जिस के हृदय में नहीं हैं और जो सोने को भी मिट्टी समझता है। जो किसी की न निन्दा करता है और न स्तुति ही करता है। अथवा जो न अपनी निन्दा से दुःखी और प्रशंसा से सुखी होता है। जिसको लोभ, मोह, अभिमान नहीं है, हर्ष और शोक से जो अलग रहता है, जिसके हृदय में मान और अपमान की भावना भी नहीं है, जो संसार की सब आशाओं को मन से त्याग कर निराश रहता है, जिसे काम, क्रोध छूते भी नहीं, उसी के हृदय में उस परब्रह्म परमात्मा का वास है। जिस व्यक्ति पर गुरुदेव कृपा कर देते हैं वही इस युक्ति को पहचानता है, वह भगवान् में ऐसे लीन हो जाता है जैसे एक पानी दूसरे पानी में।

६

रे मन कौन गत होइहै तेरी।
गहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहीं निमिष कीन्ह।
दारा सुत भयो दीन, पगहुँ परी बेरी।
'नानक' जन कह पुकार सुपने ज्यों जग पसार।
सिमरत नहिं क्यों पुकार, माया जा की चेरी॥

शब्दार्थ—**गहि**=पकड़। **लुभान**=ललचाया। **मति**=बुद्धि। **दारा**=स्त्री। **निमिष**=पल। **दीन**=दुःखी। **पगहुँ**=पैरों में। **पसार**=फैला हुआ। **चेरी**=दासी।

भावार्थ—हे मन! तेरी क्या दशा होगी। मैंने तुझे कहा कि संसार में आकर राम नाम ले; उसे तूने सुना नहीं और विषय-वासनाओं में ललचाया रहा, उनसे तूने अपनी बुद्धि को कभी नहीं हटाया। मनुष्य जन्म पाकर भी तूने एक पल भर भी भगवान् का भजन नहीं किया।

स्त्री और पुत्रों के कारण तू बहुत दुःखी होता रहा। इनकी मानो तेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ गईं। नानक जी पुकार-पुकार कर कहते हैं कि यह संसार का प्रपंच स्वप्न के समान झूठा है, इसलिए तुम उसी भगवान् का पुकार-पुकार कर स्मरण क्यों नहीं करते जिसकी माया या लक्ष्मी भी दासी है।

७

सुमरन कर ले मेरे मना।
तेरी बीति जाति उमर हरि नाम बिना।
कूप नीर बिन, धेनु छीर बिन, मंदिर दीप बिना।
देह नैन बिन, रैन चंद बिन, धरती मेह बिना।
जैसे पंडित वेद विहीना, तैसे प्राणी हर नाम बिना।
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाँड़ दे अब संतजना।
कहे 'नानकशा' सुन भगवन्ता या जग में नहिं कोई अपना॥

शब्दार्थ—कूप=कुआँ। नीर=जल। धेनु=गौ। छीर=दूध। मंदिर=घर। दीप=दीपक। देह=शरीर। नैन=आँख। रैन=रात्रि। विहीना=रहित। निहारो=देखना।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि हे मन! तू भगवान् का स्मरण कर ले, क्योंकि भगवान् के भजन बिना तेरी आयु व्यर्थ ही में बीती जा रही है। जिस प्रकार पानी के बिना कुआँ, दूध के बिना गौ, दीपक के बिना घर, आँखों के बिना शरीर, चन्द्रमा के बिना रात्रि, बादलों या वर्षा के बिना पृथ्वी और वेदों के बिना पण्डित का जीवन व्यर्थ है। वैसे ही भगवान् के नाम बिना प्रत्येक प्राणी का जीवन व्यर्थ है। हे सज्जनो, अब तो तुम काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ की ओर देखना छोड़ दो। हे भगवद्-भक्तो, सुनो, इस संसार में (भगवान् के सिवा दूसरा) कोई भी अपना नहीं।

८

बिसर गई सब तात पराई जब से साधु संगत पाई।
नहिं कोई बैरी नहिं बेगाना सकल संग हमरी बनिआई ॥
जो प्रभु कीन्हौ सो भला करि मानो यह सुमति साधु से पाई।
सब में रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख 'नानक' बिगसाई ॥

शब्दार्थ—बिसर गई=भूल गई। तात=प्रिय। बैरी=शत्रु। बेगाना=पराया। सुमति=अच्छी बुद्धि। एकाकी=अकेला। पेख-पेख= देख-देख कर। बिगसाई=विकसित–प्रसन्न होता है।

भावार्थ— नानक जी कहते हैं कि जब से हमने सज्जनों की संगति प्राप्त कर ली है तब से हमारे हृदय में से परायेपन की भावना (या भेद-भावना) नष्ट हो गई है। अब न तो कोई हमारा शत्रु है और न ही कोई पराया है; अब तो सब के साथ हमारी अच्छी तरह निभ जाती है। भगवान् जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। हमें सज्जनों से यह सद्बुद्धि प्राप्त हुई है। वह एक राम ही सब में रम रहा है यह देख-देख कर नानकजी प्रसन्न होते हैं।

९

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास वसत है मुकुर माँहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतर घटही खोजो भाई।
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे मिटे न भ्रम की काई ॥

शब्दार्थ—सर्वनिवासी=सब स्थान पर रहने वाला। अलेपा= निर्लेप। समाई=समाया हुआ, व्यापक है। पुष्प=फूल। मध्य=बीच में। बास=सुगन्धि। मुकुर=शीशा। चीन्हे=पहचाने।

भावार्थ—हे मनुष्य! तू साधु बन कर उस प्रभु को जंगलों में ढूँढ़ने क्यों जाता है। वह सर्वव्यापक सदा निर्लेप रहने वाला ईश्वर तो तुझ ही में समाया हुआ है। जिस प्रकार फूलों में सुगन्धि रहती है और शीशे में परछाईं रहती है वैसे ही सब स्थानों में निवास करने वाला वह प्रभु भी तेरे हृदय में ही रहता है। इसलिए हे भाई, उसे अपने हृदय में ही ढूँढ़। हमारे गुरु ने यह ज्ञान बताया है कि बाहर और भीतर सर्वत्र वह एक ब्रह्म ही समाया हुआ है। नानक जी कहते हैं कि अपने आप को पहचाने बिना मनुष्य के भ्रम या सन्देहों की काई मिट नहीं सकती।

दोहे

हिरदे जिनके हरि वसें, से जन कहि महि सूर।
कही न जाई 'नानका' पूरि रह्या भरपूर॥

शब्दार्थ—हिरदे=हृदय। महि=पृथ्वी। सूर=शूरवीर। पूरि रह्या=भरा हुआ है।

भावार्थ—जिन पुरुषों के हृदय में भगवान् बसते हैं वे ही इस संसार में सच्चे शूरवीर हैं। वह परिपूर्ण ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

हरि पढ़ना हरि बूझना हरि सो रहहु पिआर।
हरि जपिये हरि ध्याइये हरि का नाम अधार॥

शब्दार्थ—बूझना=समझना। ध्याइये=ध्यान कीजिए।

भावार्थ—भगवान् का नाम ही पढ़ना चाहिए, भगवान् ही को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और भगवान् ही से प्यार करना चाहिए। भगवान् ही का जप करना चाहिए, भगवान् ही का ध्यान करना चाहिए और भगवान् के नाम का ही आधार लेना चाहिए।

मन जूठे तन जूठ है जिह्वा जूठी होय।
मुख जूठे झूठ बोलना क्यों कर सूचा होय॥

शब्दार्थ—**तन**=शरीर। **जिह्वा**=जीभ। **सूचा**=शुद्ध, पवित्र।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि झूठ बोलने से तन, मन, जीभ और मुख सब जूठे हो जाते हैं। फिर वह भला कैसे शुद्ध हो सकते हैं।

जो दरसै सो चालही किसको मीत करेव।
जीउ समर्पो आपना तन मन आगे देव॥

शब्दार्थ—**दरसै**=दिखाई देता है। **चालही**=चला जायेगा। **मीत**=मित्र। **करेव**=करूँ। **समर्पो**=समर्पित किया, दिया।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि संसार में जो यह मनुष्य दिखाई देते हैं वे सब तो चले जायेंगे। अब मैं भला मित्र किसको बनाऊँ। मैंने तो अपना तन मन सब कुछ भगवान् ही के आगे समर्पित कर दिया है।

'नानक' गुरुमुख पाइये हरि सों प्रीति पिआर।
गुरु बिन किन सुख पाइया देखहु मनहिं विचार॥

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि हे सज्जनो! गुरु के उपदेश से भगवान् के प्रति अपार प्रेम प्राप्त कर लो। तुम मन में यह विचार कर देख लो कि गुरु के बिना संसार में किसने सुख पाया है अर्थात् किसी ने नहीं पाया।

मन की दुविधा ना मिटे मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले 'नानका' जनम चल्या नर खोइ॥

शब्दार्थ—**दुबिधा**=सन्देह।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि जब तक मन की दुविधा नहीं मिटती तब तक भला भक्ति कैसे हो सकती है। मनुष्य विषय-वासनाओं में पड़ कर कौड़ी के बदले दुर्लभ मानव जन्म व्यर्थ खो जाता है।

आपै गुण आपै कथै आपै सुनि विचार।
आपै रतन परखि तू आपै भातु अपार॥

शब्दार्थ—कथै=कहे। परखि=पारखी, परीक्षक, जौहरी। भातु= शोभित होता है।

भावार्थ—नानक जी ब्रह्म की सर्व-व्यापकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ब्रह्म स्वयं ही तो गुण है, स्वयं ही उनका वर्णन करता है। आप ही सुनता है और आप ही विचारता है। स्वयं ही वह रत्न है, स्वयं ही परीक्षक या जौहरी भी है और उस रत्न से स्वयं ही सुशोभित होता है। भाव यह कि वह ब्रह्म सभी रूपों में व्याप्त हो रहा है।

सोचो मान महत्त तू आपै देवनहार।
ज्यों भावै त्यों राख तू (हरि) नाम मिले आधार॥

शब्दार्थ—महत्त=बड़ाई। आपै=वह आप ही, स्वयं ही। देवनहार=देने वाला।

भावार्थ—हे मनुष्य! तू मान और बड़ाई के लिए व्यर्थ सोचता रहता है किन्तु सब कुछ देने वाला तो वह भगवान् स्वयं ही है। हे भगवन्! तेरे नाम का आधार मिलना चाहिए फिर तू जैसे चाहे अपने भक्तों को वैसा रख।

विषयन सों काहे रच्यो निमिष न होय उदास।
कहि 'नानक' भजु हरि मना परै न जम की फाँस॥

शब्दार्थ—काहे=क्यों। रच्यो=लीन हो गया, मस्त हो गया। निमिष=ज़रा भी। जम=यमराज। फाँस=फाँसी।

भावार्थ—श्री नानकदेव जी कहते हैं कि हे मेरे मन! तू संसार की विषय-वासनाओं में ही क्यों लीन हो गया है? इनसे पल भर भी मुँह नहीं मोड़ता। अगर तू भगवान् का भजन कर ले तो तू इस यमराज की फाँसी से छूट जाय। अर्थात् भगवान् की भक्ति से तू जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है।

तुलसीदास

परिचय

जन्म-संवत् १५५४ मृत्यु-संवत् १६८०

आधुनिक गवेषकों ने आपकी जन्म-तिथि १५५४ बतलाई है। आपकी मृत्यु-तिथि तो निम्नलिखित दोहे से स्पष्ट ही है—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

आपकी शिक्षा-दीक्षा उच्च थी। आप सभी शास्त्रों के पारंगत थे। पत्नी की भर्त्सना से आपका पत्नी-प्रेम ईश्वरीय प्रेम में बदल गया। आपने सब देशों का भ्रमण कर काशी में बैठकर 'रामचरितमानस' महाकाव्य का निर्माण किया। आपके ग्रन्थों में विशेषतया राम की पतित-पावनी गाथा का गान है। आपकी कृतियों में व्रज और अवधी दोनों भाषाओं का संमिश्रण है। 'आज का उत्तर भारत का समाज तुलसी का बनाया है'—ये ग्रियर्सन के शब्द आपके विषय में उपयुक्त ही हैं। आपने लगभग २५ पुस्तकें लिखीं, जिनमें से ये प्रसिद्ध हैं—(१) रामचरित-मानस, (२) कवितावली, (३) गीतावली, (४) विनय-पत्रिका, (५) कृष्ण-गीतावली, (६) दोहावली, (७) पार्वती-मंगल, (८) जानकी-मंगल, (९) रामलला नहछू।

वर्षावर्णन, शरद्वर्णन, रामराज्य

सार और आलोचना

सीता-हरण के पश्चात् वर्षा-ऋतु के आने पर राम सीता की विरह-वेदना का अनुभव करते हुए लक्ष्मण के समक्ष अपना दुःख प्रकट करते हैं। शरद्-ऋतु-वर्णन में सारी पृथ्वी पर कास फूल छाये हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वर्षा ऋतु का बुढ़ापा प्रकट हो गया हो। 'रामराज्य' में सब प्रसन्न हैं, किसी को कोई कष्ट नहीं व्याप रहा—इसका विशद विवरण है। दोहों में तुलसी के इष्टदेव राम बाहुल्य से रम रहे हैं। कई दोहे 'संसार में किस प्रकार रहना चाहिए' इस विषय पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हैं।

कवि का ऋतु-वर्णन बड़ा मनोरंजक है। आपने राम को सांसारिक व्यक्तियों की भान्ति विरह-वेदना से दुःखित हुआ बतला कर कविता में 'यथार्थ' का चित्रण कर दिखाया है। आपकी कविता में सर्वत्र पांडित्य और प्रतिभा का निखरा हुआ रूप मिलता है।

वर्षा-वर्णन

वरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥

शब्दार्थ—मेघ=बादल। नभ=आकाश। सुहाए=शोभित हो रहे हैं।

भावार्थ—सीता का अपहरण हो जाने के पश्चात् ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते हुए राम लक्ष्मण को वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए अपने हृदय की व्यवस्था बताते हैं—वर्षा ऋतु में आकाश में छाये हुए बादल गर्जते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं।

लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति-रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ।।१।।

शब्दार्थ—**मोरगन**=मोरों का समूह। **बारिद**=बादल। **पेखि**=देखकर। **गृही**=गृहस्थी। **बिरतिरत**=वैराग्य में लगे हुए। **हरष**=खुशी। **जस**=जैसे।

भावार्थ—हे लक्ष्मण ! देखो ये मोरों के समूह बादलों को देखकर वैसे ही नाच रहे हैं जैसे विष्णु के भक्त को देखकर विरक्त गृहस्थी प्रसन्न होते हैं।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।।
दामिनि दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ।।

शब्दार्थ—**घन**=बादल। **घोरा**=भयंकर। **दामिनि**=बिजली। **खल**=दुष्ट। **प्रीति**=प्रेम। **जथा**=जैसे। **थिर**=स्थिर, मज़बूत।

भावार्थ—आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादल घोर गर्जना कर रहे हैं। प्रिय सीता के विरह में व्याकुल मेरा मन बादलों की इन गर्जनाओं को सुनकर अत्यधिक विरह संतप्त हो उठता है। बादलों में बिजली ऐसे चमकती और फिर छिप जाती है जैसे दुष्ट पुरुषों का प्रेम स्थिर नहीं होता।

बरषहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ।।

शब्दार्थ—**जलद**=बादल। **भूमि**=पृथ्वी। **निअराए**=पास में आगये। **नवहिं**=झुकते हैं। **अघात**=चोट। **गिरि**=पर्वत। **खल**=दुष्ट। **संत**=सज्जन।

भावार्थ—जिस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष विद्या को पाकर नम्र हो जाते हैं, वैसे ही वर्षा करने वाले बादल भी पृथ्वी तक नीचे झुक आते हैं। जिस प्रकार सज्जन दुष्टों के वचनों को सह लेते हैं वैसे ही पर्वत भी वर्षा की

बूँदों की चोटों को बड़ी शान्ति के साथ सह रहे हैं।

छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥

शब्दार्थ—छुद्र=छोटी। तोराई=अपने किनारों को तोड़कर। जस=जैसे। इतराई=इतरा जाते हैं। ढाबर=छप्पर। जनु=मानो।

भावार्थ—छोटी-छोटी नदियाँ थोड़े-से जल से इस प्रकार अपने किनारों से ऊपर बहती जा रही हैं जैसे दुष्ट या नीच पुरुष थोड़े-से धन से बहुत अधिक इतरा जाता है। बादलों का निर्मल जल पृथ्वी पर पड़ते ही वैसे ही गँदला हो गया है जैसे निर्मल चेतन-स्वरूप आत्मा संसार में आते ही माया से ग्रस्त होकर अपने निर्मल शुद्ध चैतन्य-स्वरूप को खो बैठता है।

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलाबा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता-जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिम जिव हरि पाई॥

शब्दार्थ—सिमिटि=इकट्ठा होकर। जिमि=जैसे। सद्गुन=अच्छे गुण। पहिं=पास। सरिता=नदी। जलनिधि=समुद्र। अचल=स्थिर। जिव=जीव।

भावार्थ—इधर-उधर से इकट्ठा होकर जल तालाबों में इस प्रकार भर रहा है जैसे सज्जन में धीरे-धीरे सभी गुण आ जाते हैं। नदियों का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो रहा है जैसे भक्त भगवान् को पाकर जन्म-मरण के चक्कर से छूट कर मुक्त हो जाता है।

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद तें लुप्त होहिं सद्ग्रंथ॥२॥

शब्दार्थ—हरित=हरी। तृन=घास। संकुल=भर गई। पंथ=मार्ग। विवाद=बहस। लुप्त=नष्ट। सद्ग्रंथ=श्रेष्ठ ग्रंथ।

भावार्थ—हरी-भरी भूमि घास से ढकी हुई है इसलिए मार्ग भी वैसे ही नहीं दिखाई देते, जैसे लोगों के पाखण्ड और वाद-विवादों से सत्य शास्त्रों का रहस्य लुप्त हो जाता है। अर्थात् पाखण्डी लोग शास्त्रों का अर्थ अपनी इच्छानुसार बताने लगते हैं। इसलिए पाखण्डियों के कारण शास्त्रों का वास्तविक अर्थ प्रकट नहीं हो पाता।

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए विटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

शब्दार्थ—**दादुर**=मेंढक। **बटु**=ब्रह्मचारी। **समुदाई**=समूह। **नव**=नये। **पल्लव**=पत्ते। **धुनि**=शब्द। **चहुँदिसा**=चारों दिशाओं में। **सुहाई**=शोभित। **बिटप**=वृक्ष। **बिबेका**=ज्ञान होता है।

भावार्थ—चारों ओर मेंढकों की ध्वनि ऐसी सुशोभित हो रही है मानो ब्रह्मचारियों के समूह वेद पढ़ रहे हों। अनेक वृक्ष इस प्रकार नये पत्तों से सुशोभित हो गये हैं जैसे कि साधकों का मन ज्ञान प्राप्त हो जाने पर निर्मल होकर सुशोभित हो जाता है।

अर्क जवास पात बिनु भयउ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी॥

शब्दार्थ—**अर्क**=आक। **जवास**=जवासा नामक एक कंटीली झाड़ी का पौधा जो गर्मियों में हरा-भरा होता है। **उद्यम**=उद्योग। **कतहुँ**=कहीं भी।

भावार्थ—आक और जवासे के पत्ते इस प्रकार जल गये हैं जैसे कि श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों के कार्य निष्फल हो जाते हैं। अब वर्षा ऋतु में धूलि तो कहीं ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती जैसे कि क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी के संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा॥

शब्दार्थ—**ससि**=सस्य, खेती-बाड़ी। **संपन्न**=युक्त। **सोह**= शोभित होती है। **महि**=पृथ्वी। **निसि**=रात। **तम**=अन्धकार, अन्धेरा। **घन**=घना। **खद्योत**=जुगनू। **दम्भिन कर**=कपटियों का। **समाजा**=समूह।

भावार्थ—उपकारी की सम्पत्ति के समान खेती की लहलहाती हुई भूमि सुशोभित हो रही है। रात के घने अन्धेरे में जुगनू ऐसे चमकते हैं मानो कपटियों का समूह-समाज इकट्ठा हो गया है।

महा वृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतन्त्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

शब्दार्थ—**महावृष्टि**=बड़ी भारी वर्षा। **सुतन्त्र**=स्वतन्त्र। **कृषी**= खेती। **निरावहिं**=खेत में से घास-फूस उखाड़ कर फेंकते हैं। **बुध**= बुद्धिमान्। **तजहिं**=छोड़ देते हैं। **मद**=अहंकार।

भावार्थ—अत्यधिक वर्षा के कारण खेतों की क्यारियाँ वैसे ही टूट गई हैं जैसे स्त्रियाँ स्वतन्त्र होकर बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान अपनी खेती को निराते और उनमें से अनावश्यक घास आदि को वैसे ही उखाड़ कर फेंक देते हैं जैसे बुद्धिमान् मनुष्य मोह, मद और मान को छोड़ देते हैं।

देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥

शब्दार्थ—**चक्रवाक**=चकवा। **खग**=पक्षी। **कलिहि**=कलियुग को। **पराहीं**=भाग जाता है। **ऊसर (भूमि)**=जिसमें कोई अनाज उत्पन्न न हो। **हिय**=हृदय। **उपज**=उत्पन्न होता है।

भावार्थ—चकवे पक्षी इसी प्रकार नहीं दिखाई देते जिस प्रकार कलियुग में धर्म नष्ट हो जाते हैं। ऊसर भूमि में वर्षा होने पर भी घास वैसे ही उत्पन्न नहीं होती जैसे कि भगवान् के भक्त के हृदय में कभी काम उत्पन्न नहीं होता।

विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना ।।

शब्दार्थ—बिबिध=कई प्रकार के। जन्तु=जीव। संकुल=भरी हुई। महि=पृथ्वी। भ्राजः=शोभित होते हैं। सुराजा=अच्छा राज्य। पथिक=यात्री। इन्द्रियगण=इन्द्रियों के समूह।

भावार्थ—सारी पृथ्वी अनेक प्रकार के जीवों से भरकर इस प्रकार शोभित हो रही है जैसे अच्छे राज्य को पाकर प्रजा खूब बढ़ती, फलती-फूलती और फैलती है! जहाँ-तहाँ पथिक थक कर इस प्रकार विश्राम कर रहे हैं जैसे कि ज्ञान के उत्पन्न होने पर इन्द्रियों के समूह विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते हैं।

कबहुँ प्रबल वह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहीं।
जिमि कपूत के ऊपजै कुल सद्धर्म नसाहीं ।।३।।

शब्दार्थ—मारुत=हवा। बिलाहीं=नष्ट हो रहे हैं। ऊपजै=उत्पन्न होने पर। सद्धर्म=श्रेष्ठ धर्म। नसाहीं=नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—कहीं बड़ी तेज हवा चलती है जिसमें बादल इधर-उधर बिखर कर नष्ट हो जाते हैं जैसे कि कुल में कुपुत्र के उत्पन्न हो जाने पर कुल के सभी धर्म नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।४।।

शब्दार्थ—दिवस=दिन। निबिड़=घना। पतंग=सूर्य। बिनसइ=नष्ट होता है। कुसंग=बुरी संगति। सुसंग=अच्छी संगति।

भावार्थ—कभी तो दिन में घना अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाता है जैसे कि भली और बुरी संगति को पाकर ज्ञान कभी उत्पन्न हो जाता है तो कभी नष्ट हो जाता है। अच्छी संगति से तो ज्ञान उत्पन्न होता है और बुरी संगति से नष्ट हो जाता है।

शरद्-वर्णन

वरषा विगत सरद रितु आई । लछमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥

शब्दार्थ—**बिगत**=बीत गई। **परम सुहाई**=अत्यन्त शोभित। **कास**=सरकण्डा, कान्ना, एक प्रकार के घास के लम्बे सफ़ेद फूल, जो शरद ऋतु में खिलते हैं। **सकल**=सब, सारी। **महि**=पृथ्वी। **जनु**=मानो। **कृत**=की। **बरषाकृत**=वर्षा ने की।

भावार्थ—भगवान् राम शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं कि वर्षा ऋतु बीत गई है और शरद् ऋतु आ गई है। इस अत्यन्त सुन्दर शरद् ऋतु की शोभा को हे लक्ष्मण ! जरा देखो तो सही, ये काश के सफ़ेद फूल चारों ओर इस प्रकार छाये हुए हैं मानो इन सफ़ेद-सफ़ेद फूलों के रूप में वर्षा ने अपना बुढ़ापा ही प्रकट किया हो। (बुढ़ापे में बाल सफ़ेद हो जाते हैं और इधर सफ़ेद काश खिले हुए हैं इसलिए राम ने सफ़ेद काशों के रूप में शरद् के बुढ़ापे का वर्णन किया है।)

उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥

शब्दार्थ—**उदित**=चढ़ गया, निकल आया। **अगस्त**=अगस्त्य नामक एक तारा जो बरसात में दिखाई नहीं देता और शरद् ऋतु में दिखाई देने लगता है। **पंथ**=मार्ग। **सोषा**=सूख गया। **जिमि**=जैसे। **सोषइ**=सुखाता है। **सरिता**=नदी। **सर**=तालाब। **निर्मल**=साफ़। **सोहा**=शोभित होता है। **गत**=रहित। **मद**= अहंकार।

भावार्थ—शरद् ऋतु के आरम्भ होने पर अगस्त्य नामक वह तारा जो वर्षा में दिखाई नहीं देता था अब उदित हो गया है। वर्षा के कारण मार्गों में जो पानी भर गया था वह अब वैसे ही सूख गया है जैसे कि सन्तोष लोभ को सुखा देता है। नदी और तालाबों का पानी अब साफ़

होकर ऐसे शोभित हो रहा है जैसे कि अहंकार और लोभ से रहित सज्जनों का हृदय शोभित होता है।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

शब्दार्थ—रस रस=रसते रसते या धीरे-धीरे। खंजन=सोन-चिड़िया, ममोला, एक प्रकार की काले और सफ़ेद रंग की चिड़िया जो अपनी पूँछ को हिलाती रहती है; शरद् ऋतु में यह चिड़िया प्रायः देखी जाती है। सुकृत=पुण्य।

भावार्थ—नदी और तालावों का पानी इस प्रकार धीरे-धीरे सूखता जा रहा है जैसे कि ज्ञानी पुरुष धीरे-धीरे ममता को छोड़ता जाता है। शरद् ऋतु को देख कर खंजन पक्षी इस प्रकार दिखाई देने लगे हैं जैसे कि समय आने पर मनुष्य के पुण्य सुशोभित होते हैं।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुण नृप के जस करनी॥
जल संकोच बिकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥

शब्दार्थ—पंक=कीचड़। रेनु=धूल। सोह=शोभित होती है। असि=ऐसी। धरनी=पृथ्वी। निपुण=चतुर। नीति-निपुण=नीति में चतुर। नृप=राजा। करनी=काम। संकोच=कमी। बिकल=व्याकुल। भई=हो गई। मीना=मछली। अबुध=मूर्ख। कुटुम्बी=घर वाले।

भावार्थ—धूलि और कीचड़ से रहित पृथ्वी ऐसे शोभित होती है जैसे कि नीति में निपुण राजा के कार्य सुशोभित होते हैं। पानी के कम होने से मछलियाँ इस प्रकार व्याकुल हो गई हैं जैसे कि धन के कम होने पर मूर्ख घर वाले दुःखी हो जाते हैं।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ इक पाव भगति जिमि मोरी॥

शब्दार्थ—घन=बादल। हरिजन=भगवान् के भक्त। इव=समान। परिहरि=छोड़ कर। वृष्टि=वर्षा। सारदी=शरद ऋतु की।

भावार्थ—बादलों से रहित आकाश ऐसे शोभित हो रहा है जैसे कि भगवान् के भक्त सब प्रकार की आशाओं को छोड़कर शोभित होते हैं। कहीं-कहीं शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा इस प्रकार हो जाती है जिस प्रकार कोई-कोई लोग ही मेरी अर्थात् पुत्र की भक्ति पा सकते हैं।

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥१॥

शब्दार्थ—हरषि=प्रसन्न होकर। तजि=छोड़ कर। नृप=राजा। तापस=साधु। बनिक=व्यापारी। आश्रमीचारि=ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चार आश्रम।

भावार्थ—राजा, तपस्वी, साधु, व्यापारी और भिखारी जो अब तक वर्षा के कारण एक-एक नगर में ही बँधे पड़े थे अब वर्षा के बीत जाने पर मार्ग खुल जाने से राजा लोग युद्ध के लिए, साधु विहार के लिए, व्यापारी व्यापार के लिए, और भिखारी भीख के लिए उसी प्रकार अपने नगरों को छोड़ कर दूसरे नगरों की ओर चल पड़े हैं जैसे कि भगवान् की भक्ति को पाकर भक्त लोग चारों आश्रम के परिश्रम को छोड़ देते हैं।

भक्तगण चाहे किसी भी आश्रम में, ब्रह्मचर्य में, गृहस्थ में, वानप्रस्थ में या संन्यास में हों सदा प्रभु की भक्ति में लीन रहते हैं। अतः उन्हें आश्रमों की मर्यादा पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥

शब्दार्थ—अगाधा=गहरा। बाधा=विघ्न, दुःख।

भावार्थ—जो मछलियाँ गहरे पानी में रहती हैं वे उसी प्रकार बड़ी

सुखी हैं जिस प्रकार भगवान् की शरण में चले जाने पर भक्त को कोई दुःख नहीं रहता। खिले हुए कमलों से तालाब ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करने पर शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग-रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥

शब्दार्थ—**मधुकर**=भ्रमर, भौंरे। **मुखर**=शब्द करते हुए, गूँजते हुए। **अनूपा**=अनुपम। **खग**=पक्षी। **रव**=शब्द। **नाना**=कई। **चक्रवाक**=चकवा। **निसि**=रात। **पेखी**=देख कर। **संपति**=धन।

भावार्थ—शब्द करते हुए अनुपम भौंरे गूँज रहे हैं। अनेक प्रकार के रूपों वाले पक्षी नाना प्रकार के कलरव कर रहे हैं। रात्रि को आता देख कर चकवों के मन इसी प्रकार दुःखी हो रहे हैं जैसे कि दूसरे की सम्पत्ति को देख कर दुष्टों के मन दुःखी होते हैं। (चकवा और चकवी रात में एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। चकवा नदी के एक किनारे पर और चकवी दूसरे किनारे पर चली जाती है (इसलिए कहा है कि चकवा-चकवी रात्रि को देख कर दुःखी होते हैं)।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

शब्दार्थ—**चातक**=पपीहा। **रटत**=पुकारता है। **तृषा**=प्यास। **अति**=बहुत। **ओही**=उसे। **द्रोही**=शत्रुता करने वाला। **सरदातप**=शरद ऋतु की आतप। **आतप**=धूप। **ससि**=चन्द्रमा। **अपहरई**=दूर करता है। **पातक**=पाप।

भावार्थ— प्यासा पपीहा पी पी पुकार रहा है। उसे प्यास वैसे ही सता रही है जैसे भगवान् शिव की निन्दा करने वाले को कभी सुख प्राप्त नहीं होता और वह सदा दुःखी रहता है। शरद् ऋतु के दिन की धूप

की गर्मी को रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी वैसे ही दूर कर देती है जैसे कि सज्जनों के दर्शनों से सब पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा॥

शब्दार्थ—**इन्दु**=चन्द्रमा। **समुदाई**=समूह। **चितवहिं**=देखते हैं। **हरिजन**=हरि के भक्त। **मसक**=मच्छर। **दंस**=डसना या मच्छर की जाति का एक जीव। **हिम**=ठण्ड। **त्रासा**=भय। **द्विज**=ब्राह्मण।

भावार्थ—चकोरों के समूह चन्द्रमा को वैसे ही प्रेम से देख रहे हैं जैसे कि भगवान् के भक्त भगवान् को पाकर उन्हें एकटक देखते रह जाते हैं। ठण्ड के भय के मारे मच्छर आदि जीव ऐसे ही नष्ट हो गये हैं जैसे कि ब्राह्मणों से द्वेष करने पर कुल का नाश हो जाता है।

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि संशय भ्रम समुदाइ॥२॥

शब्दार्थ—**संकुल**=भरे हुए। **संशय**=सन्देह।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में छोटे-मोटे जीव सारी पृथ्वी पर भरे हुए थे, शरद् ऋतु के आते ही वे सब ऐसे ही नष्ट हो गये जिस प्रकार श्रेष्ठ गुरु के प्राप्त हो जाने पर सब प्रकार के सन्देह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं।

राम-राज्य

राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप बिषमता खोई॥

शब्दार्थ—**त्रैलोका**=स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक ये तीनों लोक। **हर्षित**=प्रसन्न। **बयरु**=वैर-विरोध। **काहू सन**=किसी से। **बिषमता**=भेदभावना।

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के राजगद्दी पर बैठते ही, राज-कार्य की व्यवस्था को अपने हाथों में लेते ही, तीनों लोक—स्वर्ग, मर्त्य, और पाताल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके सब दुःख दूर हो गये। राम के प्रताप से सब के मनों के भेद-भाव या कुटिलता नष्ट हो गई, अर्थात् कोई किसी से वैर नहीं करता था।

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद-पथ लोक।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय रोग न सोक ॥१॥

शब्दार्थ—**बरनाश्रम**=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम। **निरत**=लगे हुए। **पथ**=मार्ग। **वेदपथ**=वैदिक मार्ग। **भय**=डर।

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों के लोग अपने-अपने कर्तव्य का भली-भांति पालन करते थे और सब लोग वेद के बताये हुए मार्ग पर चलते थे। इसलिए सदा सुख पाते थे। उन्हें कभी कोई रोग, शोक या भय नहीं सताता था।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा॥
सबु नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

शब्दार्थ—**दैहिक दैविक भौतिक ताप**=आध्यात्मिक—जो आत्मा सम्बन्धी दुःख, आधिभौतिक—शरीर सम्बन्धी रोग कष्ट आदि और आधि-दैविक—बिजली गिरना आदि दैवी विपत्तियाँ। **व्यापा**=व्याप्त होते थे। **परस्पर**=आपस में। **स्वधर्म-निरत**=अपने धर्म में लगे हुए। **श्रुति**=वेद।

भावार्थ—भगवान् राम के राज्य में दैहिक—ज्वर आदि व्याधियाँ, दैविक—अकाल आदि और भौतिक—सिंह आदि पशुओं से किसी प्रकार का दुःख नहीं होता था। सब लोग आपस में बड़े प्रेम से रहते थे और

वैदिक मर्यादा का पालन करते हुए अपने-अपने धर्म-कर्म का आचरण करते थे।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
रामभगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

शब्दार्थ—**अघ**=पाप। **रत**=लीन। **परमगति**=मोक्ष। **सकल**=सब।

भावार्थ—राम के राज्य काल में संसार में धर्म अपने चारों चरणों से पूर्ण हो रहा था। स्वप्न में भी वहाँ पाप के कहीं दर्शन न होते थे। सब स्त्री-पुरुष रामभक्ति में लीन थे इसी लिए सब परम गति अर्थात् मोक्ष के अधिकारी थे।

दोहे

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार॥

शब्दार्थ—**मनि-दीप**=मणि का दीपक। **धरु**=धरो, रखो। **जीह**=जीभ। **देहरी**=देहली। **द्वार**=दरवाजा। **चाहसि**=चाहता है। **उजियार**=उजियाला।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तुम अपने हृदय के अन्दर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो राम-नाम रूपी मणि के दीपक को जीभ रूपी देहली के द्वार पर धर लो। दरवाजे की देहली पर यदि दीपक रख दिया जाय तो उससे घर के बाहर और अन्दर दोनों ओर प्रकाश हो जाया करता है। इसी प्रकार जीभ मानो शरीर के अन्दर और बाहर दोनों ओर की देहली है। इस जीभ रूपी देहली पर यदि राम-नाम रूपी मणि का दीपक रख दिया जाय तो हृदय के बाहर और अन्दर दोनों ओर अवश्य प्रकाश हो ही जायगा।

रे मन सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलौ सिखावन देत हैं, निसिदिन 'तुलसी' तोहि ॥

शब्दार्थ—निरस=उदास । सरस=प्रेमयुक्त । भलौ=अच्छी। निसि-दिन=रात-दिन । तोहि=तुझे ।

भावार्थ—गोस्वामी जी अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन ! तू सब ओर से उदास होकर भगवान् राम के प्रेम में लग जा, तुलसीदास तुझे रात-दिन यही सुन्दर शिक्षा देते हैं । भाव यह कि मनुष्य को चाहिए कि वह और सब कामों से मुँह मोड़ कर प्रभु-भक्ति में लग जाय, तभी उसका उद्धार हो सकता है ।

'तुलसी' श्री रघुवीर तजि, करौ भरोसौ और ।
सुख संपति की का चली, नरकहुँ नाहीं ठौर ॥

शब्दार्थ—रघुवीर=रामचन्द्र । तजि=छोड़कर । संपति=धन ।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि जो भगवान् राम को छोड़ कर किसी दूसरे पर भरोसा रख कर बैठते हैं उन्हें भला सुख-सम्पत्ति तो मिलेगी ही कहाँ से, उन्हें तो नरक में भी स्थान न मिलेगा । भाव यह कि मनुष्य को भगवान् के सिवा किसी दूसरे का कभी भरोसा नहीं करना चाहिए।

राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस ।
बरषत वारिद-बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा । परमारथ=धर्म या मोक्ष । बरषत=वर्षा करते हुए । वारिद=बादल । गहि=पकड़ कर ।

भावार्थ—राम-नाम का आश्रय लिये बिना जो लोग मोक्ष की आशा करते हैं अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों परमार्थों को प्राप्त करना चाहते हैं वे मानो बरसते हुए बादलों की बूँदों को पकड़ कर

आकाश में चढ़ जाना चाहते हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार पानी की बूँदों को पकड़ कर कोई भी आकाश में नहीं चढ़ सकता वैसे ही राम नाम के बिना कोई भी परमार्थ को प्राप्त नहीं कर सकता।

ज्यों जग बैरी मीन कौ, आपु सहित बिनु वारि।
त्यों 'तुलसी' रघुबीर बिनु, गति अपनी सुविचारि॥

शब्दार्थ—मीन=मछली। बारि=जल। गति=दशा। सुविचारि=अच्छी तरह विचार लो।

भावार्थ—जिस प्रकार पानी के बिना मछली के सब शत्रु हो जाते हैं, यहाँ तक कि वह स्वयं भी अपने आप ही अपनी शत्रु हो जाती है वैसे ही भगवान् राम के बिना मनुष्य के सब शत्रु हो जाते हैं। इसलिए गोस्वामी जी अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि तू भी अपना कल्याण चाहता है तो भगवान् की शरण में जा ताकि तेरा उद्धार हो जाय। भाव यह कि जैसे पानी के बिना मछली मर जाती है वैसे ही भगवान् के बिना जीव भी सुखी नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को सदा प्रभु का सहारा ढूँढ़ना चाहिए।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छः तीन।
'तुलसी' देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन॥

शब्दार्थ—ह्वै=होकर। हिय=हृदय। मतौ=मत, सिद्धान्त। प्रबीण=चतुर।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार में तो तुम छत्तीस के अंक के समान पीठ करके रहो, और राम के चरणों में त्रेसठ के समान सम्मुख रहो। चतुर पुरुषों के इस मत को अपने हृदय में विचार करके देख लो। भाव यह है कि ३६ के अंक में ३ और ६ इन दोनों अंकों की आपस में पीठ लगी रहती है पर ६३ में ६ और ३ इन दोनों के मुख

आमने-सामने होते हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे संसार से तो सदा ३६ के अंक के समान पीठ फेर कर विरक्त रहें परन्तु भगवान् राम के चरणों के प्रति ६३ के अंक के समान सदा अनुकूल रहें।

'तुलसी' असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत, सील, सुभाव रिजु, राम-चरन-आधार॥

शब्दार्थ—असमय=बुरा समय। सखा=मित्र। साहस=उत्साह। सुकृत=पुण्य, धर्म। सील=सुन्दर स्वभाव। रिजु=सरल।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि भगवान् राम के चरण भक्तों के लिए दुःख के दिनों में साथी हैं। ये उत्साह, धर्म, विचार, पुण्य, सुशीलता और सरल स्वभाव के आधार हैं, अतः उन्हीं के चरणों का आश्रय लो।

'तुलसी' साथी विपति के विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्य-व्रत, राम-भरोसो एक॥

शब्दार्थ—विनय=नम्रता। विवेक=ज्ञान।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि विद्या, बिनय, ज्ञान, उत्साह, पुण्य और सत्य भाषण आदि विपत्ति में साथ देने वाले गुण एक भगवान् राम के भरोसे से ही प्राप्त हो सकते हैं।

आवत हिय हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह॥

शब्दार्थ—हिय=हृदय। हरषै=प्रसन्न होवे। सनेह=प्रेम। कंचन=सोना।

भावार्थ—जिस घर में जाने पर घर वाले लोग देखते ही प्रसन्न न हों और जिनकी आँखों में प्रेम न हो, उस घर में कभी न जाना चाहिए। उस घर से चाहे कितना ही लाभ क्यों न हो वहाँ कभी नहीं जाना चाहिए।

'तुलसी' जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

शब्दार्थ—भवितव्यता=होनहार। **आपु**=स्वयं, आप।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है मनुष्य को वैसी ही सहायता प्राप्त हो जाती है। होनहार स्वयं मनुष्य के पास नहीं आती प्रत्युत उसे ही स्वयं खींच कर वहाँ ले जाती है। भाव यह है कि होनहार या भाग्य के आगे किसी का कुछ वश नहीं चलता।

'तुलसी' सन्त सुअम्ब तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

शब्दार्थ—सुअम्ब=सुन्दर जल या सुन्दर रस वाले। **तरु**=वृक्ष। **परहेत**=दूसरे के लिए। **इत**=इधर से। **पाहन**=पत्थर। **हनत**=मारते हैं। **उत ते**=उधर से।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जन और रसदार फलों वाले वृक्ष दूसरों के लिए फलते फूलते हैं क्योंकि लोग तो उन वृक्षों पर या सज्जनों पर इधर से पत्थर मारते हैं पर उधर से वे उन्हें पत्थरों के बदले में फल देते हैं। भाव यह है कि सज्जनों के साथ कोई कितना ही बुरा व्यवहार क्यों न करे, पर सज्जन उनके साथ सदा भला ही व्यवहार करते हैं।

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप-पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥

शब्दार्थ—काया=शरीर। **मनसा**=मन। **बुवै**=बोये। **लुनै**=काटे। **निदान**=अन्त में।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि शरीर मानो खेत है, मन मानो किसान है। जिसमें यह किसान पाप और पुण्य रूपी दो प्रकार के बीजों

को बोता है। जैसे बीज बोयेगा वैसे ही इसे अन्त में फल काटने को मिलेंगे। भाव यह है कि यदि मनुष्य शुभ कर्म करेगा तो उसे शुभ फल मिलेंगे और यदि पाप कर्म करेगा तो उसका फल भी बुरा ही मिलेगा। इसलिए मनुष्य को सदा शुभ कर्म ही करने चाहिएँ।

नीच चंग-सम जानिये, सुनि लखि 'तुलसीदास'।
हील देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास॥

शब्दार्थ—**चंग**=पतंग। **महि**=पृथ्वी।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि नीच पुरुष पतंग के समान होते हैं। यदि पतंग को ढील दो तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ती है। पर यदि उसकी डोरी को खींचते जायें तो वह आकाश में चढ़ जाती है। भाव यह कि यदि दुष्ट पुरुप को खींच कर रखो और उससे कठोरता से काम लो तो वह ठीक काम करता है; पर यदि उसके साथ नम्रता से व्यवहार करो तो वह काम में लापरवाह हो जाता है।

घर दीन्हे घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
'तुलसी' घर बन बीच रहु, राम प्रेम-पुर छाय॥

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मनुष्य एक स्थान पर घर करके बैठ जाय तो वह वहाँ की माया-ममता में फँसकर उस प्रभु के घर से विमुख हो जाता है। इसके विपरीत यदि मनुष्य घर छोड़ देता है तो उसका घर बिगड़ जाता है, इसलिए कवि का कथन है कि भगवान् राम के प्रेम का नगर बना कर घर और बन दोनों के बीच में समान रूप से रहो, पर आसक्ति किसी में न रखो।

बिनु विश्वास भगति नहीं, तेही बिनु द्रवहिं न राम।
राम-कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लहि विश्राम॥

शब्दार्थ—**द्रवहिं**=पिघलते, कृपा करते। **विश्राम**=शान्ति, आराम।

भावार्थ—भगवान् में सच्चे विश्वास के बिना मनुष्य को भगवद्-भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और बिना भक्ति के भगवान् कृपा नहीं कर सकते। जब तक मनुष्य पर भगवान् की कृपा नहीं होती तब तक मनुष्य स्वप्न में भी सुख-शान्ति नहीं पा सकता। अतः मनुष्य को भगवान् का भजन करते रहना चाहिए ताकि भगवान् के प्रसन्न हो जाने पर भक्त को सब सुख-सम्पत्ति अपने आप प्राप्त हो जाय।

राम-सतसई

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥

शब्दार्थ—सहज=सरल। दुर्लभ=कठिन। गाडर=भेड़।

भावार्थ—संसार में किसी का स्वामी बन कर रहना तो बड़ा सरल है, पर सेवक बन कर रहना बड़ा कठिन है। मनुष्य आया तो यहाँ भगवान् का सेवक बनने के लिए है पर सेवक न बन कर वह विषय-वासना में फँस जाता है। यह तो वैसे हुआ जैसे कि कोई ऊन के लोभ से भेड़ को रखे कि चलो इससे ऊन मिलेगी, पर वह ऊन देने के बदले खेत के कपास को ही चर जाय, लाभ की बजाय हानि करने लग पड़े। वैसे ही मनुष्य-जन्म पाकर भी जीव प्रभु-भक्ति का लाभ नहीं प्राप्त करता और विषय-वासनाओं में फँसा रहता है।

'तुलसी' सब छल छाँड़िकै, कीजै राम-सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥

शब्दार्थ—छल=कपट। छाँड़िकै=छोड़ कर। अन्तर=भेदभाव।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि सब छल-कपटों को छोड़ कर भगवान् की सच्चे हृदय से भक्ति करो। उस पति से भला क्या भेदभाव है जिसने सारे शरीर को देखा हुआ है। भाव यह कि जैसे पति

अपनी पत्नी के सारे शरीर के रहस्यों को जानता है वैसे ही प्रभु सब जीवों के सब कर्मों को जानता है।

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचौ नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै सरीर॥

शब्दार्थ—पपीहरा=पपीहा। नीर=जल। याचै=माँगे। घनश्याम=बादल।

भावार्थ—पपीहा वास्तव में बड़ी ऊँची जाति का है, जो नीचे ज़मीन पर पड़ा हुआ पानी नहीं पीता। वह या तो बादल से ही पानी माँगता है या अपने शरीर पर दुःख ही झेलता रहता है। (पपीहे की प्रकृति है कि वह स्वाति नक्षत्र में मेघ से बरसे हुए पानी की बूँदें ही पीता है, पृथ्वी पर गिरा हुआ पानी नहीं पीता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गोस्वामी जी ने कहा है कि पपीहा प्यास के कारण अपने शरीर पर चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सह ले पर वह मेघ के जल के सिवा और कोई जल नहीं पीता)। भाव यह कि श्रेष्ठ पुरुष तुच्छ वासनाओं में कभी नहीं फँसते, वे सदा उत्कृष्ट गुणों को ही ग्रहण करते हैं।

मान राखिवौ माँगिवौ, पिय सों सहज सनेहु।
'तुलसी' तीनों तब फबैं, जब चातक मत लेहु॥

शब्दार्थ—फबैं=शोभित होवे। चातक=पपीहा।

भावार्थ—अपने मान को भी बचाये रखना चाहे और माँगे भी, साथ ही प्रिय से स्वाभाविक प्रेम भी बनाये रखना चाहे—ये तीनों बातें तभी अच्छी लग सकती हैं, जब कि पपीहे के समान आचरण करने लग पड़े। पपीहा बादल से पानी की बूँदों की प्रार्थना भी करता है और अपने स्वाभिमान को भी बनाये रखता है। क्योंकि उसके हृदय में बादल के प्रति सच्चा प्रेम है, वह बादल के सिवा और किसी से कुछ नहीं माँगता। इसी प्रकार मनुष्य भी जब सच्ची लगन वाला हो जाय तभी

उसमें ये तीनों बातें एक साथ शोभित हो सकती हैं; अन्यथा संसार में जो माँगता है उसका स्वाभिमान नहीं रह पाता और न प्रेम ही रहता है। पर सच्ची लगन होने पर ये तीनों बातें एक साथ रह सकती हैं। भाव यह कि सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम से माँग कर भी अपने प्रेम और मान की रक्षा कर लेता है, पर दूसरे लोगों का माँगने से मान और प्रेम घट जाता है।

गंगा जमुना सुरसती, सात सिन्धु भरपूर।
'तुलसी' चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥

शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र। स्वाति=अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र।

भावार्थ—गंगा, यमुना, सरस्वती और सातों समुद्र ये सब जल से भले ही भरे हुए हों, पर पपीहे के लिए तो स्वाति नक्षत्र के बिना ये सब धूल के समान ही हैं; क्योंकि पपीहा केवल स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल ही पीता है। भाव यह है कि सच्चे प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के बिना अन्य किसी वस्तु को कभी नहीं चाहता, चाहे वह वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो।

'तुलसी' विलँब न कीजै, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है, स्वांस सार सो तीर॥

शब्दार्थ—विलँब=देर। भजि लीजै=भजन कर लीजिए। तन तरकस=शरीर रूपी तरकस।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अब देर मत करो, अब भगवान् राम का भजन कर लो, क्योंकि शरीर रूपी तरकस से प्राण रूपी तीर निकलते ही जा रहे हैं और जो श्वास एक बार निकल जाता है वह फिर नहीं आता।

असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त-समागम रामधन, 'तुलसी' दुर्लभ दोइ॥

शब्दार्थ—असन=भोजन। बसन=वस्त्र, कपड़े। सुत=पुत्र। संतसमागम=सज्जनों से मिलना। दुर्लभ=कठिनता से प्राप्त होने के योग्य।

भावार्थ—भोजन, वस्त्र, पुत्र और स्त्री के सुख तो पापी के घर में भी हो सकते हैं; पर सज्जनों का समागम भगवान् और राम रूपी धन की प्राप्ति ये दोनों बड़े दुर्लभ हैं। भाव यह है कि जिसके बड़े भाग्य होते हैं उसे ही भगवद्भक्ति तथा सज्जन पुरुषों की संगति प्राप्त होती है।

दुर्जन दर्पण सम सदा, करि देखौ हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये पर और॥

शब्दार्थ—दुर्जन=दुष्ट। दर्पण=शीशा। सन्मुख=सामने। विमुख=पीठ पीछे।

भावार्थ—दुर्जन शीशे के समान होते हैं, इस बात को ध्यान से देख लो, क्योंकि दोनों ही जब सामने होते हैं तब तो और होते हैं और जब पीठ पीछे होते हैं तब कुछ और हो जाते हैं। भाव यह है कि दुष्ट पुरुष सामने तो मनुष्य की प्रशंसा करता है और पीठ पीछे निन्दा करता है, इसी प्रकार शीशा भी जब सामने होता है तो वह मनुष्य के मुख को प्रतिबिम्बित करता है; पर जब वह पीठ पीछे होता है तो प्रतिबिम्बित नहीं करता।

सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावनु साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरंजन पाँच॥

शब्दार्थ—सखा=मित्र। सचिव=मन्त्री। सुतिय=अच्छी स्त्री। सिखावन=शिक्षा। पुनि=फिर। परिहरिय=छोड़ देनी चाहिए। मनरंजन=मन को प्रसन्न करने वाली।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि शिष्य, मित्र, सेवक, मन्त्री और स्त्री यदि इनको कोई शिक्षा सच्ची हो और हितकारक हो तो उस पर आचरण करना चाहिए नहीं तो दूसरों के मन को प्रसन्न करने के लिए कही गई तो इन पाँचों की बातों को छोड़ देना चाहिए।

सूर समर करनी करहीं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥

शब्दार्थ—**समर**=युद्ध। **जनावहिं**=प्रकट करते हैं। **विद्यमान**=उपस्थित। **रिपु**=शत्रु। **रन**=रण, युद्ध। **कायर**=डरपोक। **प्रलाप**=बकवाद।

भावार्थ—शूरवीर युद्ध में काम करके दिखाते हैं मुँह से बातें बना कर अपनी बड़ाई नहीं करते। इसके विपरीत कायर पुरुष युद्ध में शत्रु को सामने देखकर बकवाद करने लगते हैं! भाव यह है कि वीर पुरुष काम करके दिखाते हैं, बातें नहीं बनाते और नीच पुरुष बातें तो बढ़-कर बनाते हैं पर काम के समय भाग जाते हैं।

अमिय गारि गारेउ गरल, नारी करि करतार।
प्रेम बैर की जननि युग, जानहिं बुध न गँवार॥

शब्दार्थ—**अमिय**=अमृत। **गारि**=सान कर, भर कर। **गरल**=विष। **करतार**=ईश्वर। **जननि**=माता। **युग**=दोनों। **बुध**=बुद्धिमान्।

भावार्थ—भगवान् ने स्त्री को अमृत और प्रेम दोनों में सानकर बनाया है। स्त्री वैर और प्रेम दोनों की जननी है, इस बात को बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं किन्तु गँवार नहीं।

'तुलसी' कबहुँ न त्यागिये, अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिए, ब्याह, बैर अरु प्रीति॥

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अपने कुल की रीति को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। वैर, विवाह और प्रीति अपने समान योग्य व्यक्तियों से ही करना चाहिए।

सूरदास

परिचय

जन्म-संवत् १५४० मृत्यु-संवत् १६२०

महात्मा सूरदास कृष्णभक्ति सगुणाश्रयी शाखा के मुख्य प्रतिनिधि और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ये मथुरा और आगरा के मध्य में गउघाट नामक स्थान पर रहा करते थे और भगवद्भक्ति के गीत गाया करते थे। ये जन्मान्ध नहीं प्रतीत होते क्योंकि बाललीला का ऐसा सुन्दर वर्णन जन्मान्ध द्वारा, चाहे वह कितना ही प्रतिभासम्पन्न हो, एकदम असंभव है।

एक बार गउघाट पर प्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके भक्ति-विषयक पद सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और इन्हें व्रज में श्रीनाथ जी के मंदिर में लाकर कीर्त्तन का मुखिया बना दिया। ये तभी से भगवान् कृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर नित्य नये पद बना कर अपने प्रभु को रिझाने लगे। अष्टछाप के कवियों में ये प्रमुख हैं।

सूरदास को 'उद्धव' का अवतार माना जाता है। वस्तुतः ये कृष्ण के अनन्य सखा थे। इनकी भक्ति सख्य-भाव की है; और इन्होंने उनके जीवन के सौन्दर्य को अपने अन्तश्चक्षुओं द्वारा जिस विशदता से देखा, वैसा संसार के साहित्य में दुर्लभ है। वात्सल्य-रस और विरह-वेदना में तो सूर को कमाल हासिल है। बाल्यकाल और यौवनकाल के जीवन की रमणीयता को उन्होंने नाना मनोरम परिस्थितियों के विशद चित्रण द्वारा दिखाया है। श्रृंगार के प्रत्येक क्षेत्र का वर्णन हमें उनके मुक्तक गीतों में दीख पड़ता है। बालगोपाल कृष्ण के बाल्य-चित्रण और प्रेम-रस में

विभोर विरहिणी गोपियों के उपालम्भ अन्यत्र दुर्लभ हैं। एक तो यूं ही व्रजभाषा संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है और फिर सूर-जैसे रसिक की अनुभूति का जीवन-स्पर्श पाकर वह और भी मृदुल हो गई है। जैसी तन्मयता, सरसता और अचल सात्त्विक भक्ति हमें सूर में मिलती है, वह और किसी में नहीं दीख पड़ती।

'सूरसागर' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सूरसागर में श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतों में स्वतंत्र भावानुवाद किया गया है। इस अनुवाद का वल्लभाचार्य जी ने आदेश दिया था। पहिले नौ स्कन्धों में चलता-फिरता वर्णन कर दिया गया है किन्तु दशम स्कन्ध में सूर की प्रतिभा के निदर्शन विस्तार से होते हैं। उसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, रूपमाधुरी, मुरली-महिमा, संभोग और विप्रलम्भ शृंगार, विनय तथा भ्रमरगीत बड़े विस्तृत रूप में कहे गये हैं। मुक्तक-काव्य होने से अनेक स्थानों पर पुनरुक्ति है; क्योंकि एक ही भाव को अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से कहने से उसके अनेक पद बन गये हैं।

आपका जन्म १५४० में रुणकता में हुआ। पारसोली में १६२० में गोलोक-वास हुआ।

विनय, बाललीला, भ्रमरगीत

सार और आलोचना

आपने विनय-सम्बन्धी कविता-पदों में भगवान् से शर्त बाँधी है शायद आप मेरे-जैसे पतितों के सरदार को पार न कर सकें। कवि कितने निराले ढंग से अपना उद्धार चाहा है। यहाँ हरि से विमु व्यक्तियों का साथ छोड़ने का उपदेश भी मिलता है। 'हे माता! मे चोटी कब बढ़ेगी, कितने दिन मुझे दूध पीते हो गए, पर यह उतनी ह छोटी है' इत्यादि कविताओं में बाल-स्वभाव का सुन्दर चित्रण किय गया है। भ्रमरगीत में गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम-चित्रण कितन स्वाभाविक है कि वे निर्गुण का ध्यान नहीं करना चाहतीं। गोपिय उपालम्भ-रूप में कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम को प्रकट करती हैं।

वात्सल्य-रस तथा विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन करने में कवि ने जि अलौकिक प्रतिभा का निदर्शन किया है उसी ने उन्हें हिन्दी-साहित्याका का सूर्य बना दिया है।

विनय

नाथ ! सकौ तो मोहि उधारौ।
पतितन मैं विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।
बड़े पतित पासंगहु नाहीं अजामिल कौन विचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ जम दीन्हौ हठि तारौ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति अब न करौ जिय गारौ।
'सूर' पतित को ठौर नहीं तौ बहत बिरद कत भारौ॥

शब्दार्थ—उधारौ=उद्धार करो। **पतित**=पापी। **पावन**=पवित्र। **पासंग**=तराजू का वज़न ठीक करने के लिए कोई छोटा-मोटा पत्थ

आदि जो डंडी के साथ बाँध दिया जाता है या जिस पलड़े का वज़न कम होता है उधर धर दिया जाता है उसे पासंग कहते हैं। **अजामिल**= यह एक पापी ब्राह्मण था, इसने जन्म भर भगवान् का नाम नहीं लिया। इसके पुत्र का नाम नारायण था, अन्त समय नारायण कहते-कहते इसके प्राण निकल गये, अतः मृत्यु के समय 'नारायण' नाम के लेने से इसका उद्धार हो गया और वह वैकुण्ठ चला गया। **भाजे**=भाग जाता है। **जम**=यमराज। **तारौ**=ताला। **छुद्र**=छोटे। **रमापति**=लक्ष्मी के पति विष्णु या कृष्ण। **जिय**=हृदय में। **बिरद**=यश, उपाधि। **कल**= सुन्दर। **भारौ**=भारी। **विख्यात**=प्रसिद्ध।

भावार्थ—सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे नाथ! यदि आप मेरा उद्धार कर सकते हैं तो अवश्य कर दीजिए। मैं पापियों में प्रसिद्ध पापी हूँ। और आपका तो नाम ही 'पतितपावन' पापियों को पवित्र करने वाला है। मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि बड़े-बड़े पापी भी मेरे पासंग के बराबर भी नहीं हैं। बेचारा अजामिल भी मेरे सामने क्या है, नरक भी मेरा नाम सुन कर भाग जाता है। यमराज ने बड़ी दृढ़ता से नरक के द्वारों पर ताले लगा लिये हैं ताकि कहीं मेरे जैसा बड़ा पापी नरक में न पहुँच जाय। हे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु! अब तक आपने छोटे-छोटे पापियों का उद्धार किया है मेरे जैसे किसी बड़े पापी का उद्धार नहीं किया। इसलिए आप अपने हृदय में यह अभिमान मत करो कि मैं बहुत बड़ा पतित-पावन हूँ। हे भगवन्! अब मुझ पापी सूरदास को भी अपनी शरण में ले लीजिए, नहीं तो आपका 'पतित-पावन' का जो बड़ा सुन्दर यश है वह नष्ट हो जायगा।

इस प्रकार भक्त व्यंग्यवचनों के द्वारा अपने प्रिय प्रभु से उद्धार की प्रार्थना करता है कि यदि अनुनय-विनय से नहीं तो खरी-खरी सुनकर मेरा उद्धार कर दीजिए।

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वादु सब ही जू निरन्तर अमित तोस उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम विचारहि तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

शब्दार्थ—**अविगत**=निराकार ईश्वर। **गति**=अवस्था, दशा। **अन्तरगत**=हृदय में। **परम स्वादु**=बहुत सुन्दर स्वाद वाला। **निरन्तर**=लगातार। **अमित**=बहुत-सा, अनन्त। **तोस**=सन्तोष। **उपजावै**=उत्पन्न करता है। **अगम**=पहुँच से परे। **अगोचर**=इन्द्रियों की पहुँच से परे। **जुगुति**=युक्ति, ईश्वर को प्राप्त करने का तरीका। **निरालम्ब**=बिना सहारे के। **चकृत**=हैरान। **धावै**=दौड़ता है। **तातें**=इसलिए।

भावार्थ—सूरदास निर्गुण ब्रह्म का निरूपण न कर सगुण ब्रह्म (श्रीकृष्ण) के गुण क्यों गाते हैं—इस प्रश्न का उत्तर देते हुए इस पद में निर्गुण का खंडन तथा सगुण का मण्डन किया गया है। अविगत अर्थात् निराकार ईश्वर की गति कुछ समझ में नहीं आती। यदि किसी को उस निर्गुण का साक्षात्कार हो भी जाय तो वह उसका वर्णन नहीं कर सकता प्रत्युत गूँगे के गुड़ की भांति अपने मन में प्रसन्न हो सकता है। माना कि वह निराकार प्रभु परम आनन्द-स्वरूप है और उसके ध्यान में रस भी खूब आता है तथा उससे अनन्त सन्तोष भी प्राप्त होता है, फिर भी वह मन और वाणी की पहुँच से परे है जो उसको पा लेता है वह जान सकता है। क्योंकि न तो उसका कोई स्वरूप ही है न कुछ आकार ही, न कोई गुण है न जाति ही अतः मन उस निराकार प्रभु का ध्यान लगाते समय निराधार होकर चकित हो इधर-उधर

भटकता रहता है। पर उस निराकार के स्वरूप का ध्यान नहीं कर पाता, इसलिए निराकार प्रभु को सब प्रकार से अगम्य—अप्राप्य जान कर सूरदास तो साकार प्रभु के गीत या गुण गाया करता है!

छाँड़ि मन हरि-बिमुखन कौ संग।
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग।
कहा भयो पय पान कराए विष नहिं तजत भुजंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसदिन रहत उमंग।
कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़े न दूजो रंग॥

शब्दार्थ—**हरिबिमुखन**=भगवान् के विरोधी। **कुबुद्धी**=बुरी बुद्धि **भंग**=विघ्न। **पय**=दूध। **पान कराए**=पिलाने से। **विष**=ज़हर। **भुजंग**=साँप। **निस-दिन**=रात दिन। **काग**=कौआ। **स्वान**=कुत्ता। **खर**=गधा। **अरगजा**=एक सुगन्धित पदार्थ। **मरकट**=बन्दर। **भूषण**=गहना। **पाहन**=पत्थर। **पतित**=गिरा हुआ। **रीतो**=खाली। **निषंग**=तरकस। **खल**=दुष्ट।

भावार्थ—सूरदास जी अपने मन को बुरे लोगों की संगति से बचने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं कि हे मन, तू भगवान् के विरोधियों का साथ छोड़ दे; क्योंकि उनके साथ में रहने से बुरी बुद्धि उत्पन्न होती है और भक्ति में बाधा होती है, विघ्न पड़ते हैं। साँप को दूध पिलाने से कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि वह अपना विष नहीं छोड़ता। हरिविमुख लोग रात-दिन काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह में मग्न रहते हैं। कौए को कपूर खिलाने से क्या, वह सफ़ेद तो होगा ही नहीं, और कुत्ते को गंगा-स्नान कराया जाये तो भी वह पवित्र नहीं हो सकता। गधे पर

अरगजा आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करने से क्या लाभ? वह तो फिर भी धूल में ही लेटेगा। इसी प्रकार बन्दर के अंगों पर आभूषण पहना देने से क्या? जिस प्रकार पत्थर पर मारा गया बाण उसे बेध नहीं सकता प्रत्युत स्वयं तरकस ही खाली हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट को कितना ही अच्छा उपदेश क्यों न दो वह कभी सुधरेगा नहीं; क्योंकि दुष्ट और काले कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता।

भाव यह कि दुर्जन बड़े हठी होते हैं, उन्हें आप कितने ही अच्छे ढंग से भली बात समझायें पर वे वैसे ही आप की बात न मानेंगे जैसे काले कम्बल को चाहे जिस लाल, पीले या अन्य किसी रंग में डुबोइए वह काला का काला ही रहेगा। अतः दुष्टों से वाद-विवाद या बहस में समय नष्ट करने की अपेक्षा अपने काम से काम रखना चाहिए।

तुम कब मो सों पतित उधार्यौ।
काहे कौं हरि विरद बुलावत बिन मसकत को तार्यौ।
गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उनको कौन निहोरौ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ।
अजामील तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास।
नैकुँ चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुण्ठ निवास।
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट।
तौं जानौं जो मोहिं तारिहौ, 'सूर' कूर कवि ढोट।

पतित पावन हरि विरद तुम्हारौ कौने नाम धर्‌यौ?
हौं तो दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारै रटत पर्‌यौ।
चारि पदारथ दिए सुदामा तन्दुल भेंट धर्‌यौ।
द्रुपदसुता की तुम पत राखी, अम्बर दान कर्‌यौ।
संदीपनसुत तुम प्रभु दीने, विद्यापाठ कर्‌यौ।
वेर 'सूर' की निठुर भये प्रभु, मेटौ कछु न सर्‌यौ॥

शब्दार्थ—**विरद**=यश, उपाधि। **मसकत**=मशक्कत, परिश्रम। **गीध**=जटायु (जिस ने सीता-हरण करते हुए रावण से युद्ध करते हुए अपने प्राण त्याग दिये)। **व्याध**=शिकारी। कहते हैं कि बाल्मीकि पहले व्याध थे। **गज**=हाथी (एक बार किसी हाथी को पानी पीने के लिए तालाब में जाने पर किसी मगरमच्छ ने पकड़ लिया तब हाथी ने भगवान् को स्मरण किया। भगवान् ने तत्काल दौड़ कर उसे मगरमच्छ के फन्दे से बचा लिया)। **गौतम की तिय**=गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या (जो ऋषि के शाप से शिला बन गई थी और जिसका उद्धार भगवान् राम ने किया)। **निहोरो**=अहसान। **गनिका**=वेश्या (कहते हैं कि एक वेश्या बड़ी पापिन थी। वह अपने तोते को पढ़ाने के लिए राम नाम लिया करती थी, उसी से उसका उद्धार हो गया)। **विप्र**=ब्राह्मण। **पुरातन**=पुराना। **नेकु**=ज़रा-सी। **पुनि**=फिर। **खोट**=बुरा या बुराई। **कूर**=झूठा। **पतितपावन**=पापियों को पवित्र करने वाला। **हौं**=मैं। **दुरबल**=कमज़ोर। **द्वारै**=दरवाज़े पर। **रटत**=पुकारता है। **चारि पदारथ**=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ। **तन्दुल**=चावल। **द्रुपदसुता**=द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी। **पत**=लाज। **अम्बर**=वस्त्र। **संदीपनसुत**=श्रीकृष्ण के गुरु का नाम संदीपन था; उनके पुत्र मर गये थे जिन्हें श्रीकृष्ण ने स्वर्ग से लाकर वापस दे दिया। **विद्यापाठ**=विद्या की पढ़ाई। **निठुर**=कठोर।

भावार्थ—सूरदास जी अपने उद्धार के लिए भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे भगवान्, तुमने मेरे जैसे बड़े पापी का भला कब उद्धार किया है! बिना परिश्रम के कभी किसी का उद्धार नहीं हुआ। फिर तुम व्यर्थ ही में अपने आप को 'पतित-पावन' क्यों कहलाते फिरते हो। गीध जटायु, व्याध वाल्मीकि, गज और गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार हुआ, इसमें भला आपका क्या एहसान है। पापी गणिका का भी उसकी अपनी करनी से ही उद्धार हुआ था, पर नाम मुफ्त ही में

तुम्हारा हो गया कि तुमने गणिका का उद्धार किया। पापी ब्राह्मण अजामिल तो तुम्हारा पुराना सेवक था, उससे थोड़ी-सी भूल हो गई, उसी के कारण उसकी वैसी दशा हुई; और अन्त में उसे वैकुण्ठ-वास प्राप्त हो गया। तुमने तो उन सबको पतित या पापी समझ कर ही उनका उद्धार किया था पर वास्तव में इनमें से कोई भी पापी न था। मैं तो तब जानूँ कि वास्तव में ही आप पतितों का उद्धार करने वाले हैं, जब झूठे और निकृष्ट कवि मुझ सूरदास का आप उद्धार कर दें।

हे हरि, न जाने किस ने तुम्हारा नाम 'पतित-पावन' धर दिया है, क्योंकि मैं तो अत्यन्त दीन-दुःखी और दुर्बल होकर तुम्हारे द्वार पर पड़ा पुकार रहा हूँ। (पर तुम मेरा उद्धार नहीं करते तो 'पतित-पावन' कैसे हो) माना कि तुमने सुदामा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पदार्थ दे दिये, पर उसने तो तुम्हें चावल भेंट किये थे। तुमने द्रौपदी को वस्त्र देकर उसकी लाज बचा ली, संदीपन गुरु से तुमने विद्या पढ़ी थी, इसलिए उसके मरे हुए पुत्रों को तुमने वापस ला दिया। सूरदास जी कहते हैं कि हे भगवन्! तुम मेरी बारी इतने कठोर क्यों हो गये हो, जो मेरा कुछ भी कार्य नहीं करते। यह भी अपने प्रभु के प्रति भक्त का मधुर व्यंगवचन है।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।

जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै।
कमलनयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यौ क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

शब्दार्थ—**अनत**=अन्यत्र, दूसरे स्थान पर। **कमलनयन**=कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् श्रीकृष्ण। **ध्यावै**=ध्यान करे। **छाँड़ि**=छोड़कर। **दुर्मति**=खोटी बुद्धि वाला। **कूप**=कूआँ। **खनावै**=खुदाते

हैं। **मधुकर**=भौंरा। **अम्बुज**=कमल। **करील**=एक काँटेदार झाड़ी। **कामधेनु**=मनचाही वस्तु देने वाली गौ। **छेरी**=बकरी।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण को छोड़कर मेरा मन और किसी दूसरे स्थान में भला कैसे सुख पा सकता है। जिस प्रकार जहाज़ के पक्षी के लिए एकमात्र आधार जहाज़ ही होता है (वह इधर-उधर चारों ओर उड़कर अन्त में उसी जहाज़ पर जा बैठता है; क्योंकि समुद्र में इधर-उधर अन्य कोई उसके लिए आश्रय-स्थान नहीं होता; अतः उसे बार-बार उसी जहाज़ की शरण लेनी पड़ती है) वैसे ही मेरा मन भी इधर-उधर घूमकर अन्त में श्रीकृष्ण की शरण में ही आ जाता है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य को छोड़कर और दूसरे देवता का कौन ध्यान करे। यदि कोई दूसरे देवता का ध्यान करता है तो वह मानो ऐसा कार्य करता है जैसे कि कोई मूर्ख प्यासा परमपवित्र गंगा को छोड़कर कूआँ खुदवा रहा है। भला जिस भ्रमर ने कमल का रस चख लिया हो वह भौंरा कँटीली करील की झाड़ियों के रूखे फलों को क्यों खायेगा। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण रूपी कामधेनु को छोड़कर बकरी को कौन दुहेगा। भाव यह है कि श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरे किसी देवता की उपासना करना ऐसे ही व्यर्थ है जैसे कामधेनु को छोड़कर बकरी को दुहना।

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।

समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो।
यह माया भ्रम-जाल कहावै 'सूरदास' सगरो।
अबकी बार मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो॥

शब्दार्थ—अवगुण=दोष। समदरसी=भले और बुरे को समान भाव से देखने वाले। तिहारो=तेरा। नदिया=नदी। नीर=पानी। बरन=रंग। सुरसरि=गंगा। बधिक=कसाई, वध करने वाला। पारस=एक मणि जिसको छूने से लोहा सोना हो जाता है। कंचन=सोना। सगरो=सब। पन=प्रण।

भावार्थ—हे प्रभु, आप मेरे अवगुण या बुराइयों की ओर ध्यान न दीजिए। आपका तो नाम समदर्शी अर्थात् सब को समान भाव से देखने वाला है। आप अपनी (पतितों को पावन करने की) प्रतिज्ञा को पूरा कीजिए। एक नदी है और दूसरा गंदे पानी से भरा हुआ नाला है, पर जब दोनों ही गंगा में जा मिलते हैं तो उनका रूप-रंग एक जैसा हो जाता है और उनका नाम भी गंगा पड़ जाता है। इसी प्रकार एक तो पूजा का पवित्र लोहा है और दूसरा कसाई के घर में पड़ा हुआ (छुरी आदि का अपवित्र) लोहा। पर (लोहे को सोना बना देने वाली) पारस मणि के हृदय में यह दुविधा नहीं होती कि यह अपवित्र लोहा है इसे सोना न बनाऊँ, और पवित्र लोहे को सोना बना दूँ। वह तो दोनों को ही खरा सोना बना देता है। सूरदास जी कहते हैं कि यह माया तो भ्रम-जाल ही है। हे भगवन्! आप अब की बार मेरा उद्धार कर दीजिए अन्यथा आप का 'पतित-पावन' का प्रण टल जायगा।

भाव यह है कि हे भगवान्! आप मेरे दोषों को देखते हुए कृपा कर उद्धार कर दीजिए, क्योंकि आप 'समदर्शी' और 'पतितपावन' हैं।

काया हरि के काम न आई।
भाव भक्ति जहँ हरियश सुनयो तहाँ जात अलसाई।
लोभातुर है काम मनोरथ तहाँ सुनत उठि धाई।
चरन कमल सुन्दर जहँ हरि को क्योंहू न जात नवाई।
जब लगि श्याम अंग नहिं परसत आँखें जोग रमाई।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु विषय परम विष खाई॥

शब्दार्थ—**काया**=शरीर। **हरियश**=भगवान् का यश। **अलसाई**=आलस्य करता है। **लोभातुर**=लोभ से व्याकुल। **मनोरथ**=इच्छाएँ। **उठि धाई**=उठकर, दौड़कर। **नवाई**=झुकता, नमस्कार करता। **विष**=ज़हर।

भावार्थ—मेरा यह शरीर भगवान् के कुछ काम नहीं आया। जहाँ भक्ति-भाव और भगवान् की कथा कानों में पड़े वहाँ जाते हुए तो यह मन अलसाता है। जहाँ लोभ, लालच, काम, क्रोध और अनेक प्रकार की इच्छाएँ अपना डेरा जमाये रहती हैं, वहाँ यह दौड़-दौड़कर पहुँचता है। श्रीकृष्ण के सुन्दर चरण-कमलों में जाकर कभी किसी भी प्रकार प्रणाम नहीं करता। जब तक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण आदि अंगों का स्पर्श नहीं हो जाता तब तक योग की साधना कर लेना आदि सब कुछ व्यर्थ है। सूरदास कहते हैं कि हे मन! तू भगवान् के भजन के बिना विषय-वासना रूपी भयंकर विष को खा रहा है।

सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनोंपन ऐसे ही बीते केस भए सिर सेत।
आँखिन अंध श्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत।
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे क्यों केत।
'सूरदास' कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

शब्दार्थ—**हेत**=लिए। **तीनोंपन**=बचपन, जवानी और बुढ़ापा। **सेत**=सफ़ेद। **श्रवन**=कान। **कूपजल**=कूएँ का पानी। **प्रेत**=भूत-प्रेत। **केत**=केतु नामक ग्रह जो चन्द्रमा को ग्रसता है।

भावार्थ—सब दिन विषय वासनाओं के लिए ही बीत गये। बचपन, जवानी और बुढ़ापा ये तीनों अवस्थाएँ यूँ ही निकल गईं, यहाँ तक कि बाल सब सफ़ेद हो गये। आँखें अंधी हो गईं, कानों से कुछ सुनाई नहीं

देता, और पैरों के साथ दूसरे सब अंग भी थक गये। जो लोग भगवान् को छोड़कर भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं, वे मानो गंगाजल को छोड़कर कूएँ का पानी पीते हैं। जिस प्रकार राहु, केतु चन्द्रमा को ग्रस लेते हैं वैसे ही मनुष्य को ये विषय-विकार ग्रस लेते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना मनुष्य इनसे कैसे छूट सकता है। मुख से राम नाम लेते हुए हे मन ! तेरा कुछ भी तो मोल नहीं लगता।

बाल-लीला

कान्हा चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नँदघरनी।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मनहरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न बरनी।
ब्रज जुवती सब देखि थकित भईं सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवौ जसुदा को नंदन 'सूरदास' को तरनी॥

शब्दार्थ—**कान्हा**=श्रीकृष्ण। **धरनी**=पृथ्वी। **अभिलाष**=इच्छा। **नँदघरनी**=नंद की स्त्री, यशोदा। **नूपुर**=झाँझर, पायल। **मनहरनी**=मन को हरने वाली। **छवि**=शोभा। **जुवती**=स्त्री। **थकित भईं**=मोहित हो गई। **सरनी**=सीमा। **तरनी**=उद्धार करने वाले।

भावार्थ—बालक श्रीकृष्ण के पैरों चलना सीखने की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—अब कृष्ण पृथ्वी पर एक-दो पाँव चलने लग पड़े हैं। जिस बात की नन्द रानी के मन में इच्छा थी (कि कृष्ण पैर-पैर चलने लगे) वह आँखों से देख रही है। कृष्ण के पैरों में झाँझरें बज रही हैं। उस शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दरता के भण्डार श्रीकृष्ण को देख कर सब व्रजयुवतियाँ अपने आप को भूल गईं। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे लिये संसार-सागर से पार उतारने वाली नाव के समान वह यशोदा का लाल जुग-जुग जिये।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिबत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि-सी भुई लोटी।
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' स्याम चिरजीउ दोउ भैया हरि हलधर की जोटी॥

शब्दार्थ—किती बार=कितनी देर। बेनी=चोटी। गुहत=गूँथते हुए। नागिनि=सांपिन। भुइ=पृथ्वी। हलधर=बलदेव। जोटी=जोड़ी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जब दूध पीने में आना-कानी करते हैं तो माता यशोदा उन्हें यह कह कर दूध पिला देती है कि दूध पी लेगा तो तेरी चोटी बड़ी हो जायगी। इस पर श्रीकृष्ण पूछते हैं कि—हे माता! मेरी चोटी अ. कब बढ़ेगी? मुझे दूध पीते तो कितने ही दिन बीत गये, पर यह तो अब भी छोटी ही है। तू तो कहती थी कि मेरी चोटी भी बलदेव की चोटी की तरह लम्बी और मोटी हो जायगी और काढ़ते, गूँथते, नहाते व पोंछते हुए नागिन की भाँति पृथ्वी पर लोटने लगेगी। तू तो बार-बार पच-पच कर मुझे कच्चा दूध पिलाती है; मक्खन, रोटी तो कभी देती ही नहीं। इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण और बलदेव की जोड़ी युगों तक जीवित रहे।

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो।
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलत हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु।

गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

शब्दार्थ—दाऊ=बलदेव। जसुमति=यशोदा। कहा=क्या। एहि=इसी। रिस=क्रोध। हौं=मैं। पुनि पुनि=बार-बार। तातु=पिता। कत=क्यों। स्याम=साँवला। सिखै देत=सिखा देते हैं। बलभद्र=बलदेव। चबाई=चुगलखोर। धूत=धूर्त, चालाक। गोधन=गो रूपी धन।

भावार्थ—बलदेव श्रीकृष्ण को सदा चिढ़ाया करता है कि तू तो मोल लिया हुआ है। उसकी शिकायत करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे माता! बलदेव ने मुझे बहुत चिढ़ाया। मुझे कहता है कि तू तो मोल लिया हुआ है, तू यशोदा के कब उत्पन्न हुआ था! क्या कहूँ इसी क्रोध के मारे मैं खेलने भी नहीं जाता। मुझे बार-बार पूछता है कि तेरे माता-पिता कौन हैं? नन्द और यशोदा तो गोरे हैं, तू काला-कलूटा कैसे है? सब ग्वाल-दल चुटकी बजा कर हँसते हैं और बलदेव उनको सिखा देता है। तू भी तो मुझे ही मारना सीखी है, बलदेव पर तो कभी खीजती भी नहीं। इस प्रकार कृष्ण के क्रोधभरे मुख को देखकर यशोदा बार-बार प्रसन्न होती है और कहती है कि बलदेव तो जन्म से ही चालाक और इधर की उधर लगाने वाला है। मुझे गोधन की सौगन्ध है कि मैं तेरी माता और तू मेरा पुत्र है।

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भई गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो।
चार पहर वंशीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो।

मैं बालक बँहियन को छोटो छींको किहि बिध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज हैं जान परायो जायो।
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब विहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो ।।

शब्दार्थ—**भोर**=प्रातःकाल। **पठायो**=भेजा। **पहर**=तीन घण्टे का समय। **बँहियन**=बाँह। **किहि बिध**=किस प्रकार। **जननी**=माता। **पतियायो**=विश्वास किया। **लकुटि**=छड़ी। **बिहँसि**=हँस कर। **उर**=हृदय।

भावार्थ—श्रीकृष्ण को ग्वाल बाल के साथ मक्खन चुरा कर खाते हुए पकड़ लिया गया। यशोदा जब उन्हें डाँटने लगी तो अपनी सफ़ाई पेश करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐ मेरी माता! मैंने मक्खन नहीं खाया। प्रातःकाल होते ही तो तूने मुझे गौओं के पीछे मधुवन भेज दिया था। चार पहर तक वंशी वट के पास भटकता रहा, सन्ध्या होने पर घर आया। भला तू ही सोच कि मैं छोटी-छोटी बाँहों वाला बच्चा छींके को कैसे पा सकता था। ये ग्वाल बाल तो सब मेरे शत्रु हो रहे हैं। इसलिए इन्होंने ज़बरदस्ती मेरा मुख मक्खन से लपेट दिया है। और हे माता! तू भी तो बहुत ही भोली है जो इनके कहने पर विश्वास कर लेती है। मुझे पराया जानकर अब तेरे हृदय में भी मेरे प्रति दुर्भाव-सा उत्पन्न हो गया दीखता है। ले अपनी लाठी और कमली सम्भाल, अब तक तूने मुझे बहुत नाच नचाये। इस पर श्रीकृष्ण की बातों से प्रसन्न होकर यशोदा ने हँसकर कृष्ण को गले लगा लिया।

जब मैं गाय चरावन जैहौं।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर तैं खैहौं।
ऐसी अबहिं कहौं जनि बारे देखौं अपनी भाँति।
तनिक तनिक पग चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति।
प्रात जात गैयाँ लै चारन घर आवत है साँझ।
तुमरो कमल-वदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहिं माँझ।
तेरी सौं मोहि घाम न लागत भूख नहीं कछु नेक।
'सूरदास' प्रभु कह्यौ न मानत परे आपनी टेक॥

शब्दार्थ—जैहौं=जाऊँगा। कर=हाथ। खैहौं=खाऊँगा। जनि=मत। बारे=बालक। तनिक=छोटे। ह्वै है=हो जायगी। राति=रात। बदन=मुख। घाम=धूप। माँझ=में।

भावार्थ—श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे माता! आज मैं भी गौएँ चराने वन में जाऊँगा और वृन्दावन के अनेक प्रकार के फल अपने हाथों से तोड़ कर खाऊँगा। तब यशोदा कहने लगी कि हे बालक! अभी ऐसी बात मत करो, ज़रा अपनी ओर तो देखो, तुम्हारे छोटे-से पांव हैं, तुम इतनी दूर तक कैसे चलोगे और आते भी तो रात हो जाती है। ये ग्वालबाल तो प्रातःकाल ही गौएँ चराने ले जाते हैं और सन्ध्या को घर आते हैं। धूप में रेंगते-रेंगते तुम्हारा कमल-सा मुख कुम्हला जायगा। तब कृष्ण उत्तर देते हैं कि हे माता! तेरी सौगन्ध, न तो मुझे धूप ही लगती है और न भूख ही। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण यशोदा का कहना नहीं मान रहे और अपनी हठ पकड़े हुए हैं।

भाव यह है कि ग्वाल-बाल सदा बालक श्रीकृष्ण को जब जंगल में गौएँ चराने तथा अपने हाथों से फल तोड़-तोड़ कर खाने का मनोरंजक वृत्तान्त सुनाते हैं तो श्रीकृष्ण के मन में जाने की लालसा उत्पन्न होती है और इसलिए अपनी माता से प्रार्थना करते हैं।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये।
चारु कपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिये।
लट लटकत मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये।
कठुला के बज्र केहरिनख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख कहा भयौ सत कल्प जिये।

शब्दार्थ—**कर**=हाथ। **नवनीत**=मक्खन। **रेनु**=धूल। **तन**=शरीर। **मंडित**=शोभित। **चारु**=सुन्दर। **कपोल**=गाल। **लोल**=चंचल। **लोचन**=नेत्र। **छवि**=शोभा। **गोरोचन**=एक पीले रंग का पदार्थ। **मत्त**=मस्त। **मधुप**=भौंरा। **गन**=समूह। **माधुरी**=शोभा, मधुरता। **कठुला**=गले में पहना जाने वाला एक प्रकार का ज़ेवर। **बज्र**=हीरा। **केहरिनख**=शेर का नाखून। **राजत**=शोभित। **रुचिर**=सुन्दर। **हिये**=हृदय। **सत**=सौ। **कल्प**=एक बार की सृष्टि की स्थिति का समय।

भावार्थ—सूरदास जी शिशु कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण हाथ में मक्खन लिए हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। वे घुटनों के बल रेंग रहे हैं। शरीर पर धूल लिपटी हुई है और मुँह पर मक्खन लिपटा हुआ है, उनके गाल बड़े सुन्दर हैं। नेत्रों की लाल-लाल शोभा बड़ी मनोहर है, और सिर पर गोरोचन का तिलक लगा हुआ है। बालों की लटें ऐसे बिखर रही हैं मानो मधुर सौन्दर्य के रस पिये हुए मस्त भौंरे मँडरा रहे हों। हे सखी! इनके सुन्दर हृदय पर कठुले में पिरोया हुआ हीरा और शेर का नाखून बड़ा ही सुशोभित हो रहा है। वे लोग धन्य हैं, जिन्होंने एक पल के लिए भी श्रीकृष्ण की इस अनुपम शोभा को देख लिया है। इसके विपरीत जिन्होंने इस शोभा को नहीं देखा वे चाहे सैकड़ों कल्पों तक जीते रहें, तब भी क्या लाभ है।

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तो को कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै रही कर-कर सैन बतावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नन्दभामिनि पावै॥

शब्दार्थ—**वेगि**=शीघ्र। **अधर**=ओठ या होठ। **मौन ह्वै रही**=चुप हो रही। **कर-कर**=हाथ के। **सैन**=इशारा। **इहि अंतर**=इतने में ही। **अकुलाइ उठे**=व्याकुल हो उठे। **यशुमति**=यशोदा। **अमर**=देवता। **भामिनि**=स्त्री। **नन्दभामिनि**=नन्द की स्त्री यशोदा।

भावार्थ—यशोदा श्रीकृष्ण को पालने में झुला रही है। वह उनसे दुलार करती है, पालने को हिलाती है और तन्मय होकर जो चाहे गाने लगती है, गाती हुई कहती है कि मेरे लाल की नींद! तू मेरे लाल की आँखों में आजा। उसे आकर तू सुलाती क्यों नहीं। तू जल्दी ही क्यों नहीं आ जाती, तुझे श्रीकृष्ण बुला रहा है। यह सुनकर श्रीकृष्ण कभी अपनी पलकें बन्द कर लेते हैं, कभी ओठ फड़काने लगते हैं। माता यशोदा उन्हें सोया हुआ जान कर गाते-गाते चुप हो जाती है, और दूसरों को कोई बात बतानी होती है तो हाथ के इशारों से बताती है ताकि श्रीकृष्ण जाग न जायँ। श्रीकृष्ण इतने ही में व्याकुल हो उठते हैं तब यशोदा फिर कुछ मधुर ध्वनि से गाने लगती है। सूरदास कहते हैं कि यह सुख तो देवता और मुनियों को भी दुर्लभ है, जिसको नंद की स्त्री यशोदा अनायास ही प्राप्त कर रही है।

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर।
माई मेरिहि डीठि न लागे तातें मसि-बिन्दा दियो भ्रू पर।
सर्वसु मैं पहिले ही दीन्हीं नान्हीं-नान्हीं दंतुली दू पर।
अब कहौं करौं निछावरि 'सूर' यशोमति अपने लालन ऊपर।।

शब्दार्थ—डीठि=दृष्टि, नज़र। मसि=स्याही। भ्रू=भौंह। सर्वसु=सर्वस्व, सब कुछ। दंतुली=छोटे दाँत। दू=दो।

भावार्थ—यशोदा कहती है कि हे लाल, मैं तेरे मुख की सुन्दरता पर बलिहारी हूँ। हे सखी! कहीं मेरे लाल को मेरी अपनी ही नज़र न लग जाय, इसलिए मैंने इसके भौंहों के बीच में काली बिन्दी लगा दी है। मैंने अपना सर्वस्व तो पहले ही उसके दो नन्हे छोटे-छोटे दाँतों पर न्योछावर कर दिया है। अब ऐसी कौन-सी वस्तु रह गई है जो अपने लाल पर न्योछावर कर दूँ?

गहे अँगुरिया तात की नंद चलन सिखावत।
अरबराई गिरि परत हैं कर टेकि उठावत।।
बार बार बकि स्याम सौं कछु बोल बकावत।
दुहुँधा दोउ दंतुली भई अति मुख छवि पावत।।
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नंद पग द्वै करि धावत।
कबहुँ धरणि पर बैठि कै मन महँ कछु गावत।।
कबहुँ उलटि चलै धाम को घुटरुन करि धावत।
'सूर' श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढ़ावत।

शब्दार्थ—गहे=पकड़े हुए। अँगुरिया=अंगुली। तात=प्रिय, यहाँ यह शब्द पुत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। अरबराई=घबरा कर। कर=हाथ। टेकि=पकड़ कर। दुहुँधा=ऊपर नीचे दोनों ओर। धावत=दौड़ते हैं। धरणि=पृथ्वी। धाम=घर। महर=नंद बाबा।

भावार्थ—नंद बाबा अपने लाड़ले लाल की उंगली पकड़े हुए

उसे चलना सिखा रहे हैं। श्रीकृष्ण जब कभी चलते-चलते घबरा कर गिर पड़ते हैं तो उसे हाथ से पकड़ कर उठा लेते हैं और बार-बार बोल कर वे श्रीकृष्ण को कुछ बोलना सिखाते हैं। मुख में ऊपर और नीचे दोनों ओर दो-दो छोटे-छोटे निकले हुए दाँत बड़ी शोभा पा रहे हैं। श्रीकृष्ण कभी नंद का हाथ छोड़कर दो-एक पाँव दौड़ते हैं, कभी पृथ्वी पर बैठ कर मन में कुछ गाते हैं। और कभी लोट कर घर की ओर घुटनों के बल रेंगने लगते हैं। सूरदास कहते हैं कि नंद बाबा श्रीकृष्ण के मुख को देख-देख कर मन में प्रसन्न होते हैं।

चन्द्र खिलौनो लैहौं मैय्या मोरी, चन्द्र खिलौनो लैहौं।
धौरी को पयपान न करिहौं, बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झंगुली कंठ न लैहौं।
जैहौं लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौं।
कान लाय कछु कहत जसोदा दाऊहिं नाहिं सुनैहौं।
चंदा हूँ ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं।
तेरी सौंह मेरी सुन मैय्या हौं अब ही ब्याहन जैहौं।
'सूरदास' सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं॥

शब्दार्थ—**धौरी**='धौरी' नाम वाली सफेद गौ। **पय**=दूध। **पान**=पीना। **उर**=हृदय। **सुत**=पुत्र। **दुलहिया**=दुलहिन। **नूतन**=नये। **गैहौं**=पाऊँगा।

भावार्थ—बालकृष्ण चन्द्रमा को लेने के लिए हठ करते हुए कहते हैं कि हे माँ! मैं तो चाँद का खिलौना लूँगा। (और यदि तू वह न ला देगी तो) मैं धौरी गाय का दूध न पीऊँगा और सिर पर चोटी भी न गुँथाऊँगा। गले में मोतियों की माला न पहनूँगा और न शरीर पर झग्गा या कुरता ही पहनूँगा। जमीन पर लेट जाऊँगा और तेरी गोद

में नहीं आऊँगा। मैं नंद बाबा का बेटा कहलाऊँगा तेरा नहीं, तब यशोदा उनके कान में कुछ कहती है कि इधर आ, तुझे एक बात बताऊँ कहीं बलदेव न सुन ले। कान में कहती है कि चाँद से भी अत्यन्त सुन्दर नई दुलहिन से तेरा विवाह कर दूँगी। तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि माँ तेरी सौगन्ध है तू मेरी बात सुन, मैं अभी ब्याहने चला जाता हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि सब सखा बराती बन जायेंगे, और नये-नये आनन्द-बधाई के गीत गायेंगे।

भ्रमरगीत

उर में माखनचोर गड़े।
अब कैसेहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छड़े।
वहाँ बने जदुवंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े।
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ' बूझैं।
'सूर' स्यामसुन्दर बिन देखे, और न कोऊ सूझैं।

शब्दार्थ—उर=हृदय। निकसत=निकलते। अहीर=ग्वाला। तदपि=तो भी।

भावार्थ—हमारे हृदय में माखनचोर समाये हुए हैं, वे इस प्रकार तिरछे होकर अड़ गये हैं कि अब किसी भी प्रकार निकल नहीं सकते। यद्यपि वे यशोदा के लाल अहीर हैं, तो भी हम उन्हें छोड़ नहीं सकतीं। मथुरा में वे यदुवंश के कुलीन बन गये हैं तो भी हमें वे बड़े नहीं लगते। हम नहीं जानतीं कि बसुदेव और देवकी कौन हैं, किन्तु कृष्ण को देखे बिना हमें तो और कोई सूझता ही नहीं, अच्छा ही नहीं लगता।

निरगुन कौन देस को बासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक जननि को कहियत, को नारी को दासी।
कैसो बरन भेष है कैसो, केहि रस मैं अभिलासी।
पावैगो पुनि कियौ आपुनौ जो रे कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगौ सौ 'सूर' सबै मति नासी॥

शब्दार्थ—**निरगुन**=निर्गुण। **मधुकर**=भौंरा। **अभिलासी**=चाहने वाला। **पुनि**=फिर। **गाँसी**=गाँठ लगा कर, कपट से। **मति**=अक्ल।

भावार्थ—हे उद्धव! तुम्हारा वह निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है? हम तुम्हें सौगन्ध दिला कर कहती हैं कि हमें समझा कर बताओ, हम सचमुच तुम से पूछ रही हैं, हँसी नहीं कर रहीं। उस निराकार ब्रह्म के माता-पिता तथा दासी और पत्नी कौन हैं, उसका रूप और वेश कैसा है तथा वह किस रस का रसिक है। यदि तूने हमारे साथ कोई छल-कपट की बात की तो तू अपने किये का फल पायेगा। अतः सब बातों के सच-सच उत्तर देना। उद्धव यह सुन कर ठगे हुए की भाँति चुप हो रहे, उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो गई।

ऊधो! मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग, को आराधै ईस?
भइ अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रहि आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस॥

शब्दार्थ—**हुतो**=था। **आराधै**=आराधना करे। **सिथिल**=ढीली, शिथिल। **जथा**=यथा, जैसे। **बरीस**=वर्ष। **पुरवौ**=पूरी करो।

भावार्थ—हमारे मन कोई दस-बीस तो हैं नहीं, तुम तो कहते हो कि हम निराकार ईश्वर की आराधना करें पर मन किसका लावें; क्योंकि हमारा अपना एक मन था सो वह तो कृष्ण के साथ चला गया। अतः अब तुम्हारे 'ईश' की यहाँ कौन आराधना करे? हम सब तो कृष्ण के बिना वैसे ही शिथिल हो गई हैं जैसे सिर के बिना शरीर। दर्शनों की आशा के कारण ही श्वास अभी तक टिके हुए हैं और इस आशा के कारण ही हम अभी करोड़ों वर्ष जीती रह जायेंगी; तुम तो श्यामसुन्दर के मित्र हो और सभी योग-साधनों के स्वामी हो (किन्तु यह योग हमारे बस का नहीं)। सूरदास कहते हैं कि हे भगवन्! उन रसिक गोपियों की बातों से मेरे मन को भी भर दो।

हमसों कहत कौन की बातें।
सुनि ऊधो! हम समुझत नाहीं फिर पूछती हैं तातें।
को नृप भयो कंस किन मार्‍यो को बसुद्यो-सुत आहि?
यहाँ हमारे परम मनोहर जीवतु है मुख चाहि।
दिन प्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन-गति पंग।
को ब्यापक पूरन अविनासी, को बिधि छेद अपार?
'सूर' वृथा बकवाद करत हो या ब्रज नन्दकुमार॥

शब्दार्थ—**ऊधो**=उद्धव। **तातें**=इसलिए। **नृप**=राजा। **बसुद्यो**=वसुदेव। **सुत**=पुत्र। **आहि**=है। **चाहि**=देखकर। **बासरगत**=दिन में गया हुआ। **रजनीमुख**=सन्ध्या। **पंग**=पंगु, बिना पैरों का लूला आदमी जो चल न सके। **ब्यापक**=सब जगह फैला हुआ। **अबिनासी**=कभी नष्ट न होने वाला।

भावार्थ—उद्धव ने जब गोपियों से श्रीकृष्ण का प्रेम छोड़ कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए कहा तो गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! तुम हमें किस की बातें कह रहे हो, क्यों कि तुम्हारी बातें हम

समझ नहीं पाईं; इसलिय फिर से पूछ रही हैं। मथुरा में जाकर राजा कौन बना, किसने कंस को मारा, और कौन वसुदेव का पुत्र है। वे परम मनोहर श्रीकृष्ण तो यहीं पर हमारे प्राणाधार बने हुए हैं। वे प्रतिदिन गोप सखाओं को लेकर गौएँ चराने जाया करते हैं। दिन में जाकर सायंकाल को हमारी आँखों की गति को पंगु बनाते हुए आया करते हैं (हमारी आँखें सायंकाल को उन्हें आता देखकर उन्हीं के मुख को देख कर अटक जाती हैं, इसलिए कहा है कि हमारी आँखों को पंगु बनाते हैं)। वह सर्वव्यापक पूर्ण अविनाशी ईश्वर कौन है, और वह अनन्त, अभेद्य ईश्वर भी कौन है। तुम तो व्यर्थ ही बकवाद करते हो। तुम जो कहते हो कि वह परब्रह्म श्रीकृष्ण से भिन्न कोई दूसरा है। वास्तव में तो वह ईश्वर नंदकुमार है जो इस ब्रज ही में हैं।

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखीं।
कैसे रहैं रूप रस राची ये बतियाँ सुनी रूखीं।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूखीं।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखीं।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
'सूर' सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता है सूखी॥

शब्दार्थ—**रूप-रस-राची**=रूप-रस में लगी हुई। **अवधि**=(श्रीकृष्ण के आने की) निश्चित तिथि। **मग**=मार्ग। **जोवत**=देखते हुए। **झूखीं**=दुःखी हुईं। **अकुलानी**=व्याकुल हो गईं। **बारक**=एक बार। **पय**=दूध। **पतूखी**=दौना। **सिकत**=रेत। **सरिता**=नदी।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव जी! हमारी आँखें तो श्रीकृष्ण के लिए ललचाई हुई हैं। श्रीकृष्ण के रूप के दर्शन और रस में लगी हुई ये आँखें तुम्हारे योग की रूखी बातें सुन कर कैसे रह सकती हैं। श्रीकृष्ण के आने की तिथि की प्रतीक्षा करते हुए और निरन्तर मार्ग

देखते हुए भी ये इतनी दुःखी नहीं हुई थीं; पर हे उद्धव ! अब तुम्हारे इन योग के संदेशों से बहुत व्याकुल और दुःखी होगई हैं। तुम हमें एक बार श्रीकृष्ण का वह मुख फिर लाकर दिखा दो, जो दौने में दूध पिया करता था। तुम यहाँ पर अपनी योग की नाव न चलाओ क्योंकि ये सूखी रेतीली नदी है। जैसे सूखी नदी में नाव नहीं चल सकती वैसे ही तुम्हारी योग की बातों का भी हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

ऊधो ! तुम अपनौ जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागै, किन बेकाज ररौ ॥
जाय करौ उपचार आपनौ, हम जो कहत हैं जी की।
कछु कहत कछुवै कहि डारत, धुन देखियत नहिं नीकी।
साधु होय तेहि उत्तर दीजै तुमसौं मानी हारी।
याही तैं तुम्हैं नँदनंदन जू यहाँ पठाए टारी।
मथुरा बेगि गहौ इन पाँयन, उपज्यौ है तन रोग।
'सूर' सुबैद बेगि किन ढूँढ़ौ भए अर्द्धजल जोग ॥

शब्दार्थ—**जतन**=उपाय। **हित की**=भले की। **बेकाज**=व्यर्थ। **ररौ**=लड़ाई करे, बहस करे। **उपचार**=इलाज। **नीकी**=अच्छी। **पठाए**=भेजे। **गहौ**=पकड़ लो। **उपज्यौ**=उत्पन्न हुआ। **सुबैद**=अच्छा वैद्य। **अर्द्ध-जल**=मरते हुए व्यक्ति को नदी में जो स्नान कराया जाता है, उसे 'अर्धजल' या 'अधजली' कहते हैं।

भावार्थ—गोपियाँ योग का उपदेश देने वाले उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव जी ! तुम हमें तो उपदेश बाद में देना, पहले अपना उपाय कर लो। तुम्हें तो हित की कहते हुए भी बात बुरी लगती है, तुम व्यर्थ ही में हमसे उलझ रहे हो। जाओ और अपना इलाज करो, हम तो हृदय की सच्ची बात कहती हैं। तुम कहना तो कुछ चाहते हो और कह कुछ डालते हो, तुम्हारी यह स्थिति कुछ अच्छी नहीं दिखाई देती। कोई

समझदार सज्जन हो तो उसे उत्तर भी दें। हमने तो बाबा, तुम से हार मान ली, तुम ऐसी ही उल्टी-सीधी बातें वहाँ श्रीकृष्ण के पास भी करते होगे। इसलिए मानो उन्होंने अपने पास से टाल कर तुम्हें हमारे यहाँ भेज दिया दीखता है। तुम्हें कुछ शरीर का रोग लग गया प्रतीत होता है इसलिए शीघ्र इन्हीं पाँवों से मथुरा जा पहुँचो और वहाँ जाकर कोई अच्छा-सा वैद्य ढूँढ़ लो, क्योंकि हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अर्द्धजल (अंतिम समय के गंगास्नान) के योग्य हो गये हो। भाव यह कि तुम्हें तो अपनी देह की सुध-बुध भी नहीं रही दीखती है, जैसे सन्निपात का रोगी अपने अंतिम समय में जो मुँह में आये बड़बड़ाने लगता है वैसे ही तुम भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की उल्टी-सीधी बातें कर रहे हो। इस से ज्ञात होता है कि तुम्हें ऐसा भयंकर रोग हो गया है, उसका इलाज मथुरा जाकर श्रीकृष्ण से अभी करवा लो।

मीराबाई

परिचय

जन्म-संवत् १५५५ मृत्यु संवत् १६२०

मीराबाई का जन्म कुडकी गाँव (जोधपुर राज्य) में सं० १५५५ में हुआ था। "एक बार उनके घर कोई साधु आकर ठहरा और उसके पास गिरिधर की सुन्दर मूर्ति को देख मीराबाई उसकी ओर आकृष्ट हो गईं और उसे लेने के लिए मचलने लगीं। साधु ने उस समय वह मूर्ति उन्हें न दी परन्तु पीछे उसे यह स्वप्न आया—'मूर्ति को मीरा के हाथ में सौंपने में ही तुम्हारा कल्याण है' और उसने वापिस लौट कर मीरा को वह मूर्ति सौंप दी। मीरा माता से एक बार यह मजाक में पूछ बैठीं कि मेरा वर कौन है ? तो माता ने उत्तर में हँसकर उक्त मूर्ति की ओर संकेत किया और मीरा को तभी से 'श्री गिरिधर नागर' से लगन हो गई।"—ऐसी दंत-कथा प्रसिद्ध है।

वे भगवद्भक्ति में सदा निरत रहा करतीं और साधु-संतों के पहुँचने पर, लोकलज्जा का परित्याग कर वे उनका आदर-सत्कार बड़ी भक्ति से करतीं। भगवद्दर्शन के समय वे बहुधा बाहर के मन्दिरों में चली जातीं और प्रेमावेश में आकर पैरों में घुंघरू बाँध, हाथों से खड़ताल बजा-बजा कर भगवान् के सामने गाने और नाचने लगतीं। ये बातें घर वालों को पसन्द न थीं, अतः घर वालों से दुःखी होकर इन्होंने घर छोड़ दिया और व्रज-धाम की शरण ली।

कहा जाता है कि इन्होंने महाकवि तुलसीदास से अपने दुःखों के निवारण के बारे में उपाय पूछा था, जिसके उत्तर में तुलसीदास जी ने लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिय कोटि गरल सम ताही जदपि परम सनेही।।

(विनयपत्रिका)

मीरा की भक्ति 'मधुर रस की उपासना' है जिसमें भक्त परमेश्वर को अपने पति या सर्वस्व रूप में देखता है। नारी होने के कारण उनकी साधना में जैसी अनन्यता या आत्मसमर्पण है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके पदों में विरह का अपना महत्त्व है। यद्यपि मीरा ने—

सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होय।।

जैसे प्रतीकों को कविता में रखा है, फिर भी उनकी कविता में रहस्यवाद की झलक नहीं है। मीराबाई के जीवन, आदर्श व काव्य सभी सदा स्वच्छन्द रहे और इनके काव्य में एक निरालापन है। इनकी मृत्यु १६२० में बतलाई जाती है।

पद

सार और आलोचना

आपकी कविताओं में साँवरी मूर्ति पर आध्यात्मिक तथा शारीरिक प्रेम और भक्ति की झलक मिलती है। लोक-लाज को खोकर कृष्ण को अपना पति मान लिया है। यह रात-दिन कृष्ण के साथ खेलने में सुख का अनुभव करती हैं। अपने-आपको कृष्ण के अर्पण कर दिया है। कृष्ण का क्षण-भर का वियोग भी इनके लिए असह्य है।

आपकी कविता में भक्ति की वास्तविक परिभाषा के चिह्न मिलते हैं। प्रेमिका प्रत्येक कष्ट सह सकती है, परन्तु प्रेमी का वियोग उसके लिए असह्य है। प्रेमिका प्रेमी के दोषों पर ध्यान न देकर उसके गुणों पर सदा मुग्ध रहकर प्रेमी में लीन रहना चाहती है। कवयित्री ने अनुभूति द्वारा इस भाव को कविता में स्पष्ट रूप से दिखला दिया है।

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल ॥ टेक॥

मोहनी मूरती साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि-तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीराँ' प्रभु संतन सुखदाई, भक्तबछल गोपाल ॥१॥

शब्दार्थ—**नैनन में**=आँखों में। **मोहनी मूरती**=मन को मोहित कर देने वाला स्वरूप। **बिसाल**=बड़े-बड़े। **अधर**=ओठ। **सुधारस**=अमृत। **राजति**=शोभित होता है। **उर**=हृदय। **छुद्रघंटिका**=घुँघरू, करधनी। **कटितट**=कमर। **नूपुर**=झाँझर, पायल। **रसाल**=सुन्दर। **भक्तबछल**=भक्तवत्सल, भक्तों के प्रिय। **गोपाल**=गौओं के पालक।

भावार्थ—मीरा कहती है कि वह नन्दलाल मेरी आँखों में बस जाय। उसका स्वरूप अत्यन्त मनमोहक है और बादल के समान श्याम है। नेत्र अत्यन्त विशाल—बड़े-बड़े हैं। उसके अमृत रस से भरे हुए ओठों पर वंशी सुशोभित हो रही है और हृदय पर वैजयन्ती माला शोभा दे रही है। कमर में करधनी या तागड़ी की तथा पावों में पायलों की मधुर ध्वनि हो रही है। मीरा कहती है कि वे मेरे प्रभु संतों को सुख देने वाले तथा भक्तों के वत्सल और गौओं के पालक हैं।

हरि मोरे जीवन प्राण अधार ॥ टेक ॥
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
'मीराँ' कहै मैं दास रावरी, दीज्यो मति बिसार ॥२॥

शब्दार्थ—अधार=सहारा। आसिरो=आश्रय, सहारा। मँझार=मध्य में। निरख्यौ=देख लिया। रावरी=आपकी। बिसार=भूलना।

भावार्थ—भगवान् ही मेरे जीवन और प्राणों का आधार हैं। हे भगवन्, आपके बिना मेरा तीनों लोकों में और कोई सहारा नहीं है। मैंने सारा संसार देख लिया पर आपके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मीरा कहती है कि मैं आपकी दासी हूँ। हे भगवन्, आप मुझे मत भुला देना।

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ॥ टेक ॥
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ नाचूँगी।
प्रेम गीत का बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक-लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढ़ूँगी, 'मीराँ' हरि रंग राचूँगी ॥३॥

शब्दार्थ—पिव=प्रिय। रिझाऊँ=प्रसन्न करूँ। सुरत=ईश्वर का ध्यान। मरजादा=मर्यादा। पौढ़ूँगी=सोऊँगी।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं भगवान् श्रीकृष्ण के आगे नाचूँगी। मैं नाच-नाचकर अपने रसिक प्रियतम श्रीकृष्ण को प्रसन्न करूँगी और प्रेमी-जनों के आगे प्रार्थना करूँगी। प्रेम के गीत के घुँघुरू बाँधकर भगवान् के ध्यान की कछनी पहन लूँगी। मैं लोक-लाज और कुल की मर्यादा में से एक को भी नहीं रहने दूँगी। अपने प्रियतम प्रभु के पलंग पर जा सोऊँगी, और भगवान् के रंग में रंग जाऊँगी। भाव यह है कि जो लोक-लाज प्रभु-प्रेम में बाधक होती है, मैं उसकी कुछ परवाह नहीं करूँगी।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥टेक॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई।
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर, तारो अब मोहीं ॥४॥

शब्दार्थ—**कुलकानि**=कुल की लाज, मर्यादा। **ढिग**=पास। **आणंद**=आनन्द, राजी, प्रसन्न। **अँसुवन**=आँसू।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मेरा तो गिरिधर गोपाल, जिसके सिर पर मोर मुकुट शोभित होता है, वही एक मात्र पति है और दूसरा कोई नहीं है। मैंने सन्तों के पास बैठ-बैठ कर कुल की मर्यादा और लोक-लाज सब कुछ छोड़ दी है। मेरा कोई क्या कर लेगा। मैंने आँसुओं के जल से सींच-सींच कर प्रभु-प्रेम की बेल बोई है। अब वह बेल खूब फैल गई है और उसमें आनन्दरूपी फल लगने लगे हैं। मैं भक्तों को देख कर तो प्रसन्न होती हूँ और संसारी जीवों को देख कर रो पड़ती हूँ—बहुत दुखी

होती हूँ। हे गिरिधर लाल, आपकी दासी मीरा प्रार्थना करती है कि अब मेरा उद्धार कर दीजिये।

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ॥ टेक॥
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप रुझाऊँ।
रैण पड़े तब ही घर आऊँ, भोर भये उठि जाऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावे तितहीं बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥५॥

शब्दार्थ—म्हाँरो=मेरा। रुझाऊँ=प्रसन्न करूँ। रैण=रात्रि। भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं तो श्रीकृष्ण के घर जाऊँगी। श्रीकृष्ण ही मेरे सच्चे प्रियतम हैं। मैं उनके रूप को देखकर तन्मय हो जाती हूँ। रात्रि होते ही मैं उनके घर जाती हूँ और प्रातःकाल होते ही चली आती हूँ। रात-दिन मैं उनके साथ खेलती हूँ और जिस किसी भी प्रकार मैं उन्हीं को प्रसन्न करती हूँ। वे जो पहनाते हैं, मैं वही पहनती हूँ और जो देते हैं खाती हूँ। मेरा और उनका पुराना प्रेम है, मैं उनके बिना पल भर भी नहीं रह सकती। वे जहाँ बैठाते हैं, वहीं बैठती हूँ और यदि बेच भी दें, तो बिक जाने को भी तैयार हूँ। मीरा अपने स्वामी गिरिधर नागर पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ।

माई री मैं तो लियो गोबिन्दो मोल। टेक॥
कोई कहै छानै कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो, कोई कहै सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।

याही कूँ सब लोग जाणत हैं, लियो री आँखी खोल।
'मीराँ' कू प्रभु दरसण दीजौ, पूरव जन्म को कौल ॥६॥

शब्दार्थ—गोबिन्दो=भगवान् श्रीकृष्ण। छाने=चुपके, छिप कर। मुहँघो=महँगा। सुहँघा=सस्ता। अमोलक=अमूल्य। कौल=प्रतिज्ञा।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैंने श्रीकृष्ण को मोल ले लिया है। कोई कहता है कि मैंने उसे छिपकर मोल लिया है तो कोई कहता है कि सबके सामने लिया है; पर मैंने तो उसे ढोल बजा कर—सारे संसार में ढिंढोरा पीट कर लिया है। कोई कहता है कि यह सौदा महँगा है और कोई कहता है कि सौदा सस्ता रहा, पर मैंने तो पूरी तरह काँटे पर तोल कर लिया है। कोई कहता है कि यह काला है और कोई कहता है कि वह गोरा है, पर मैं तो यह जानती हूँ कि मैंने तो एक अमूल्य पदार्थ प्राप्त कर लिया है। इसको सारा संसार जानता है और मैंने अच्छी तरह आँखें खोल कर—खूब सोच-समझ कर उसे मोल लिया है। हे प्रभु, अब मुझे आप अवश्य दर्शन दे दीजिए क्योंकि आपका और मेरा पूर्वजन्म का वायदा है कि आप मुझे अवश्य दर्शन देंगे।

मैं गिरधर रँगराती, सैयाँ मैं० ॥ टेक॥
पँच रंग चोला पहिर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती।
जिन का पिया परदेस बसत है, वे नहिं हैं रँगराती।
मेरा पिया मेरे हिये वसत है, ना कहुँ आती जाती।
चन्दा जायगा सूरिज जायगा, जायगा धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनूँ जायँगे, अटल रहै अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हरी का तेल मँगाले, जगे रह्या दिन ते राती।
सतगुर मिलया सासा भाग्या, सैन बताई साँची।
ना घर तेरा, ना घर मेरा, गावै 'मीराँ' दासी ॥७॥

शब्दार्थ—**रँगराती**=रंग में मस्त। **साँवरो**=श्याम, श्रीकृष्ण। **सैंयां**=सखियों। **पँचरंग**=पाँच या विविध रंगों का बना। **चोला**=ढीला-ढाला फकीरों जैसा कुर्ता। **भिरमिट**=भाड़ियों का समूह। **श्रोह माँ**=उसी में, उसी अवसर पर। **गाती**=शरीर व गले से बँधी हुई चादर। **हियै**=हृदय में ही। **धरणी**=पृथ्वी। **अकासी**=आकाश। **पवन**=हवा। **अविनासी**=कभी नष्ट न होने वाला ईश्वर। **सुरत**=परमात्मा का स्मरण, ध्यान। **निरत**=विषय-वासनाओं से विरक्ति। **दिवला**=दीया। **सँजोखो**=जला लो। **मनसा**=मन। **सासा**=संशय, संदेह। **भाग्या**=भाग गये। **सैन**=संकेत, रहस्य।

भावार्थ—हे सखियो, मैं तो प्रियतम गिरिधर के रंग में तन्मय हो रही हूँ। हे सखियो, मैं पचरंगा चोला पहन कर भुरमुट-भाड़ियों के समूह या कुंजों में खेलने जाती हूँ। उन भुरमुटों में मुझे साँवले श्रीकृष्ण मिल गये। मैं उन्हें अपने शरीर की गाती खोलकर मिली—अर्थात् उन्हीं में तन्मय हो गई। जिनके प्रियतम परदेश में रहते हैं, वे वास्तव में प्रिय के रंग में रँगी हुई नहीं हैं। मेरा तो प्रियतम मेरे हृदय में रहता है। इसलिए मैं उससे दूर कहीं नहीं आती-जाती। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु आदि सभी नष्ट हो जायेंगे पर वह अविनाशी परम प्रियतम प्रभु सदा बना रहेगा। हे मन! तू भगवान् का स्मरण ध्यान और विषय-वासनाओं से विरक्ति का दिया जला ले और मन की बत्ती जला ले। हरि के प्रेम का उसमें तेल डाल ले ताकि वह दिन-रात जलता रहे। मुझे जब सद्गुरु मिल गये तो मेरे सब संदेह दूर हो गये, उन्होंने मुझे सच्चा रहस्य बता दिया। अपने प्रभु की दासी मीरा यह कहती है कि यह घर न तेरा न मेरा है; संसार में सदा कोई नहीं बना रहेगा, सबको एक दिन इसे छोड़ना ही पड़ेगा।

कोई कछू कहै मन लागा ॥ टेक ॥
ऐसी प्रीति लगी मनमोहन ज्यूं सोना में सोहागा।
जनम जनम का सोया मनुवाँ, सतगुर सब्द सुण लागा।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयो ज्यों तागा।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा ॥८॥

शब्दार्थ—कछु=कुछ भी। मनुवा=मन। कुटुम=परिवार।

भावार्थ—मीरा कहती है कि कोई चाहे कुछ भी कहता रहे, मेरा तो मन अपने प्रिय में लग गया है। मेरा मनमोहन श्रीकृष्ण से ऐसा प्रेम हो गया और मैं उसके साथ इस प्रकार एकाकार होगई जैसे सोने में सोहागे का मेल हो जाता है। मेरा मन जन्म-जन्मान्तरों से सोया हुआ था, अज्ञान में पड़ा हुआ था। सद्‌गुरु के शब्दों को सुनकर उनके ज्ञानोपदेश से वह मेरा मन जाग गया है। उसे ज्ञान प्राप्त हो गया है। वास्तविक ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर अब माता-पिता, कुटुम्ब और परिवार वालों से मेरा सब प्रकार का नाता टूट गया है। मीरा कहती है कि मेरे तो गिरिधर गोपाल ही स्वामी हैं। अब मेरे भाग्य जाग गये हैं।

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होई मीराँ चली ॥ टेक ॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर तैं दूरि करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली।
ऊँची अटरिया लाज किँवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पँचरंगी झालर तुम सोहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कड़ूला सोहै, सिन्दूर माँग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हाँ, सोभा अधक खरी।
सेज सुखमणा 'मीराँ' सोहै, सुभ है आज घरी।
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥९॥

शब्दार्थ—रोकणहार=रोकने वाला। मगन=तल्लीन (मस्त)।

घर पटके=फेंक दिये। **निकसी**=निकल गई। **अटरिया**=अटारी। **किवड़िया**=किवाड़। **बाजूबन्द**=बाँह पर बांधा जाने वाला भूषण। **सुखमणा**=सुषुम्ना नाम की नाड़ी। **सरी**=बनी।

भावार्थ—मीरा तो प्रभु के प्रेम में मस्त होकर चल पड़ी, अब तुझे कोई नहीं रोक सकता। लाज, शर्म और कुल की मर्यादा को तो पहले ही सिर से उतार फेंका है। मान-अपमान दोनों को छोड़ दिया गया है। ज्ञान की गली से निकल आई हूँ। ऊँची अटारी पर लाज के किवाड़ लगाकर उस निर्गुण परम प्रियतम की सेज बिछी हुई है। पचरंगी झालर शोभित हो रही है और फूलों की कलियाँ खिल रही हैं। अब मैंने बाजूबन्द और कड़े पहन लिये हैं और माँग में सिंदूर भर लिया है। मैंने भगवान् का स्मरण रूपी थाल हाथ में पकड़ लिया है जिससे मेरी शोभा बहुत अधिक हो गई है। मीरा सुषुम्ना नाड़ी की सेज पर सो रही है अर्थात् समाधि में लीन है। अतः आज बड़ी शुभ घड़ी है। हे राणा, तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी और मेरी नहीं बन पाई।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची, रे ॥ टेक ॥
मैं तो मेरे नारायण की, आपहिं हो गई दासी, रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी, रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी, रे ॥१०॥

शब्दार्थ—**बावरी**=पगली। **न्यात**=जाति वाले। **कुलनासी**=कुल का नाश करने वाली। **विष**=जहर। **सहज**=सरलता से।

भावार्थ—मीरा अपने पांव में घुँघरू बाँधकर नाच रही है। वह कहती है कि मैं तो अपने प्रभु की दासी बन गई हूँ। लोग कहते हैं—मीरा पगली हो गई, और जाति वाले कहते हैं कि इसने तो अपने कुल को नष्ट कर दिया। (मीरा कहती है कि) राणाजी ने मुझे मारने के लिए

ज़हर का प्याला भेजा है पर मैं तो उसे हँसते-हँसते पी गई, मुझे तो वे मेरे अविनाशी परम प्रियतम गिरिधर लाल अनायास ही मिल गये।

'मीराँ' मगन भई हरि के गुण गाय ।। टेक ।।
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यौ मीराँ सुलाय।
'मीराँ' के प्रभु सदा सहाई, राखें विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पे बलि जाय ।।११।।

शब्दार्थ—अँचाय=पीकर।

भावार्थ—मीरा तो हरि के गुण गाकर मस्त हो गई (मीरा कहती है कि) राणा जी ने मुझे मारने के लिय पिटारी में साँप रख कर भेजा, और कहा कि इसे मीरा के हाथ में जाकर दे देना। मैं जब नहा धोकर उसे देखने लगी तो मुझे साँप के स्थान पर शालिग्रामजी मिले। राणा ने ज़हर का प्याला भेजा, भगवान् ने उसे अमृत बना दिया। मैं नहा धोकर जब उसे पीने लगी तो उसे पीकर अमर होगई। राणा ने मेरे लिये शूलों की शैया भेजी और कहा कि मीरा को इस पर सुला देना। मीरा के तो भगवान् सदा सहायक हैं। उन्होंने मेरे विघ्नों को हटा दिया। मीरा तो भजन-भाव में मस्त होकर घूमती है और गिरिधर लाल पर बलिहारी जाती है।

मैं जाण्यों नहीं प्रभु को, मिलण कैसे होइ री ।।टेक।।
आये मेरे सजना फिर गये अँगना, मैं अभागण रही सोइ री।
फाड़ूँगी चीर, करूँ गल कंथा, रहूँगी बैरागन होइ री।
चुरिया फोरूँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोइ री।

निसवासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत मोइ री।
'मीराँ' के प्रभु हरि अबिनासी, मिलि बिछरो मति कोइ री॥१२॥

शब्दार्थ—सजना=प्रियतम, प्रभु। अँगना=आँगन। चीरु=वस्त्र। कंथा=गुदड़ी। निसबासर=रात-दिन। कल=चैन।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मुझे अभी तक यह मालूम नहीं कि प्रभु से मिलना कैसे होता है। मेरे साजन मेरे घर के आँगन में आकर लौट गये। पर मैं अभागिन सोई पड़ी रह गई। अब मैं उनके विरह में अपने वस्त्र फाड़ डालूँगी। गले में गुदड़ी पहन लूँगी और वैरागिन हो रहूँगी। चूड़ियों को फोड़ डालूँगी, माँग की रोली को बिखेर दूँगी। काजल को धो डालूँगी। रात-दिन मुझे अपने प्रियतम का विरह सताता है और एक पलभर भी चैन नहीं पड़ती। मीरा कहती है कि उस अविनाशी प्रभु से मिलकर कोई भी न बिछुड़े।

जोगी मत जा, मत जा, पाँई परूँ मैं तेरी चेरी हौं ॥ टेक॥
प्रेम भगति को पैंड़ो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चन्दण की चिता बणाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अँग लगा जा।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा॥१३॥

शब्दार्थ—पैंड़ो=मार्ग। गैल=मार्ग। भस्म=राख।

भावार्थ—मीरा अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे मेरे योगी! तू मुझ से बिछुड़ कर मत जा, मत जा। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, मैं तेरी दासी हूँ। प्रेम और भक्ति का मार्ग निराला है। तू मुझे वह निराला मार्ग बता जा। मैं तेरे विरह में अपने आपको जला देने के लिये अगर और चन्दन की चिता बनाती हूँ। तू अपने हाथसे उसे जला जा। मैं जल-बल कर राख की ढेरी बन गई, तू उस राख को ही अपने अंगों

पर लगा ले। मीरा कहती है कि हे गिरिधर नागर प्रभु! तू मेरी आत्मा की ज्योति को अपनी ज्योति में मिला दे।

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी ॥ टेक ॥
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥१४॥

शब्दार्थ—जासी=जायगा। कलि=चैन। तलफि=तड़प कर। जिव=प्राण। करवत=आरा। करवत लूँगी कासी=पुराने समय में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा से लोग काशी में जाकर आरे से अपने शरीर को चिरवा कर मर जाते थे, इसको 'काशी में करवत लेना' कहते हैं।

भावार्थ—मीरा अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे प्रियतम! मेरे हृदय में ऐसी लगन लगाकर अब तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हें देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता। तुम्हारे बिना तड़प-तड़प कर मेरे प्राण निकल जायेंगे। मैं तुम्हारे लिए जोगिन बन जाऊँगी और काशी में जाकर करवत ले लूँगी अर्थात् आरे से अपने शरीर को चिरवा लूँगी। मीरा कहती है कि मैं तो अपने प्रभु गिरिधर नागर के चरण-कमलों की दासी हूँ।

देखो सहियाँ हरि मन काठो कियो ॥ टेक ॥
आवत कह गयो अजूँ न आयो, करि करि वचन गयो।
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी, कैसे करि मैं जियो।
बचन तुम्हारे तुम ही बिसारे, मन मेरो हर लियो।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फटत हियो ॥१५॥

शब्दार्थ—सहियाँ=सखियाँ। काठो कियो=काठ के समान कठोर बना लिया। अजूँ=आज भी। बिसरी=भूल गई।

भावार्थ—हे सखियो, देखो भगवान् ने अपना मन कैसा कठोर बना लिया। वे आने के लिए कह गये, बार-बार प्रतिज्ञा कर गये पर अभी तक

आये नहीं। मैंने (उनके विरह में) खान-पान और यहाँ तक कि अपने शरीर की सुध-बुध भी भुला दी। अब भला मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ। हे भगवन्, आपने पहले तो मेरा मन हर लिया और अब अपने वचनों को—वायदों को—स्वयं ही भूल गये। मीरा कहती है कि हे गिरिधर नागर प्रभु! अब आपके बिना मेरा हृदय फटता जा रहा है।

हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक ॥
द्रोपता की लाज राखी, तुम तुरत बाढ्यौ चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्हा, धर्यो नाहिंन धीर।
बूड़तौ गजराज राख्यौ, कियो बाहिर नीर।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर ॥१६॥

शब्दार्थ—जन=भक्त। द्रोपता=द्रौपदी। चीर=वस्त्र। हिरणाकुश=हिरण्यकश्यप राक्षस। नाहिंन=नहीं। बूड़तौ=डूबता। गजराज=ऐरावत हाथी। नीर=पानी। सीर=शान्ति।

भावार्थ—हे भगवन्! तुम अपनी इस भक्त मीरा के दुःखों को दूर कर दो। आपने द्रौपदी के वस्त्रों को बढ़ाकर उसकी लाज बचा ली थी। आपने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए नरसिंह रूप धारण किया था। हिरणाकश्यप को तत्काल मार डाला; इस कार्य में आपने कुछ भी देर नहीं लगाई। डूबते हुए हाथी को बचा कर उसे पानी से बाहर कर दिया। मीरा कहती है कि मैं तो गिरिधर लाल की दासी हूँ। मुझे तो उनके चरण-कमलों में ही शान्ति प्राप्त हो सकती है।

रमइया बिनि रह्योइ न जाइ ॥ टेक ॥
खान पान मोहिं फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाइ।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाइ।
'मीराँ' कहे हरि तुम मिलियाँ बिनि, तरस तरस तन जाइ ॥१७॥

शब्दार्थ—रमइया=राम। नैणा=नेत्र। रैण=रात्रि।

भावार्थ—मैं तो भगवान के बिना रह नहीं सकती। उनके बिना मुझे खाना-पीना सब कुछ फीका लगता है। आँखें भी उदास या मुर्झाई-सी रहती हैं। मैं बार बार प्रार्थना करती हूँ। मेरे इसी प्रकार दिन-रात बीतते जा रहे हैं। हे भगवान्! तुम्हारे मिले बिना मेरे प्राण तुम्हारे दर्शनों के लिए तरसते हुए निकल रहे हैं।

हेरी मैं तो दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोई ॥टेक॥
घाइल की गति घाइल जाणैं, कि जिण लाई होइ।
जौहरी की गति जौहरी जाणै, कि जिन जौहर होइ।
सूलि ऊपरि सेझ हमारी, सोवणा किस विध होइ।
गगन मँडल पै सेझ पिया की, किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोइ।
'मीराँ' की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद साँवलिया होइ ॥१८॥

शब्दार्थ—दिवाणी=पागल। लाई होई=लगी हो। किस विध=किस प्रकार। गगन मँडल=मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र नामक स्थान है जहाँ पर योगी लोग ब्रह्म का ध्यान लगाते हैं। समाधि अवस्था में अपने प्राणों को ब्रह्मरंध्र में लीन कर लेते हैं।

भावार्थ—हे सखियो, मैं तो अपने प्रभु के वियोग के दुःख से पागल हो रही हूँ, पर मेरे उस दुःख को कोई भी नहीं जानता। बात तो यह है कि घायल की दशा को घायल ही जानता है या वह जानता है जिसे उसकी लगन लग गई हो। इसी प्रकार जौहरी के महत्त्व को जौहरी ही समझ सकता है या वह समझ सकता है जिसमें जौहर—परीक्षण की शक्ति हो। मीरा कहती है कि मेरी तो शय्या विरह-वेदना की पीड़ा की शूली पर है फिर भला मैं कैसे सो सकती हूँ, मुझे नींद कैसे आ सकती है। उस मेरे परम प्रियतम प्रभु की शय्या तो आकाश

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में है। वह ब्रह्मरन्ध्र में रहता है तो मैं उसे किस प्रकार मिल सकती हूँ। विरह-वेदना से व्याकुल होकर मैं बन-बन में भटकती फिरती हूँ; पर मेरी उस पीड़ा को हटाने वाला कोई वैद्य नहीं मिला। मेरी पीड़ा तो तभी मिट सकती है जबकि श्रीकृष्ण रूपी वैद्य मुझे मिल जाय।

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखही न जाइ ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदौ रहो घर्राई।
बात कहूँ मोहिं बात न आवै, नैन रहै झर्राई।
किस बिध चरण कमल मैं गहिहौं, सबहि अंग थर्राई।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरधर नागर, सबहिं दुख बिसराई ॥१६॥

शब्दार्थ—पतियाँ=पत्र। कर=हाथ। घर्राई=धड़कने लगता है। झर्राई=झड़ी लगी हुई है। गहिहौं=पकड़ूँगी। थर्राई=थर-थर काँपते हैं।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं अपने प्रियतम को पत्र कैसे लिखूँ, लिखा ही नहीं जाता; क्योंकि कलम पकड़ते हुए मेरा हाथ काँपने लगता है और हृदय भर आता है या हृदय धड़कने लगता है। कोई बात करते हुए मेरे मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता और आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी रहती है। (मैं यह सोचती हूँ कि जब प्रभु मिल जायेंगे तो) मैं उनके चरण-कमलों को कैसे पकड़ पाऊँगी, क्योंकि मेरे तो सभी अंग थर-थर काँप रहे हैं। मीरा कहती है कि गिरिधर नागर प्रभु सब दुःखों को दूर कर देंगे।

रे पपइया प्यारे कब कौ बैर चितार्‌यो ॥ टेक ॥
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाग्या ऊपर लूण लगायौ, हिवड़ो करवत सार्‌यो।
उठि बैठो वा बृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सार्‌यो।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणाँ चित धार्‌यो ॥२०॥

बुरी दशा हो रही है। तुम्हारे बिना मैं दिन-रात व्याकुल-सी हुई इधर-उधर भटकती रहती हूँ और विरह का दुःख मेरे हृदय को खाये जा रहा है। न दिन में भूख ही लगती है और न रात में नींद ही आती है। यहाँ तक कि मुख से शब्द भी नहीं निकलते। मैं अपनी दुःख की अवस्था का कहाँ तक वर्णन करूँ, कुछ कह नहीं सकती। हे भगवन्, अब तो आप ही मिलकर मेरे ताप को शान्त कर दीजिए। हे अन्तर्यामी स्वामी ! आप तो मेरे हृदय की दशा को जानते हैं फिर भी क्यों तरसा रहे हैं। अब तो कृपा करके दर्शन दे ही दीजिए। मीरा आपकी जन्म-जन्मान्तरों की दासी है। वह आपके चरणों में गिरती और यही प्रार्थना करती है।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ।। टेक ।।
आसण मार अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड़ गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवै चीत ।।२२।।

शब्दार्थ—**रमता राम**=किसी एक स्थान पर सीमित न रहने वाले, सर्वत्र रमण करने वाले। **अतीत**=सब से परे। **अडिग**=स्थिर। **मीत**==मित्र। **चीत**=चित्त।

भावार्थ—हे मन, तू उस सब से परे रहने वाले निर्लिप्त रमते राम का कब स्मरण करेगा। आसन लगा कर स्थिर होकर योगी समाधि में बैठ जाता है, वास्तव में भजन की यही रीति है। मैं तो यह समझती थी कि वह परम प्रियतम योगी सदा मेरे साथ ही चलेगा पर वह तो मुझे इस संसार रूपी मार्ग में अधबीच में ही छोड़ गया है। उस योगी का तो न आते पता लगता है और न जाते ही कुछ पता मिल पाता है। यह कोई जान ही नहीं सकता कि वह कब आया और कब चला गया। ऐसे योगी भला किसके मित्र हैं। मीरा कहती है कि मैंने तो अपने प्रभु गिरिधर

नागर के चरणों में चित्त लगा लिया है।

दरस बिन दूखन लागे नैन ॥ टेक ॥
जब ते तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे-मीठे बैन ॥
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह नई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण ॥
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण ॥२३॥

शब्दार्थ—दरस=दर्शन। कासूँ=किस से। करवत=आरी। ऐन=बिल्कुल। कल=चैन। मग=मार्ग। जोवत=देखते। मगजोवत =प्रतीक्षा करते हैं। छमासी=छः महीने की।

भावार्थ—हे प्रभु, आपके दर्शनों के विना तो (रोते २) आँखें भी दुखने लग पड़ीं। हे मेरे प्रभु! जबसे मैं तुमसे बिछुड़ी हूँ मुझे कभी चैन नहीं पड़ी। आपके मधुर वचनों का स्मरण आने से मेरा हृदय धड़कने लगता है। हे सखी, मैं अपने विरह-वेदना की कथा किस से कहूँ; क्योंकि यह विरह की पीड़ा तो सचमुच एक नई आरी ही है। भगवान् की प्रतीक्षा करते हुए मुझे चैन नहीं पड़ती। मेरे लिए तो एक रात भी छः महीने लम्बी हो गई। मीरा कहती है कि हे मेरे दुःख मिटाने वाले और सुख देने वाले प्रियतम! आप मुझे कब मिलेंगे?

तूँ नागर नन्दकुमार, तोसों लाग्यो नेहरा ॥ टेक ॥
मुरली तेरी मन हर्यौ, बिसर्यौ गृह ब्यौहार।
जब तें स्रवननि धुनि परि, गृह अँगना न सुहाइ।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, मृगी बेधि दई आइ।
पानी पीर न जाणई, मीन तलफि गरि जाइ।
रसिक मधुप के मरम को, नहिं समुझत कँवल सुभाइ।

दीपक को जु दया नहीं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग।
'मीराँ' प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिल गयो रंग ॥२४॥

शब्दार्थ—नेहरा=प्रेम । गृह=घर । ब्योहार=काम-काज । स्रवननि=कानों में। धुनि=शब्द। अँगना=आँगन। पारधि=शिकारी। मृगी=हिरणी। मीन=मछली। तलफि=तड़प कर। मधुप=भौंरा।

भावार्थ—हे नागर नन्दकुमार ! मेरा तुमसे प्रेम हो गया है। तुम्हारी वंशी ने मेरा मन हर लिया है । इसलिए मेरे घर के काम-काज भी सब छूट गये हैं। जब से तुम्हारी धुन मेरे कानों में पड़ी है, मुझे घर और आँगन में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जिस प्रकार शिकारी अपने लक्ष्य से कभी नहीं चूकता और वह हिरणियों को बेध ही देता है वैसे ही तुम्हारा ध्यान मुझे पकड़ लेता है। मछली तो पानी के विरह में तड़प-तड़प कर मर जाती है, पर पानी उसकी पीड़ा को नहीं पहचान पाता। कमल भी रसिक भौंरे के हृदय के भावों को स्वभाव से ही नहीं समझ सकता। पतंगे उस दीपक पर गिर-गिरकर मरा करें पर उसे दया नहीं आती। मीरा कहती है कि मैं तो अपने प्रभु में वैसे ही मिल जाऊँगी जैसे पानी में रंग मिल जाता है।

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँ ने नहिं बिसरूँ दिन राती॥टेक॥
तुम देख्या बिन कल न परत है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुलरा न्याती।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरायो, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धर्‌यौ सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणाँ चित राती ॥२५॥

शब्दार्थ—**म्हाँरो**=मेरा। **थाँने**=तुम्हें या आपको। **बिसरूँ**=भूलूँ। **पंथ**=मार्ग। **निहारूँ**=देखूँ। **कुलरा**=कुल वाले। **न्याति**=जाति वाले। **हस्त**=हाथ। **राती**=लीन, अनुरक्त, लगा हुआ।

भावार्थ—मीरा कहती है कि हे मेरे जन्म-मरण के साथी प्रभु ! मैं आपको दिन-रात कभी भी नहीं भूल सकती। यह मेरा हृदय जानता है कि आपको देखे बिना मुझे कभी चैन नहीं पड़ता। मैं ऊपर चढ़-चढ़कर आपकी राह देखती हूँ। मेरा रोम-रोम आपके विरह में इतना दुखी हो गया है कि मेरी आँखें रो-रोकर लाल हो गई हैं। यह सारा संसार झूठा है। कुल और जाति वाले भी झूठे हैं। मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि हे मेरे प्रभु, मेरी बात सुन लीजिए। मेरा यह मन मदमस्त हाथी के समान बिगड़ रहा है पर गुरुदेव ने अपना हाथ मेरे सिर पर रखा है इसलिए मैं इसे अंकुश मार-मारकर समझा लेती हूँ। मैं पल-पल में तेरा ही रूप देखती हूँ और देख-देखकर सुखी होती हूँ। मीरा कहती है कि मेरा चित्त तो हरि-चरणों में लीन हो रहा है।

कबहूँ मिलोगे मोहि आई, रे तू जोगिया ॥ टेक ॥
तेरे कारण जोग लियो है, घरि-घरि अलख जगाई।
दिवस न भूख रैण नहिं निदरा, तुम बिन कछु न सुहाई।
'मीराँ' के प्रभु हरि अबिनासी, मिलि करि तपत बुझाई ॥ २६॥

शब्दार्थ—**घरि-घरि**=घर-घर। **अलख जगाई**=ईश्वर को खोजती फिरती हूँ। **दिवस**=दिन। **निदरा**=नींद। **अबिनासी**=कभी नष्ट न होने वाले, नित्य।

भावार्थ—हे मेरे जोगी प्रियतम ! अब आप मुझे कब आकर मिलेंगे। तुम्हारे लिए मैंने भी जोग ले लिया है और घर-घर अलख जगाती फिरती हूँ। मुझे तुम्हारे बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता यहाँ तक कि दिन में भूख और रात को नींद भी नहीं आती। मीरा कहती है कि उस

अविनाशी प्रभु से मिलकर ही मेरे विरह का ताप शान्त हो सकता है।

गोबिन्द कबहुँ मिलै पिया मोरा ॥ टेक ॥
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा।
निरखण कूँ मोहिं चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा ॥
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि हूँ मीत सबेरा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ॥२७॥

शब्दार्थ—नेरा=निकट। मीत=मित्र। सबेरा=शीघ्र। बहुतेरा=बहुत।

भावार्थ—वह मेरा प्रियतम गोविन्द न जाने कब मिलेगा। जब वह मुझे मिल जायेगा तो मैं उसके चरण-कमलों को हँस-हँसकर देखूँगी और सदा उसे अपनी आँखों के पास ही रखूँगी। मुझे तुम्हारे दर्शनों का बड़ा चाव है। मैं तुम्हारे मुख-कमल के कब दर्शन पाऊँगी। मेरे व्याकुल प्राण अब धीरज नहीं रखते हैं, मेरे प्रियतम! अब आप मुझे शीघ्र आ मिलिए; क्योंकि अब तक मैंने आपके विरह में बहुत से सन्ताप सह लिये हैं।

रसखान

परिचय

जन्म-संवत् १६१७ मृत्यु-संवत् १६६०

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौं निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौ इन आँखिन तैं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

—की कामना करने वाले अनन्य कृष्णभक्त कवि रसखान दिल्ली के मुसलमान पठान सरदार थे। ये शाही खानदान से सम्बन्धित थे। आपका लौकिक प्रेम पहले आध्यात्मिकता में बदल गया। ये पीछे गोस्वामी विट्ठलदास जी के कृपापात्र शिष्य और भक्त बन गये। इनकी सम्पूर्ण कविता कृष्णपरक है।

भाषा अत्यन्त सरल, सरस और सादगी से भरी है, शब्दाडम्बर वहाँ नाममात्र को भी नहीं मिलता। उनके सवैयों में प्रेम अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है और लौकिक प्रेम के पीछे आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना है। इनके प्रेम-सम्बन्धी कवित्त-सवैयों को देख इनको 'रसखान' पुकारने लगे, इनका असली नाम तो लोग भूल ही गये। अन्य कवियों ने गीत लिखे हैं या दोहे, परन्तु इन्होंने कवित्त-सवैयों में ही अपनी रचना की है। इनकी रचना यद्यपि स्वल्प है परन्तु अनुप्रासमयी है। मनोहारी भाषा में प्रेम और भक्ति का सजीव चित्र खींचने में रसखान की कौन बराबरी कर सकता है। जितनी अनन्य-मनस्कता इनके काव्य में है वह अनेक हिन्दू कवियों में भी नहीं है।

तभी तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था—"इन मुसलमान कविन पर कोटिक हिन्दुन वारिये ।"

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं—(१) सुजान-रसखान, (२) प्रेम-वाटिका। सुजान-रसखान में १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दों में हैं तथा कुछ एक दोहे-सोरठे भी हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं। आपका जन्म १६१७ और मृत्यु १६६० में बतलाई जाती है।

सवैये

सार और आलोचना

रसखान ने अपनी कविता में कृष्ण के प्रति प्रेम को केवल जीवन पर्यन्त ही सीमित नहीं रखा, प्रत्युत यह भी बतलाया है कि अगले जन्म में चाहे जो कुछ बनूँ किन्तु कृष्ण या कृष्ण से सम्बन्धित वस्तु से मेरा प्रेम बना रहे। कृष्ण की प्राप्ति वेदों के स्वाध्याय तथा पुराणों के पढ़ने से नहीं होती प्रत्युत "मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, हे नारद ! मैं वहीं रहता हूँ ।" इस उक्ति के आधार पर सब स्थानों पर ढूँढ़ने पर और कहीं न मिलने पर राधा (प्रेमिका) के पैर दबाते हुए कृष्ण को अंकित करके 'भक्त के वश में हैं भगवान्' वाली उक्ति को चरितार्थ कर दिखाया। आपकी कविता का सार है कि कृष्ण अपने भक्तों के पास रहते हैं।

आपके सवैये हिन्दी-साहित्य के रत्न-भण्डार समझे जाते हैं। कृष्ण के प्रति प्रेमभावना का सजग एवं आकर्षक चित्र जैसा रसखान का है, वैसा अन्य कवि का मिलना कठिन है। आपने सोने के महलों को, जहाँ कृष्ण विहार करते थे, करील-कुंजों पर न्योछावर कर दिया। आपकी कविता में प्रेम, भक्ति तथा श्रद्धा की निर्मल त्रिवेणी बह रही है।

मानुस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसि मेरो, चरौं नित नन्द को धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिँदी-कूल कदम्ब की डारन॥१॥

शब्दार्थ—**मानुस**=मनुष्य। **हौं**=मैं। **ग्वारन**=गोप, ग्वाला। **नित**=प्रतिदिन। **धेनु**=गाय। **मँझारन**=बीच। **पाहन**=पत्थर। **गिरि**=पर्वत। **कर**=हाथ। **छत्र**=छाता। **पुरंदर**=इन्द्र। **खग**=पक्षी। **कालिंदी**=

यमुना। कूल=किनारा। कदम्ब=एक वृक्ष। बसेरो=निवास।

भावार्थ—रसखान प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! यदि मैं अगले जन्म में मनुष्य ही बनूँ तो उसी गोकुल गाँव का ग्वाला बनूँ। यदि पशु बनना पड़े तो मेरा क्या वश है; किन्तु इतना अवश्य चाहता हूँ कि नित्य नन्द बाबा की गौओं में चरा करूँ। यदि पत्थर बनूँ तो उसी गोवर्धन पर्वत का जिस को भगवान् श्रीकृष्ण ने इंद्र के कारण छत्र बना कर हाथ पर धारण किया था। यदि पक्षी बनूँ तो यमुना-तट के कदम्ब वृक्ष की शाखाओं पर अपना बसेरा बनाऊँ और इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में हे श्रीकृष्ण, आपका सम्पर्क प्राप्त करता रहूँ।

भाव यह कि रसखान मनुष्य, पशु, पक्षी और यहाँ तक कि पत्थर बन कर भी प्रसन्न हैं यदि उनको प्रत्येक अवस्था में रहते हुए भी श्रीकृष्ण के दर्शन होते रहें। कितना उच्च है यह श्रीकृष्ण-प्रेम।

सुनिये सबकी कहिये न कछू, रहिये इमि या भव-बागर में।
करिये ब्रत नेम सचाई लिये, जिनतैं तरिए भव-सागर में॥
मिलिये सबसों दुरभाव बिना, रहिए सत्संग उजागर में।
'रसखानि' गुबिन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागर में॥२॥

शब्दार्थ—कछू=कुछ। इमि=इस प्रकार। भव=संसार। बागर=बाजार। ब्रत=उपवास। दुरभाव=बुरा भाव। उजागर=उज्ज्वल। जिमि=जिस प्रकार। नागरि=चतुर नारी। चित=मन।

भावार्थ—इस संसार रूपी घास-फूस की टट्टी या बाज़ार में इस प्रकार रहना चाहिए कि सब की सुने और कहे किसी से भी कुछ नहीं। सत्य के साथ ऐसे ब्रत नियम करते रहें जिससे संसार-सागर से पार हो जायें। सब से सद्भावना के साथ मिलें और निर्मल सत्संग में रहें और इस प्रकार सावधान होकर साधना करें जैसे कि पनिहारिन का चित्त सब काम करते हुए भी अपने सिर पर रखी हुई गागर में ही लगा

रहता है। भाव यह है कि जिस प्रकार पनिहारिन अपने सिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा रख कर लाती है, वह अपने दोनों हाथ भी घड़े से छोड़ देती है; मार्ग में चलते हुए दूसरी सखियों से बातें भी करती जाती है, यह सब कुछ काम करते हुए भी उसका ध्यान अपने सिर पर रखी हुई गागर ही में लगा रहता है कि कहीं सिर पर से गागर न गिर जाय उसी प्रकार मनुष्य को भी सब कुछ काम करते हुए भी अपना ध्यान सदा भगवान् ही में लगाये रखना चाहिए।

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि, नवौं निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन तैं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥३॥

शब्दार्थ—**लकुटी**=सोटी, छड़ी। **कामरिया**=कमली। **तिहूँ**=तीनों। **तजि डारौं**=छोड़ दूँ। **आठहूँ**=आठों प्रकार की। **नवौं निधि**=नौ प्रकार की निधियाँ। **तें**=से। **तड़ाग**=तालाब। **कोटिनहूँ**=करोड़ों। **धाम**=घर। **कलधौत**=सोना।

भावार्थ—रसखान कहते हैं कि मैं श्रीकृष्ण की इस छड़ी और कमली पर तीनों लोकों का राज्य न्योछावर कर सकता हूँ; और नन्द बाबा की गौएँ चरा कर आठों सिद्धियों तथा नौ निधियों का सुख त्याग सकता हूँ। यदि मुझे कभी इन आँखों से ब्रज के बाग, तालाब और बावली आदि सुन्दर स्थान देखने का सुअवसर प्राप्त हो जाय तो उन करील की कुंजों पर करोड़ों सोने के महलों को न्योछावर कर सकता हूँ। भाव यह कि श्रीकृष्ण के दर्शनों के सम्मुख कवि को बड़ी से बड़ी सम्पत्ति भी तुच्छ प्रतीत होती है।

सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस मनाओ।
कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै विधि जाय पुराओ॥

कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मनवांछित पाओ।
पै 'रसखानि' वही मेरौ साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ ॥४॥

शब्दार्थ—**सेस**=शेषनाग । **सुरेस**=इन्द्र । **दिनेस**=सूर्य । **गनेस**=गणपति । **धनेस**=कुबेर । **महेस**=शंकर । **भवानी**=दुर्गा। **विधि**=ढंग, प्रकार । **पुराओ**=पूर्ण करो । **रमा**=कमला । **मनवांछित**= मनचाहा । **साधन**=उपाय । **त्रिलोक**=तीन लोक । **नसाओ**=नष्ट हो जाय ।

भावार्थ—कोई चाहे तो शेषनाग, इन्द्र, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा, कुबेर या शिवजी को मनावे अथवा भगवती पार्वती की उपासना कर मनचाहा फल पावे। कोई लक्ष्मी की उपासना कर बड़ी भारी सम्पत्ति भी क्यों न पा ले और दूसरे कहीं से किसी अन्य देवता से मनचाही वस्तु प्राप्त कर लें, किन्तु रसखान कहते हैं—मेरा साधन तो वही श्रीकृष्ण है, चाहे तीनों लोक रहें या नष्ट हो जायें। भाव यह है कि रसखान को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु तुच्छ प्रतीत होती है।

सेस, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु, जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद सै सुक ब्यास रटैं, पचिहारे तऊ पर पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥५॥

शब्दार्थ—**सेस**=शेषनाग । **गनेस**=गणपति । **महेस**=शिव । **दिनेस**=सूर्य । **सुरेसहु**=इन्द्र । **निरंतर**=लगातार । **अनादि**=जिसका आरम्भ न हो । **अनंत**=अपार । **अखंड**=जिसके टुकड़े न हों। **अछेद**=जिसे काटा न जा सके । **अभेद**=जिसे तोड़ा न जा सके । **सुबेद**= वेद । **सुक**=शुकदेव । **तऊ**=तो भी । **अहीर**=ग्वालिन । **छोहरियाँ**= लड़कियाँ । **छछिया**=चुल्लू ।

भावार्थ—शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य और इन्द्र भी जिसका निरन्तर गुणगान किया करते हैं और जिसे वेद अनादि, अनन्त, अखंड,

अछेद्य और अभेद्य कहते हैं। नारद, व्यास और शुकदेव आदि ऋषि मुनि जिसके गुण गाते-गाते हार कर थक गये, फिर भी जिसका कहीं पार नहीं पाया गया। रसखान कवि कहते हैं कि उसी परब्रह्म को ग्वाल-बालिकाएँ केवल चुल्लू भर छाछ के लिए कई प्रकार के नाच नचाती हैं। भाव यह है परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रेम के वश में होकर चुल्लू भर छाछ के लिए कई प्रकार के नाच नाच रहा है। बन में गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण जी ग्वाल-बालिकाओं से जब छाछ माँगते और कहते हैं कि थोड़ी-सी छाछ पिला दो तो वे कहती हैं कि पहले नाच कर दिखा। इस पर श्रीकृष्ण नाचते हैं। भक्ति की यही महिमा है कि जिस परब्रह्म का बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी दर्शन नहीं होता वही नाच नाच रहा है।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ पुरातन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ न कहूँ कबहूँ, वह कैसे सरूप औ' कैसे सुभायन॥
टेरत टेरत हारि पर्‌यौ, 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यौ दुरो वह कुंज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका-पायन॥६॥

शब्दार्थ—**ब्रह्म**=ईश्वर। **पुरातन**=पुराण। **रिचा**=ऋचा(वेदमंत्र)। **चायन**=चाव। **सरूप**=रूप। **सुभायन**=स्वभाव। **टेरत-टेरत**=पुकारते २। **लुगायन**=स्त्रियाँ। **दुरो**=छिपा। **पलोटत**=दबाते। **पायन**=पाँव।

भावार्थ—ब्रह्म को पुराणों की कथाओं में ढूँढ़ा और वेद-मन्त्रों को चौगुने चाव से सुना किन्तु कहीं भी देखा-सुना नहीं कि वह परब्रह्म कैसे स्वरूप और कैसे स्वभाव का है। रसखान कहते हैं कि मैं उसे पुकारते-पुकारते और ढूँढ़ते हुए हार गया पर कोई स्त्री-पुरुष बता न सका, अन्त में मैंने देखा कि वह कुंज-कुटीर में छिपा हुआ बैठा राधिका के पैर दबा रहा है। भाव यह कि परिपूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रेम के वश में होकर अपनी ही शक्ति-स्वरूपिणी राधा के पाँव दबाता है—उसके वश में हो रहा है।

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥७॥

शब्दार्थ—**मोरपखा**=मोर के पंख। **पहिरौंगी**=पहनूँगी। **ओढ़ि**=पहनकर। **पितांबर**=पीला वस्त्र,दुपट्टा। **लकुटी**=छड़ी। **गोधन**=गाय। **वाहि**=वही। **स्वाँग**=लीला। **मुरलीधर**=श्रीकृष्ण। **अधरान**=होठ। **धरी**=रखी हुई।

भावार्थ—राधिका कहती है कि हे सखी, तेरे कहने से मैं श्रीकृष्ण का सारा स्वाँग करूँगी, जैसे कि सिर पर मोर का पंख व गले में रत्तियों की माला व पीताम्बर पहनकर हाथ में छड़ी लेकर गौओं के साथ बन में गाती फिरूँगी। वह श्रीकृष्ण मेरे प्रिय हैं। अतः यह सब कुछ तो मैं कर लूँगी, पर उस मुरलीधर—श्रीकृष्ण के ओठों पर रखी हुई, उसकी जूठी वंशी को अपने ओठों पर नहीं रखूँगी। यहाँ पर वंशी के प्रति श्री-राधिका की ईर्ष्या दर्शनीय है।

धूल भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखानि' विलोकत, बारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौं लै गयौ माखन रोटी॥८॥

शब्दार्थ—**सोभित**=शोभित। **तैसी**=वैसी। **अँगना**=आँगन। **पग**=चरण। **कटि**=कमर। **पीरी**=पीली। **कछोटी**=कच्छा। **वा**=उस। **छवि**=सौन्दर्य। **विलोकत**=देखते। **बारत**=न्योछावर करता है। **काम**=कामदेव। **कोटी**=करोड़ों।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण धूल में लिपटे हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं, उनके सिर पर चोटी भी वैसी शोभा दे रही है, पैरों में झाँझर

और कमर में पीली कछनी धारण किये हुए वे आँगन में खेलते फिरते हैं। रसखान कहते हैं कि उस शोभा को देखकर करोड़ों कामदेव और चन्द्रमा भी अपने आपको उन पर न्योछावर कर देते हैं। हे सखि! उस कौए का अहोभाग्य है जो भगवान् के हाथ से माखन-रोटी छीन कर ले गया। भाव यह है कि बालक श्रीकृष्ण आँगन में हाथ में माखन रोटी लिये हुए खाते और खेलते फिर रहे थे कि इतने में एक कौआ आया और श्रीकृष्ण के हाथ से रोटी छीनकर ले गया। इस पर कवि कहता है कि उस कौए के भी बड़े भाग्य हैं जिसको परब्रह्म श्रीकृष्ण के हाथ की रोटी मिल गई।

कान ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बाँसुरिया रस भीनी।
तान सुनी जिनहिं, तिनहिं, तब ही तिन लाज बिदा करि दीनी॥
घूमैं घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रजमण्डल में 'रसखानि' सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥९॥

शब्दार्थ—ठगौरी=जादू। रसभीनी=रस भरी। जिनहिं=जिन्होंने। तिनहिं=उन्होंने। तिन=उन। घरी-घरी=बारम्बार। प्रवीनी=चतुर। भटू=सखी। लटू=लट्टू। लट्टू करना=वश में करना।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने आज रस-भरी बंसरी बजाकर जाने कैसा जादू कर दिया है। जिन्होंने इसकी तान सुन ली तभी उन सबने लाज को विदा कर दिया। क्या कहूँ, सब नई विवाहिता और चतुर गोपियाँ बार-बार नन्द के द्वार पर घूम रही हैं। इस ब्रज में ऐसी कौन सखी है जो इस पर मुग्ध न हो गई हो। भाव यह है कि श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि को सुनकर सब उस पर मोहित हो गईं और बार-बार उसे सुनने के लिए श्रीकृष्ण के घर के चक्कर काटती हैं।

मेरे सुभाय चितैंवे को माई री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन ते मोहि लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोउ बावरी आई॥
यों 'रसखानि' घिर्‌यौ सगरौ ब्रज, जानत वे कि मेरो हियराई।
जो कोउ चाहै भलौ अपनौ तौ, सनेह न काहू सो कीजिये भाई॥१०॥

शब्दार्थ—सुभाय=स्वभाव। चितैवे=देखना। माई=सखी। निहारि कै=देखकर। वा=उस। ठगोरी=जादू। घिरयो=इकट्ठा हो गया। हियराई=हृदय ही।

भावार्थ—एक सखी, दूसरी से कहती है कि हे सखी, मेरा तो स्वभाव ही किसी वस्तु को देखने का है इसलिए मैंने अपने स्वभाव से ज्योंही श्रीकृष्ण की ओर देखा कि उन्होंने भी मेरी ओर देखकर वंशी बजाई। उसी दिन से मुझ पर कुछ ऐसा जादू-सा हो गया कि लोग मुझे देखते ही कहते हैं कि पगली आ गई। इस प्रकार सारा ब्रज मुझे पगली कहकर मेरे चारों ओर इकट्ठा हो जाता है। क्या मैं वास्तव में पगली हूँ? इस बात को या तो वे (श्रीकृष्ण) ही जानते हैं या मैं ही जानती हूँ। पर मैं तो इतना ही कहना चाहती हूँ कि यदि कोई अपना भला चाहता है तो हे भाई, कोई किसी से कभी प्रेम न करे।

दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कंस तो बन्धन जैहो।
रोकत हो वन में 'रसखानि', पसारत हाथ घनो दुख पैहो॥
छूटे घरा बछरादिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दैहो।
जैहै जो भूषण काहू सखी को, मोल छला के लला न बिकैहो॥ ११।

शब्दार्थ—दानी=डाणी, चुंगी लेने वाला। दान=डाण, चुंगी का टैक्स। बन्धन जैहो=बाँधे जाओगे। घनो=बहुत। पैहो=पाओगे। बछरादिक=बछड़े आदि। गोधन=गोरूपी धन। छला=छल्ला, साधारण अँगूठी। भूषण=गहना।

भावार्थ—दूध, दही, मक्खन बेचने जाती हुई गोपियों को श्रीकृष्ण मार्ग में ही रोक कर उनसे डाण या चुंगी के रूप में दही मक्खन आदि माँगते हैं और उन्हें मार्ग में रोक कर खड़े हो जाते हैं, इस पर गोपियाँ कहती हैं कि आये कहीं के नये डाणी या चुँगी लेने वाले, तुम चुंगी लेने वाले बन कर हम से दही मक्खन आदि के रूप में नये-नये टैक्स आदि

माँगते हो, पर यदि यहाँ के राजा कंस को पता लग गया कि कोई एक नकली चुंगी लेने वाला लोगों से चुंगी माँगता फिरता है, तो वह तुम्हें पकड़ कर बंधन में डाल देगा—कैद कर लेगा। तुम बन में हमें रोक रहे हो पर चुंगी के लिये हाथ फैलाते हुए तुम्हें बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। तुम्हारे घर-बार गाय-बछड़े आदि सब छूट जायेंगे, तुम्हारे पास जो भी धन है वह सब देना पड़ेगा। हे लाल! तुमने चुंगी लेने के लिए यदि हमारे साथ कोई ज़बरदस्ती की, और हम से छेड़-छाड़ की और उस छेड़-छाड़ के कारण कहीं हमारा कोई गहना टूट-टाट गया तब तो तुम एक छल्ले के मोल भी कहीं बिक पाओगे (तुम्हें यहाँ कोई नहीं पूछेगा और तुम्हारी ऐसी दशा होगी कि सदा याद रखोगे)।

काहू सो माई कहा कहिये, सहिये जू सोई 'रसखानि' सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब, नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और नहीं सखी, क्यों हूँ कहूँ प्रिय देखन पावैं।
चेरिया सों जु गोपाल रँच्यौ तो, चलौ री सबै मिलि चेरि कहावैं॥१२॥

शब्दार्थ—**रसखानि**=श्रीकृष्ण या ईश्वर। **नेम**=कुल आदि के नियम। **चेरिया**=दासी। **रँच्यौ**=बनाया।

भावार्थ—हे सखी, किसी से क्या कहें, वह श्रीकृष्ण या भगवान् जो सहावे वही सहना पड़ता है। जब प्रेम ही कर लिया तो अब कुल के नियमों की क्या परवाह, अब तो वह प्रियतम श्रीकृष्ण जो नाच नचावे वही नाचना है। हे सखी, हम और कुछ नहीं चाहतीं, हम तो केवल इतना ही चाहती हैं कि किसी न किसी प्रकार वह श्रीकृष्ण हमें दीखते रहें। भगवान् ने यदि हमें अपनी दासी बना लिया तो चलो सब मिल कर उनकी दासी ही कहलायें।

रहीम

परिचय

जन्म-संवत् १६१० मृत्यु-संवत् १६८२

इनका पूरा नाम खान अब्दुल रहीम खानखाना है। ये सम्राट् अकबर के अभिभावक और दरबार के नवरत्नों में से एक थे। विद्वत्ता और शौर्य के अतिरिक्त इनमें उदारता तथा दान देने के गुण भी थे। अरबी, फ़ारसी, खड़ीबोली, तुर्की, संस्कृत, ब्रज और अवधी आदि अनेक भाषाओं को ये अच्छी तरह जानते थे और इन सब में इनकी सरस रचनाएँ मिलती हैं। इनकी दानशीलता की सबने प्रशंसा की है। जीवन की संध्या में अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने राज-विद्रोह के अभियोग में इन्हें क़ैद कर लिया था और सारी सम्पत्ति भी छीन ली। क़ैद से छूट कर ये एक दरिद्र की भाँति चित्रकूट पर दिन बिताने लगे। इनसे जब कोई याचक माँगने आता था तो इन्हें उसे कुछ दान न देने पर अत्यन्त शोक होता था—

ये रहीम घर घर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं॥

आप कृष्ण-भक्त और उसके अनन्य उपासक थे—

जिहि 'रहीम' चित आपनो कीन्हौं चतुर चकोर।
निसि-बासर लाग्यो रहे कृष्णचन्द्र की ओर॥

आदि दोहे इनके प्रेम की सूचना देते हैं। रहीम ने नीतिपरक और उपदेशात्मक अनेक दोहे लिखे हैं, जिनमें इनके जीवन का अनुभव छिपा हुआ है। वह दूसरों से उधार लिया हुआ या सुना-सुनाया न

होकर अपने जीवन के अनुभव पर आश्रित है।

गोस्वामी तुलसीदास इनके अनन्य मित्र थे। शृंगार, नीति, भक्ति, ज्योतिष आदि पर इन्होंने पुस्तकें लिखी हैं। ज्योतिष की पुस्तक 'खेट-कौतुकम्' में हमें मौजी रहीम का पता चलता है जिसके श्लोकों में फ़ारसी, अरबी और ब्रज व संस्कृत सभी के शब्दों का समावेश है। ये अनेक भाषाओं को जानने वाले एकमात्र कवि थे। इनकी निम्न निर्दिष्ट पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—

रहीम-सतसई, मदनाष्टक, बरवै-नायिका-भेद, शृंगार-सोरठा, खेटकौतुकम्।

दोहे

सार और आलोचना

आपकी कविताओं का सार है कि मनुष्य व्यवहार-निपुण कैसे बन सकता है। लक्ष्मी चंचल है, किसी के पास नहीं टिकती—इस बात का सच्चा चित्र चित्रित कर दिखाया है। प्रेम से तो मनुष्य परमात्मा को भी वश में कर लेता है, मनुष्य को वश में करने की तो बात ही क्या है, इत्यादि विचार मानव को व्यवहार-निपुण बना देते हैं। कृष्ण-प्रेम की भी झलक आपकी कविता में मिलती है।

आपके दोहे सुभाषित तथा सूक्तियों का अच्छा काम देते हैं। ये दोहे नैतिक तथा उपदेशपरक हैं।

अच्युत-चरन तरंगिनी, सिव-सिर मालति माल।
हरि न बनाओ सुर-सरी, कीजो इंदव-भाल ॥१॥

शब्दार्थ—अच्युत=विष्णु। तरंगिनी=नदी। मालति=चमेली। हरि=विष्णु। इंदव-भाल=शिवजी।

भावार्थ—रहीम गंगा से प्रार्थना करते हैं कि हे विष्णु के चरणों से उत्पन्न होने वाली तरंगिणी (नदी), शिवजी के सिर पर चमेली की माला की तरह सुशोभित होने वाली गंगे! तुम मुझे विष्णु रूप नहीं प्रत्युत शिव रूप बनाना। भाव यह है कि गंगा में स्नान कर मनुष्य शिव और विष्णु का स्वरूप बन जाता है अतः कवि विष्णु रूप नहीं बनना चाहता क्योंकि गंगा विष्णु के चरणों से निकली है। विष्णु बन कर गंगा को अपने पैरों में नहीं, अपितु शिव रूप बन कर सिर पर धारण करना चाहता है।

सब कोऊ सब सों करैं, राम-जुहारु सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम ॥२॥

शब्दार्थ—राम-जुहारु=जय रामजी की, नमस्कार आदि। हित=प्रेमी। अनहित=शत्रु।

भावार्थ—सुख के दिनों में सभी कोई सब से 'जय रामजी की' या 'नमस्कार' आदि करते हैं, किन्तु हितैषी मित्र या शत्रु की परीक्षा तो तभी होती है, जबकि कोई किसी से काम पड़ जाय। भाव यह कि हमारा किसी से कोई काम अटक गया है यदि वह उसे पूरा कर देता है तब तो ज्ञात होता है कि यह हमारा मित्र है अन्यथा क्या पता लगे कि कौन मित्र है!

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥३॥

शब्दार्थ—अमरबेलि=अमर बेल नामक एक बेल जिसकी पीली-पीली तिनके के समान शाखाएँ वृक्षों और झाड़ियों पर छाई रहती हैं। मूल=जड़।

भावार्थ—जो भगवान् बिना जड़ की अमरबेल को भी पालते-पोसते हैं, उस भगवान् को छोड़ कर दूसरे किसको ढूँढ़ता फिरता है। भाव यह कि उस प्रभु का ही भजन करना चाहिए क्योंकि वह जो चाहे कर सकता है इसलिए उसी की शरण ढूँढ़नी चाहिए। भगवान् सभी का रक्षक है, उसे छोड़ कर दूसरे किसी मनुष्य का सहारा क्यों ढूँढ़ा जाय।

अनुचित-उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के ज़ोर।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥४॥

शब्दार्थ—अनुचित=बुरा। उचित=ठीक। लघु=छोटा। ससि=चन्द्रमा। संयोग=सम्बन्ध। पचवत=पचा जाता है। आगि=आग।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि छोटे आदमी भी बड़ों के बल पर अनुचित या उचित सभी तरह के काम कर लेते हैं, जैसे कि चन्द्रमा के

मित्र होने के कारण चकोर आग को भी खाकर पचा जाता है। भाव यह है कि बड़े आदमियों के नाम पर छोटे आदमी भी जो चाहे कर लेते हैं।

नोट—चकोर अंगारे चुगता है यह 'कवि-समय-ख्याति' है। वास्तव में चकोर अंगारे नहीं चुग सकता।

जो 'रहीम' करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ नाहक कर पर धरयौ, गोवर्धन गोपाल ॥५॥

शब्दार्थ—करिबौ हुतौ=करना था। हवाल=दशा। नाहक=व्यर्थ में। कर=हाथ। धरयौ=धारण किया। गोवर्धन=गोवर्धन नामक मथुरा के पास का एक पर्वत।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हे भगवन् श्रीकृष्ण! यदि आपने ब्रजभूमि की ऐसी बुरी दशा कर देनी थी तो उस समय जब इन्द्र अपने कोप से इसे बहाने लगा था तब अपने हाथ पर गोवर्धन पर्वत धारण कर उस वर्षा से इसकी रक्षा ही क्यों की। भाव यह कि कवि ब्रज की दुर्दशा को देख कर अत्यन्त दुःखी होकर कहता है कि हे भगवन्! आपने अपनी ब्रजभूमि की यह कैसी दुर्दशा कर दी है। इससे तो यही अच्छा था कि इसे जब इन्द्र भयंकर वर्षा के द्वारा बहा देना चाहता था तभी आप बह जाने देते, जिससे इसे आज ऐसे दुःख के दिन तो न देखने पड़ते।

अब 'रहीम' मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे को तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥६॥

शब्दार्थ—गाढ़े=कठिन। दोऊ=दोनों। जग=संसार।

भावार्थ—रहीम जी झूठ बोलना चाहते नहीं और सदा सत्य बोलने से भी आजकल काम नहीं चलता फिर काम कैसे चले, इसी भाव को व्यक्त करते हुए रहीम जी कहते हैं कि अब हमारे सामने बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई है कि दोनों ही काम बड़े कठिन हैं। क्योंकि यदि सदा सर्वदा सत्य को अपनाये रहते हैं तो संसार में निर्वाह नहीं होता,

और यदि झूठ बोलते हैं तो भगवान् नहीं मिलते !

ये 'रहीम' घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥७॥

शब्दार्थ—मधुकरी=भीख माँग कर लाई हुई रोटी। यारी= मित्रता।

भावार्थ—जब सम्राट् जहाँगीर ने रहीम जी की सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली और वे दुःख में दिन काटने लगे उस समय का वर्णन करते हुए रहीम जी कहते हैं—अब तो मैं स्वयं ही लोगों के घरों पर रोटी माँग कर अपना निर्वाह करता हूँ। अब मैं पहले जैसा सम्पन्न नहीं रहा। अतः हे मित्रो, अब आप लोग मुझ से मित्रता का नाता मत रखिए; क्योंकि अब मैं आप लोगों की आशा पूरी करने में असमर्थ हूँ।

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, 'रहिमन' कूर बबूर ॥८॥

शब्दार्थ—पात=पत्ता। मूर=जड़। कूर—दुष्ट। बबूर—बबूल या कीकर का वृक्ष।

भावार्थ—रहीम जी बबूल के वृक्ष के रूप में दुष्टों की प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं—यह दुष्ट बबूल के वृक्ष अपनी शाखा (पत्ते) या फल किसी से भी स्वयं तो किसी काम के हैं नहीं, किन्तु अपने पास से निकलने वाले दूसरे यात्रियों को भी (उनके कपड़ों में उलझ कर) रोकते फिरते हैं। दुष्टों का ऐसा ही स्वभाव होता है। भाव यह है कि दुष्ट स्वयं तो कुछ कार्य करता नहीं और दूसरों के काम को भी विघ्न डाल कर रोक देता है।

कमला थिर न 'रहीम' कहि, यह जानत सब कोई।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होई ॥९॥

शब्दार्थ—कमला=लक्ष्मी। थिर=स्थिर, एक स्थान पर टिकने वाली। पुरुष पुरातन=पुराण पुरुष विष्णु या पुराना बुड्ढा आदमी। बधू=बहू। चंचला—चंचल।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस बात को सभी जानते हैं कि लक्ष्मी कभी एक स्थान पर टिककर नहीं रहती। बात तो यह है कि यह पुराण पुरुष (सब से बूढ़े) भगवान् विष्णु की पत्नी है फिर भला चंचल क्यों न होगी। बूढ़ों की स्त्रियाँ प्रायः चंचल होती हैं। अतः लक्ष्मी का चंचल होना स्वाभाविक ही है। इस दोहे में लक्ष्मी के चंचल होने का बड़ा ही सुन्दर कारण बताया गया है। भाव यह कि धन कभी एक के पास नहीं ठहरता।

छोटे काम बड़े करें, तो न बड़ाई होई।
ज्यों 'रहीम' हनुमंत कहँ, गिरधर कहे न कोई ॥१०॥

शब्दार्थ—गिरधर—पर्वत को धारण करने वाला।

भावार्थ—बड़ों की ही सब बड़ाई करते हैं, छोटों को कोई नहीं पूछता, इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदि छोटे आदमी बड़ा काम कर भी लें तो भी उन्हें कोई बड़ा नहीं कहता, जैसे कि हनुमान् को कोई भी गिरधर (पर्वत को उठाने वाला) नहीं कहता परन्तु कृष्ण को सभी कहते हैं। भाव यह कि हनुमान् जी द्रोणाचल पर्वत को उठा कर ठेठ लंका ले गये और श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को उठा कर खड़े ही रहे। क्योंकि श्रीकृष्ण बहुत बड़े थे अतः उन्हें ही सब गिरिधर कहते हैं, हनुमान् को नहीं।

अमी पियावत मान बिन, 'रहिमन' मोहिं न सुहाइ।
प्रेम सहित मरिबौ भलौ, जो विष देइ बुलाइ ॥११॥

शब्दार्थ—अमी—अमृत। विष—ज़हर। मरिबौ—मरना।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं यदि कोई मुझे निरादर से अमृत भी

पिलाये तो भी मुझे अच्छा नहीं लगता। विपरीत इसके, यदि कोई सम्मान के साथ विष भी दे दे तो वह मरना भी अच्छा है। भाव यह है कि मनुष्य को अपमान से जीने की अपेक्षा सम्मानपूर्वक मृत्यु को श्रेष्ठ समझना चाहिये।

'रहिमन' मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय॥१२॥

शब्दार्थ—**किन**=क्यों नहीं। **कोय**=कोई। **नर**=मनुष्य। **बस करिबो**=वश में करना। **नारायण**=भगवान्।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि कोई मन लगा कर काम करके तो देखे, यदि वह मन व लगन से प्रयत्न करेगा तो किसी मनुष्य की तो बात ही क्या, भगवान् भी उसके वश में हो जायेंगे। भाव यह कि मन लगा कर कार्य करने से सब काम बन जाते हैं।

होइ न जाकी छाँह ढिग, फल 'रहीम' अति दूर।
बाढ़ेउ सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर॥१३॥

शब्दार्थ—**ढिग**=पास में। **अति**=बहुत। **बाढ़ेउ**=बढ़े भी। **तार**=ऊँची।

भावार्थ—जिसकी छाया भी पास में नहीं है और फल भी बहुत दूर लगते हैं ऐसे ऊँचे खजूर के वृक्ष के समान यदि कोई मनुष्य बड़ा भी हो जाय, तो भी किस काम का। भाव यह है कि मनुष्य के उन्नत होने और बढ़ने से तब लाभ है जब वे दूसरों को लाभ पहुँचा सकें, यदि कोई दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा सकता तो उसका बढ़ना खजूर वृक्ष के समान ही व्यर्थ है।

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥१४॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब । लखत है=देखता है । लखै=देखे। दीनबन्धु=दीनों के बन्धु, भगवान्।

भावार्थ—दीन-हीन दुःखी मनुष्य तो सभी की ओर आशाभरी दृष्टि से देखता है; किन्तु उसकी ओर कोई नहीं देखता। रहीम कहते हैं कि दीन-हीन की सुध लेने वाला पुरुष तो दीनबन्धु (भगवान्) के समान हो जाता है। भाव यह कि मनुष्य को सदा दीन-दुखियों की सहायता करनी चाहिए।

अमृत ऐसे वचन में, 'रहिमन' रिस की गाँस।
मानहु मिसरी में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥१५॥

शब्दार्थ—रिस=क्रोध। गाँस=गाँठ। निरस=खुश्क, रसहीन।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि अमृत के समान मधुर वचनों में क्रोध का थोड़ा-सा भी अंश वैसा ही बुरा लगता है जैसा कि मिश्री के कूजे में खुश्क बाँस की फाँस बुरी लगती है। जिस प्रकार मिश्री के कूजे में लगे हुए बाँस के तिनके को लोग निकाल कर फेंक देते हैं वैसे ही मधुर वचनों में से क्रोध को भी निकाल कर दूर कर देना चाहिए। बातें करते हुए कभी क्रोध न करना चाहिए।

तब ही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै 'रहीम' ॥१६॥

शब्दार्थ—जीबो=जीना। दीबो=दान देना। धीम=धीमा। मंद=कम। रुचै=अच्छा लगता है।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि इस संसार में जीवन तो तभी तक अच्छा है जब तक दान देने में कोई कमी न आये; क्योंकि बिना दान दिये संसार में जीवित रहना तो हमें अच्छा नहीं लगता। भाव यह कि मनुष्य को सदा दान देते रहना चाहिए।

जब लगि वित्त न आपने, तब लगि मित्त न कोय।
'रहिमन' अम्बुज अम्बु बिन, रवि ताकर रिपु होय ॥१७॥

शब्दार्थ—बित्त=धन। मित्त=मित्र। अम्बुज=कमल। अम्बु=पानी। रवि=सूर्य। ताकर=उसका। रिपु=शत्रु।

भावार्थ—मनुष्य के पास जब तक अपना धन-बल नहीं होता तब तक उसका कोई मित्र नहीं बनता। जैसे जल से बाहर निकले हुए कमल का सूर्य भी शत्रु हो जाता है। भाव यह कि पैसा सबसे बड़ी चीज़ है। उसके बिना किसी का कुछ काम नहीं बनता।

जो 'रहीम' ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे से फरजी भयौ, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥१८॥

शब्दार्थ—ओछो=छोटे आदमी। अति ही=बहुत ही। इतराय=इतराते हैं। प्यादा=शतरंज की सबसे छोटी गोट। फरजी=शतरंज की एक सबसे बड़ी गोट।

भावार्थ—यदि नीच व्यक्ति को कोई उच्च पद प्राप्त हो जाय तो वह बहुत ही अधिक अभिमान में भर जाता है। जैसे कि शतरंज का प्यादा यदि फरज़ी बन जाय तो वह अपने सीधे ही खानों में चलने के नियम को छोड़कर टेढ़े घेरों में चलने लग जाता है।

'रहिमन' ब्याह वियाधि है, सकहु तौ जाहु बचाय।
पाँयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय ॥१९॥

शब्दार्थ—वियाधि=व्याधि, रोग।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि विवाह एक प्रकार का रोग है। यदि इससे बच सकते हो तो बच जाओ। ढोल बजा-बजा कर विवाह के रूप में तुम्हारे पैरों में बन्धन की बेड़ियाँ पहनाई जा रही हैं। भाव यह कि विवाह कराते पर मनुष्य संसार के कई झगड़ों में उलझ जाता है।

छमा बड़ेन को [illegible] छोटेन को उतपात।
का 'रहीम' को घटि गया, जो भृगु मारी लात ॥२०॥

शब्दार्थ—छमा=क्षमा। बड़ेन को=बड़ों को। उतपात=शरारत। घटि गयो=कम हो गया। भृगु=एक ऋषि जिन्होंने सोये हुए भगवान् विष्णु को लात मार कर जगाया था।

भावार्थ—छोटे आदमी भले ही शरारतें किया करें पर बड़े आदमियों को चाहिए कि वे उन्हें क्षमा कर दें। जैसे कि भृगु ऋषि ने भगवान् विष्णु को लात भी मार दी तब भी उनका क्या बिगड़ गया। (पुराणों में कथा है कि एक बार भृगु ऋषि भगवान् विष्णु के दर्शन करने गये। वे सोये पड़े थे, जब जगाने पर भी न जागे तो उन्होंने विष्णु को लात मार कर जगा दिया। इस पर भगवान् ने ऋषि के पाँव पकड़ लिये और कहा कि कहीं आपके पैर में चोट तो नहीं लगी। इस प्रकार भगवान् ने क्रोध करने की अपेक्षा सहन-शीलता ही दिखाई।) भाव यह कि बड़े आदमियों को सदा क्षमाशील होना चाहिए।

'रहिमन' अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥२१॥

शब्दार्थ—अँसुआ=आँसू। नयन=आँख। ढरि=निकल कर, ढल कर। प्रगट करेइ=प्रकट करते हैं। जाहि=जिसे। गेह=घर। भेद=रहस्य। कस=क्यों, कैसे।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि आँखों से आँसू बाहर निकल कर हृदय के दुःख को प्रकट कर देते हैं। बात तो यह है कि जिसे घर से निकालोगे वह तुम्हारे अन्दर के भेद को क्यों नहीं बतायेगा, अवश्य बतायेगा ही। भाव यह कि अपने आदमी को घर से नहीं निकालना चाहिए; नहीं तो वह तुम्हें हानि पहुँचायेगा ही।

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेइ।
ज्यों 'रहीम' आटा लगै, त्यों मृदंग सुर देइ ॥२२॥

शब्दार्थ—चारा=भोजन। छाला=सूखा चमड़ा। हित कर=प्रेम से। मृदंग=एक प्रकार का ढोलक के समान बाजा।

भावार्थ—संसार में सबको भोजन प्रिय होता है। यहाँ तक कि मृदंग का सूखा चमड़ा भी भोजन को बड़े प्यार से ग्रहण करता है, क्योंकि मृदंग और तबले आदि के चमड़े पर जब आटा लगाते हैं तो बहुत ज़ोर-ज़ोर से बजने लगता है। इसलिए सिद्ध होता है कि संसार में भोजन ही सबको प्रिय है।

'रहिमन' विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
जनम वृथा भू पर धरेउ, पशु बिन पूँछ बिसान ॥२३॥

शब्दार्थ—भू=पृथ्वी, धरेउ=धारण किया। बिसान=विषाण, सींग।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिन लोगों में विद्या नहीं है; धर्म, यश और दान भी नहीं है, उन्होंने इस पृथ्वी पर व्यर्थ ही जन्म धारण किया हुआ है। वास्तव में तो वे मनुष्य रूप में बिना पूँछ और बिना सींगों के पशु ही हैं।

खीरा सिर तें काटिये, मलिये लोन लगाइ।
'रहिमन' करुए मुखन को, चहियत यही सजाइ ॥२४॥

शब्दार्थ—करुवे=कड़वे। सजाइ=सज़ा, दण्ड।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि खीरे को सिर से काट कर नमक लगाकर मला जाता है। कड़ुवे मुख वालों की वास्तव में यही सज़ा होनी चाहिए।

खीरा मुँह पर से कड़ुवा होता है। उसके कड़ुवेपन को दूर करने के

लिए उसे मुँह पर से काट कर नमक लगाकर मलते हैं। इसी आधार पर रहीम जी ने कहा है कि जो लोग कटु वचन बोलते हैं वास्तव में उनको ऐसा ही कठोर दण्ड मिलना चाहिए। इसलिए लोगों को चाहिए कि कभी किसी को कड़ुवी बात न कहें।

'रहिमन' मन महाराज के, दृग सों नाहिं दिवान।
देखि जाहि रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान ॥२५॥

शब्दार्थ—**मन महाराज**=मन रूपी राजा। **दृग**=आँखें। **दिवान**=मन्त्री। **रीझै**=प्रसन्न हो जावें। **बिकान**=बिक जाता है।

भावार्थ—इस मन रूपी महाराजा के नेत्रों से बढ़कर कोई भी मन्त्री नहीं है, क्योंकि यह नेत्र रूपी मन्त्री जिसको देख कर प्रसन्न हो जाते हैं, मन महाराज भी उसी के वश में हो जाते हैं। भाव यह है कि आँखें जिस सुन्दर रूप को देख कर प्रसन्न होती हैं, मन भी उसी पर मोहित हो जाता है; इसी लिए मन को महाराजा और आँखों को उसका सब से बड़ा मन्त्री बताया गया है।

यों 'रहीम' सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटन बारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥२६॥

शब्दार्थ—**उपकारी**=उपकार करने वाला। **संग**=साथ। **बाँटन-बारे**=बांटने वाले।

भावार्थ—अच्छे आदमियों के साथ रहने में बड़े भारी लाभ होते हैं, इस भाव को बताते हुए रहीम जी कहते हैं कि उपकारी पुरुषों के साथ रहने पर उसी प्रकार अनायास ही सुख मिल जाता है जैसे मेंहदी बाँटने वाले के हाथ में भी अपने आप ही रंग लग जाता है। भाव यह है कि सज्जन पुरुष चाहे हमें लाभ पहुँचाये या न पहुँचाये अपने आप लाभ हो जाता है।

माह मास कर भिनुसरा, मीन सुखी नहिं सौर।
ज्यौं 'रहीम' जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर ॥२७॥

शब्दार्थ—**माह**=माघ। **मास**=महीना। **कर**=का। **भिनुसरा**=प्रातःकाल। **मीन**=मछली। **सौर**=धूप। **जियइ**=जीते रहते हैं। **ठौर**=स्थान।

भावार्थ—माघ मास के प्रातःकाल का भयंकर ठंडा समय है। ऐसे समय में प्रत्येक प्राणी चाहता है कि उस समय धूप में बैठकर ठंड को दूर कर लें। फिर भी मछली तो धूप में रह कर सुखी नहीं रह सकती। रहीम जी कहते हैं—बात यह है कि कोई भी मनुष्य अपने स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाकर सुखी नहीं रह सकता। भाव यह है कि मनुष्य अपने स्थान पर सुख प्राप्त करता और शोभा देता है। मातृ-भूमि से बढ़-कर और कोई स्थान नहीं हो सकता!

'रहिमन' गली है साँकरी, दूजौ ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं ॥२८॥

शब्दार्थ—**साँकरी**=तंग। **दूजौ**=दूसरा। **ठहराहिं**=ठहरता है। **अहै**=है। **आपु**=आपा, अहंकार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि प्रेम की गली बड़ी साँकरी या तंग है। इसमें दो व्यक्ति एक साथ नहीं ठहर सकते। क्योंकि मनुष्य का जब तक आपा या अहंकार रहता है तब तक उसके हृदय में भगवान् का निवास नहीं हो सकता। और जब भगवान् का निवास हो जाता है तो भक्त का आपा या अहंकार मिट जाता है, वह प्रभुमय ही हो जाता है। भाव यह है कि जब तक मनुष्य 'मैं करता हूँ, मैंने किया है' ऐसे अहंकार में रहता है तब तक उसे प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता, और जब प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है तो उसका अहंकार मिट जाता है।

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़ति साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२६॥

शब्दार्थ—बहु=बहुत । भेषज=औषधि । व्याधि=रोग । छाँड़ति=छोड़ती । खग=पक्षी । मृग=हरिण । बसत=रहते हैं । अरोग=नीरोग । अनाथ=जिसका कोई रक्षक न हो ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि लोग यद्यपि बहुत-सी औषधियाँ करते हैं फिर भी रोग उनका पीछा नहीं छोड़ते । इसके विपरीत पक्षी, हरिण आदि जीव जंगल में भी सदा नीरोग ही रहते हैं, उनकी कभी कोई किसी प्रकार की चिकित्सा नहीं करता, फिर भी उन्हें कोई रोग नहीं सताता । बात तो यह है कि भगवान् अनाथों के भी नाथ हैं, जिसका कोई रक्षक नहीं उसका रक्षक भगवान् ही है । भाव यह है कि जिसका प्रभु रक्षक है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता और जिसके प्रभु ही प्रतिकूल हैं उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता ।

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन ।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई गुन दीन ॥३०॥

शब्दार्थ—कदली=केला । भुजंग=साँप । स्वाति=सत्ताइस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र जिसमें वर्षा की बूँद यदि सीप में गिर जाय तो मोती बन जाती है, केले में गिर जाय तो कपूर बन जाता है और साँप के मुख में गिर जाय तो विष बन जाता है ।

भावार्थ—स्वाति नक्षत्र का एक ही जल केले में कपूर, सीप में मोती और साँप के मुँह में विष हो जाता है । इस प्रकार वह तीन गुणों वाला हो जाता है । अतः जैसी संगति में बैठोगे वैसे ही गुण आ जायेंगे । भाव यह कि मनुष्य पर संगति का प्रभाव सब से अधिक पड़ता है । मनुष्य को बुरी संगति में नहीं बैठना चाहिए ।

उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
'रहिमन' इन्हैं सँभारिए, पलटत लगै न वार ॥३१॥

शब्दार्थ—उरग=साँप। तुरग=घोड़ा। नृपति=राजा। नारी=स्त्री। पलटत=बदलते हुए। बार=देर।

भावार्थ—साँप, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच जाति के पुरुष और हथियार इन सबकी सावधानी से देख-भाल करनी चाहिए। क्योंकि इन को बदलते हुए देर नहीं लगती। भाव यह कि साँप, घोड़ा आदि का कभी पूरा भरोसा नहीं करना चाहिए, इनकी ओर से असावधान होने पर ये हानि पहुँचा सकते हैं।

गहि सरनागत राम की, भवसागर की नाव।
'रहिमन' जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥३२॥

शब्दार्थ—शरणागत=शरण में आये हुए (की रक्षा करने वाले)। भवसागर=संसार रूपी सागर। उधार=उद्धार। उपाव=उपाय।

भावार्थ—रहीम जी अपने मन को कहते हैं कि हे मन! तू संसार रूपी सागर को पार होने के लिए नाव के समान शरण में आये हुए लोगों की रक्षा करने वाले भगवान् राम की शरण में चला जा; क्योंकि भगवान् राम के सिवा इस संसार से उद्धार का दूसरा कोई उपाय नहीं है। भाव यह है कि भगवान् राम ही मनुष्यों को संसार से पार करने वाले हैं इसलिए उन्हीं की शरण में जाना चाहिए।

खर्च बढ़ौ रोजी घटी, नृपति निठुर मन कीन।
'रहिमन' वे नर का करैं, ज्यों थोरे जल मीन ॥३३॥

शब्दार्थ—रोजी=आमदनी। नृपति=राजा। निठुर=कठोर। कीन=कर लिया। मीन=मछली।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि आजकल हमारा काम-काज तो कुछ

रहा नहीं और खर्च ज्यों का त्यों बढ़ता जा रहा है। साथ ही सम्राट (जहाँगीर) भी हमसे असन्तुष्ट हो रहे हैं, ऐसी स्थिति में हमारी दशा थोड़े जल में मछली की सी हो रही है। अतः अब तो हमारा जीवन अत्यन्त कठिन हो गया है। इस दोहे में कवि ने अपनी दुःखी दशा का बड़ा ही सच्चा और करुण चित्र अंकित किया है।

काम कछू आवै नहिं, मोल 'रहीम' न लेइ।
बाजू टूटैं बाज को, साहब चारा देई ॥३४॥

शब्दार्थ—बाजू=बाँह। **साहब**=भगवान्। **चारा**=भोजन।

भावार्थ—जिस बाज की बाहें या पंख टूट गये हों वह किसी के कुछ काम नहीं आ सकता, और न कोई उसे मोल ही ले सकता है। ऐसे बाज को—जिसका कोई भी रक्षक नहीं—भगवान् ही भोजन देता है। भाव यह कि भगवान् ही अशरणों के शरण या रक्षक हैं।

अंजन दीन्हे किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखन सों हरि लखौ, 'रहिमन' बलि बलि जाय ॥३५॥

शब्दार्थ—अंजन=सुरमा। **लखो**=देखा। **बलि बलि जाय**=बलिहारी है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिन आँखों से भगवान् को देख लिया उन आँखों में अब कोई नहीं समा सकता। यहाँ तक कि यदि अब अंजन भी लगाता हूँ तो आँखों में अब किरकिरी सी लगती है और सुरमा भी नहीं लगाया जाता। भाव यह है कि जिन आँखों से भगवान् को देख लिया, अब और किसी को उन आँखों से देखने की इच्छा नहीं होती।

कहु 'रहीम' केतिक रही, केती गई बिहाइ।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताइ ॥३६॥

शब्दार्थ—केतिक=कितनी। **गई बिहाइ**=बीत गई।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि कितनी उम्र तो बीत गई, और बाकी कितनी-सी रह गई। भाव यह है कि बहुत आयु तो बीत गई बाकी थोड़ी-सी रह गई। फिर भी माया, ममता और मोह में पड़ कर अन्त में पछताते चले जाओगे। अतः जितनी आयु शेष रह गई है उतने ही समय में प्रभु का भजन कर लो, ताकि अन्त में पछताना न पड़े।

कहि 'रहीम' धन बढ़ि घटै, जात धनिन की बात।
घटै-बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥३७॥

शब्दार्थ—**जात**=यह तो। **धनिन**=धन वाले। **जे**=जो।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यह तो धनियों की बात है कि उनके यहाँ कभी धन बढ़ जाता है कभी घट जाता है। पर जो बेचारे घास बेचकर ही अपना निर्वाह करते हैं उनके यहाँ भला क्या कभी धन घटेगा या बढ़ेगा। वे तो सदा एक से ही रहते हैं। भाव यह कि धनवान् को धन के आने और जाने का दुःख लगा रहता है पर गरीब तो सदा एक-से रहते हैं।

करमहीन 'रहिमन' लखौ, धँसौ बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ कों, जागत ह्वैगो भोर ॥३८॥

भावार्थ—**करमहीन**=बुरे भाग्यों वाला। **लखौ**=देखो। **धँसौ**=घुसा। **चिन्तत**=सोचते हुए। **ह्वैगो**=हो गया। **भोर**=प्रातःकाल।

शब्दार्थ—रहीम जी कहते हैं कि देखो एक बुरे भाग्यों वाला चोर एक ऐसे बहुत बड़े घर में जा घुसा जिसमें बहुत से बहुमूल्य रत्नादि पदार्थ भरे पड़े थे। वह यह सोचने लगा कि इनमें से कौन-सी चीज़ उठाऊँ कौन-सी न उठाऊँ। यह सोचते-सोचते ही प्रातःकाल हो गया और वह वहाँ से कुछ भी न उठा सका। भाव यह है कि अधिक लोभी मनुष्य को कुछ भी नहीं मिलता।

खैर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद्पान।
'रहिमन' दाबैं ना दबैं, जानत सकल जहान ॥३६॥

शब्दार्थ—खैर=कत्था। खून=किसी की हत्या करना। प्रीति=प्रेम। मदपान=शराब पीना। सकल=सारा। जहान=संसार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि पान पर लगे हुए कत्थे की लाली, किसी की हत्या, खाँसी, खुसी, किसी के साथ शत्रुता या मित्रता और शराब का पीना ये सातों बातें छिपाये से कभी छिप नहीं सकतीं, इन्हें सारा संसार जान ही जाता है। भाव यह कि दो व्यक्तियों के पारस्परिक प्रेम या शत्रुता अथवा कोई किसी की हत्या कर आये, या शराब पी आये या पान खाया हुआ हो इन सब बातों का लोगों को अपने आप पता लग जाता है। ये बातें कभी नहीं छिप सकतीं।

कौन बढ़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
काकी महिमा नहिं घटी, पर-घर गए 'रहीम' ॥४०॥

शब्दार्थ—जलधि=समुद्र। धीम=कम, मन्दा। भो=हो गया। काकी=किसकी। महिमा=बड़ाई। पर-घर=दूसरे का घर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि गंगा अपने से बड़े समुद्र के पास इस आशा से गई होगी कि बड़े आदमी के पास जाने से कुछ लाभ होगा, पर भला उसे समुद्र में मिल कर क्या बड़ाई मिली—कुछ भी तो नहीं मिली। बड़ाई मिलना तो दूर रहा उसका नाम कम या नष्ट हो गया। क्योंकि गंगा जहाँ समुद्र में मिलती है वहाँ उसका नाम 'गंगा-सागर' पड़ जाता है। बात तो यह है कि दूसरे के घर जाने पर किसकी महिमा कम नहीं हो जाती अर्थात् सबकी हो जाती है। चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, यदि वह दूसरे के घर जायगा तो उसका सम्मान कम हो ही जायगा।

'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तौ कहि भीतर गई, जूती खात कपाल ॥४१॥

शब्दार्थ—जिह्वा=जीभ। सरग=आकाश। कपाल=खोपड़ी।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जीभ स्वयं तो ऊँची-नीची बातें कह कर मुँह में जा छिपती है, किन्तु उसके कारण जूतियाँ बेचारे सिर को खानी पड़ती हैं। भाव यह कि मनुष्य के मुख से यदि कुछ अनुचित बात निकल जाय तो लोग उसे जूतियों से पीटते हैं। अतः कोई अनुचित बात नहीं कहनी चाहिए।

कहु 'रहीम' कैसे बने, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥४२॥

शब्दार्थ—केर=केला। रस=आनन्द। डोलत=हिलता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि केले और बेरी का साथ भला कैसे निभ सकता है क्योंकि काँटेदार बेरी तो अपने आनन्द में मग्न होकर हवा से झूमती है पर उसकी कँटीली शाखाओं से उस बेचारे के साथ में उगे हुए केले के कोमल अंग (पत्ते) आदि फट जाते हैं। भाव यह है कि दुष्ट और सज्जन का साथ कभी नहीं निभ सकता। दुष्ट तो अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण शरारतें करता है, पर उससे सज्जन का बड़ा भारी अहित हो जाता है।

कहि 'रहीम' सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जो कसे, तेई साँचे मीत ॥४३॥

शब्दार्थ—सम्पति=धन। सगे=सम्बन्धी। बहु रीत=बहुत प्रकार से। मीत=मित्र।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि सम्पत्ति में तो मनुष्य के कई लोग कई प्रकार से सम्बन्धी बन जाते हैं पर विपत्ति रूपी कसौटी पर जो कसे

जाते हैं वे ही सच्चे मित्र हैं। भाव यह है कि जब हमारे पास खूब रुपये-पैसे होते हैं तब दूर-दूर के सम्बन्धी भी हमारे अपने बन जाते हैं और जब दुःख के दिन आते हैं तब अपने सगे-सम्बन्धी भी पराये बन जाते हैं। इसलिए जो विपत्ति के समय में साथ दे वे ही सगे-सम्बन्धी तथा सच्चे मित्र हैं।

जो गरीब पर हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥४४॥

शब्दार्थ—हित=प्रेम। बापुरो=बेचारा। मिताई=मित्रता। जोग=योग्य।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जो लोग गरीबों से प्रेम करते हैं वास्तव में वे ही बड़े लोग हैं। भला बेचारा सुदामा कृष्ण की मित्रता के योग्य कहाँ था, फिर भी भगवान् कृष्ण ने उसे अपना मित्र बना कर अपना बड़प्पन ही दिखाया। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह ग़रीबों के साथ प्रेम का व्यवहार करे।

जेहि अंतर दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात।
'रहिमन' असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥४५॥

शब्दार्थ—जेहि=जिसके। अंतर=अन्दर। दुरो=छिपा। हन्यो=मारा। ताही=उसी के। गात=शरीर। असमय=बुरा समय ह्वै जात=हो जाते हैं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिस आँचल के अन्दर छिप कर दीपक हवा से अपनी रक्षा करता है, वही आँचल दीपक को बुझा भी देता है। बात तो यह है कि जब बुरा समय आता है तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

जैसी परे सो सहि रहै, कहि 'रहीम' यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह॥४६॥

शब्दार्थ—सीत=ठंड। **घाम**=धूप।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस शरीर पर जैसी जैसी परिस्थितियाँ आती हैं उन सबको यह सह लेता है। अर्थात् यदि इस शरीर को कष्ट सहने का अभ्यासी बना लिया जाय तो यह धूप वर्षा आदि के कष्ट अनायास सह लेता है। और यदि इस शरीर को सुख और आराम में रहने का अभ्यासी बनाया जाय तो यह कष्ट सहन नहीं कर सकता। भाव यह है कि इस शरीर को जैसा बनाया जाय वैसा ही बन जाता है; जैसे कि ठंड, धूप और वर्षा ये सब पृथ्वी पर ही पड़ते हैं, पृथ्वी इन सब को सह लेती है।

जो 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥४७॥

शब्दार्थ—उत्तम प्रकृति=अच्छे स्वभाव वाले। **कुसंग**=बुरी संगति। **विष**=जहर। **व्यापत**=फैलता। **भुजंग**=साँप।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं अच्छे स्वभाव वाला है तो बुरी संगति से उसका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। जैसे कि चन्दन के वृक्ष पर चाहे साँप भी लिपटे रहते हैं फिर भी उसका वे कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, उसे ज़हरीला नहीं बना सकते। भाव यह कि मनुष्य को अपना आचरण ठीक रखना चाहिए, फिर बुरी संगति का उस पर कुछ प्रभाव नहीं होगा।

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलती 'रहीम'।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥४८॥

शब्दार्थ—पुरुषारथ=उद्योग। **बैराट**=विराट् राजा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि भाग्य कुछ न होता और उद्योग से ही धन मिलता होता तब तो बड़े बलवान् भीमसेन को विराट

राजा के घर रसोई क्यों बनानी पड़ती !

भाव यह है कि भीम अत्यन्त बलवान् था फिर भी अज्ञातवास के समय उसको विराट् राजा के घर में रसोइये का काम करना पड़ा था। यदि भाग्य कुछ वस्तु न होता और उद्योग से काम चलता होता तो भीम अपने उद्योग से तत्काल राज्य प्राप्त कर लेते और ऐसा छोटा काम कदापि न करते। अतः सिद्ध होता है कि उद्योग से भाग्य प्रबल है।

जो 'रहीम' विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ि ॥४६॥

शब्दार्थ—**विधि**=विधाता। **दूषन**=दोष। **काढ़ि**=निकालना। **दूबरो**=दुबला। **कूबरो**=कुबड़ा। **नखत**=तारे। **बाढ़ि**=बढ़कर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि विधाता ने यदि किसी को बड़ा बना दिया तो उसमें भला कोई कैसे दोष निकाल सकता है। जैसे कि—द्वितीय का चन्द्रमा पतला, दुबला और कुबड़ा भी होता है तो भी तारों से तो बढ़कर ही होता है। भाव यह कि चन्द्रमा को विधाता ने बड़ा बना दिया है। अब वह चाहे छोटा-सा और दुबला-पतला भी क्यों न हो उसे तारों से तो श्रेष्ठ ही माना जाता है।

'रहिमन' आटा के लगे, बाजत है दिन रात।
घिउ सक्कर जो खात हैं, तिनके कहा बिसात ॥५०॥

शब्दार्थ—**घिउ**=घी। **बिसात**=सामर्थ्य, ताकत।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि तबला आटे के लगने से ही दिन-रात बजता रहता है, जो लोग घी-शक्कर खाते रहते हैं उनकी ताकत का तो कहना ही क्या ! भाव यह है कि तबले पर आटा लगने से जिस प्रकार उसकी ध्वनि बढ़ जाती है और वह दिन-रात बजता रहता है उसी प्रकार जिस पुरुष को शक्कर और घी खाने को मिलता है उसकी शक्ति भी बढ़ जाती है।

'रहिमन' रहिबो वाँ भलो, जौलौं सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ।।५१।।

शब्दार्थ—वाँ=वहाँ। सील=सुशीलता। समूच=पूरा। कूच=प्रस्थान।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि मनुष्य को वहाँ तब तक ही रहना चाहिए जब तक कि मनुष्य का आदर बना रहे, जब आदर नष्ट हो जाय तो तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए। भाव यह कि जहाँ मनुष्य का आदर न हो वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए।

टूटे सुजन मनाइयै, जो टूटैं सौ बार।
'रहिमन' फिरि फिरि पहरिए, टूटे मुकता हार ।।५२।।

शब्दार्थ—मुकता=मोती।

भावार्थ—सज्जन मित्र से यदि किसी कारणवश मित्रता टूट भी जाय तो भी उसे मना लेना चाहिए। जैसे कि मोतियों का हार चाहे कितनी ही बार टूट जाय, उसे बार-बार पिरो लिया जाता है, उसे फेंक नहीं दिया जाता।

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
'रहिमन' ऐसी बुद्धि तैं, काज सरैगो कौन ।।५३।।

शब्दार्थ—पात=पत्ता। काज=काम। सरैगो=बनेगा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि वृक्ष के एक-एक पत्ते के सींचने और एक-एक बड़ी में अलग-अलग नमक डालने से भला कैसे काम चल सकता है। भाव यह कि जहाँ समूह की रक्षा करनी हो, वहाँ अलग-अलग एक-एक व्यक्ति के लिए विचार करने से कैसे काम चल सकता है!

'रहिमन' देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ।।५४।।

शब्दार्थ—लघु=छोटा। न दीजिए डारि=फेंक न दीजिए। तरवारि=तलवार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े आदमियों को देखकर छोटे आदमी को निकाल मत दीजिए, क्योंकि जहाँ सूई की आवश्यकता हो वहाँ भला तलवार क्या काम आयेगी ! भाव यह कि किसी भी व्यक्ति को छोटा समझ कर उसका अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि छोटे व्यक्तियों के बिना भी बड़े-बड़े काम अटक जाते हैं।

> बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
> 'रहिमन' बिगरे दूध के, मथे न माखन होइ ॥५५॥

शब्दार्थ—किन=क्यों नहीं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि कोई लाख उपाय क्यों न कर डाले जो बात एक बार बिगड़ जाती है, वह फिर बन नहीं सकती। जैसेकि फटे हुए दूध को मथने से मक्खन नहीं निकल सकता।

> 'रहिमन' छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
> मढ़ो दमामो नहिं बनै, सौ चूहे के चाम ॥५६॥

शब्दार्थ—नर=मनुष्य। दमामो=नगारा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि छोटे आदमियों से कभी बड़ा काम नहीं हो सकता। जैसेकि चाहे सैकड़ों चूहों की खालें इकट्ठी कर लो, फिर भी एक भी नगारा नहीं मढ़ा जा सकता। भाव यह कि बड़े काम बड़े लोगों से ही हो सकते हैं।

> 'रहिमन' वे नर मर चुके, जे कछु माँगन जाहिं।
> उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं ॥५७॥

शब्दार्थ—निकसत=निकलता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी से कुछ

माँगने जाता है तो वह उसी समय मर जाता है, पर उससे पहले वह मर जाता है, जिसके पास वस्तु के होते हुए भी मुख से 'नहीं' शब्द निकल जाता है। अर्थात् जो माँगने वाले को अपने पास चीज़ के रहते हुए भी इन्कार कर देता है, उसे माँगने वाले से भी पहले मरा हुआ समझो। भाव यह कि माँगना तो बुरा है ही, पर घर में वस्तु के रहते हुए भी आवश्यकता के समय दूसरे को न देना उससे भी बुरा है।

निज कर क्रिया 'रहीम' कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥५८॥

शब्दार्थ—**निज**=अपने। **कर**=हाथ। **क्रिया**=कार्य। **भावी**= होनहार, भाग्य।

भावार्थ—मनुष्य के हाथ में तो कार्य करना ही है, उसका फल प्राप्त करना उसके वश में नहीं। फल देना तो भाग्य के हाथ में है। जैसे कि खिलाड़ी के हाथ में पासे तो होते हैं पर दाव नहीं होता। वह पासे फेंक सकता है, पर यह कभी नहीं हो सकता कि दाव भी अवश्य उसकी इच्छा-नुसार आ जाय। भाव यह कि मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए, उस का फल स्वयं प्राप्त हो जायगा।

धूरि धरत निज सीस पै, कहु 'रहीम' केहि काज।
जेहि रज मुनिपतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥५६॥

शब्दार्थ—**सीस**=सिर। **केहि काज**=किस लिए। **रज**=धूलि। **मुनिपतनी**=गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या। **गजराज**=हाथी।

भावार्थ—हाथी का स्वभाव है कि वह अपने पसीने को सुखाने के लिए अपने सिर पर धूल डालता रहता है, इस प्रकार किसी हाथी को अपने सिर पर धूल डालते देखकर किसी ने रहीम से पूछा कि ख़ानख़ाना साहब! यह हाथी अपने सिर पर धूल क्यों डालता है? इसका उत्तर देते हुए रहीम जी कहते हैं कि यह (भगवान् राम के चरणों की) उस

धूल को ढूँढ़ता फिरता है, जिससे गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया था। भाव यह कि जिन भगवान् राम के चरणों की धूल से शिला बनी हुई अहल्या का उद्धार हो गया था, यह हाथी उसी धूल को ढूँढ़ रहा है कि कहीं वह धूल पड़ी हो और मेरे सिर पर भी पड़ जाय, तो मेरा भी उद्धार हो जाय। इसीलिए यह स्थान-स्थान की धूल सूँड में भर-भर कर अपने सिर पर डालता रहता है।

यों 'रहीम' सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥६०॥

शब्दार्थ—**निज गोत**=अपनी जाति। **बड़री**=बड़ी-बड़ी। **निरखि**=देखकर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि अपनी जाति वालों को बढ़ता देख कर सभी को इस प्रकार प्रसन्नता होती है, जैसे कि किसी सुन्दरी की बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर आँखों को प्रसन्नता होती है। जिसकी बड़ी-सुन्दर आँखें होती हैं, उसे देखकर देखने वाले की आँखें प्रसन्न हो जाती हैं। इसी आधार पर यह दोहा कहा गया है।

पाँच रूप पाण्डव भए, रथवाहक नलराज।
दुरदिन पड़े 'रहीम' कहि, बड़न किए घटि काज ॥६१॥

शब्दार्थ—**रथवाहक**=रथ चलाने वाला। **दुरदिन**=बुरे दिन। **घटि काज**=छोटे काम।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बुरे दिन आने पर बड़ों को छोटे काम करने पड़ जाते हैं। जैसे कि अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचों पांडवों को पाँच भिन्न-भिन्न रूपों में छिपकर रहना पड़ा था और राजा नल को रथवान् बनना पड़ा था। जब पाँचों पांडवों और राजा नल जैसे बड़े आदमियों को भी बुरे दिन आने पर छोटे काम करने पड़ गये तो दूसरों का तो कहना ही क्या। उन्हें

तो जो कुछ करना पड़ जाय, वही कम है।

मान सहित विष खाय कै, संभु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत भख्यौ, राहु कटायो सीस ॥६२॥

शब्दार्थ—**संभु**=शंभु, भगवान् शंकर। **विष**=ज़हर। **जगदीस**=जगत् भर के स्वामी। **भख्यौ**=खा लिया।

भावार्थ—समुद्र-मंथन से निकले हुए विष को देवताओं की प्रार्थना पर उनके कल्याण के लिए आदरपूर्वक पीकर भगवान् शंकर तो जगदीश अर्थात् संसार भर के स्वामी बन गये, पर इसके विपरीत राहु ने बिना आदर के अमृत पीकर अपना सिर कटवा लिया। भाव यह कि यदि कोई आदरपूर्वक तुच्छ वस्तु भी दे तो बड़े प्रेम से ले लेनी चाहिए। इसके विपरीत यदि बिना आदर के कोई अच्छी वस्तु भी प्राप्त होती हो तो नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि उससे मनुष्य का स्वाभिमान नष्ट हो जाता है।

भलो भयो धर ते छुट्यौ, हँस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अधम पेट के हेत ॥६३॥

शब्दार्थ—**धर**=धड़, शरीर का सिर से नीचे का भाग। **खेत**=युद्ध-क्षेत्र। **काके**=किसके। **अधम**=नीच। **हेत**=लिए।

भावार्थ—युद्ध-भूमि में जब सैनिकों के सिर तलवार की धार से कट कर गिरते हैं तो वे गिरते ही हँसते हैं—यह एक स्वाभाविक धर्म है। इस पर कल्पना करता हुआ कवि कहता है कि—युद्ध-भूमि में धड़ से अलग कट कर गिरा हुआ सिर मानो अपने मन में यह सोचकर ही प्रसन्न होकर हँसता है कि बहुत अच्छा हुआ जो मैं इस धड़ से अलग हो गया; क्योंकि इस नीच पेट के लिए मुझे न जाने किस-किस के सामने झुकना पड़ता। यदि यह पेट पापी न हो तो सिर को किसी के सामने न झुकना पड़े। इस पेट को पालने के लिए मनुष्य न जाने किन-किन के सामने अपना सिर झुकाता है।

'रहिमन' घरिया रहँट कहँ, त्यों ओछे कै दीठि।
रीतहि सम्मुख होति हैं, भरी दिखावैं पीठि ॥६४॥

शब्दार्थ—घरिया=रहँट की घड़ियाँ, टिंडे। दीठि=दृष्टि, नज़र। रीतहि=खाली। सम्मुख=सामने।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि नीच आदमियों की दृष्टि रहँट की घड़ियों के समान होती है, क्योंकि जब रहँट की घड़ी खाली होती है तब तो पानी की ओर उनका मुँह होता है, पर जब पानी से भर जाती है तो पानी की ओर उनकी पीठ हो जाती है और मुँह ऊपर को हो जाता है। इसी प्रकार नीच पुरुष को भी जब किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तब तो वह हज़ार बार आपके सम्मुख उपस्थित होगा पर जब उसका काम निकल जाय तो फिर आपको पीठ दिखाकर निकल जायगा, पूछेगा भी नहीं कि तुम कौन होते हो।

मनि मानिक महँगे किये, सस्ते तृन जल नाज।
'रहिमन' यातें कहत हैं, राम गरीबनेवाज ॥६५॥

शब्दार्थ—मनि-मानिक=हीरे जवाहरात आदि। तृन=घास। नाज=अन्न। गरीबनेवाज=दीनदयालु।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि उस प्रभु ने केवल राजा-महाराजाओं और धनिकों के काम आने वाले हीरे-जवाहरात आदि पदार्थ तो बहुत महँगे बनाये हैं, पर सब प्राणियों के काम में आने वाले जल, अन्न और घास आदि को बहुत सस्ता बनाया है, इसीलिए तो उस प्रभु को गरीब-निवाज़ अर्थात् दीनदयालु कहा जाता है। यही तो उसकी दीन-दयालुता है कि उसने जन-सामान्य के काम आने वाले अन्न-घास आदि पदार्थ खूब और बहुत सस्ते बनाये हैं।

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनीष ज्यौं निरधन भये, करैं पीछली बात ॥६६॥

शब्दार्थ—**थोथे**=जल से खाली हुए। **बादर**=बादल। **क्वार**=आश्विन महीना। **निरधन**=गरीब।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिस प्रकार पानी बरस कर खाली हुए आश्विन मास के बादल खूब ज़ोर-ज़ोर से गर्जते हैं, उसी प्रकार यदि कोई धनवान् व्यक्ति किसी कारणवश निर्धन हो जाय तो वह अपने पिछले दिनों की बातें याद किया करता है कि हम पहले ऐसे थे।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥६७॥

शब्दार्थ—**देनहार**=देने वाला। **रैन**=रात्रि। **याते**=इसलिए।

भावार्थ—रहीम जी बड़े दानी थे। वे जब किसी को कुछ दान देते तो उनकी आँखें नीचे को झुक जातीं। इस पर एक कवि ने पूछा कि—

'सीखे कहा नवाब जू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो उठे त्यों त्यों नीचे नैन ॥'

इसके उत्तर में ख़ानख़ाना ने उक्त दोहा कहा था—

रहीम जी कहते हैं कि वास्तव में देने वाला तो कोई और ही है अर्थात् वह प्रभु है जो दिन-रात मेरे पास दान देने के लिए रुपया भेजता रहता है। पर लोग भ्रम से यह समझते हैं कि मैं देता हूँ। इसलिए शर्म के मारे दान देते समय मेरी आँखें झुक जाती हैं।

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलें बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥६८॥

शब्दार्थ—**टका**=रुपया।

भावार्थ—बड़े आदमी अपने मुँह से अपनी बड़ाई नहीं किया करते और न वे बढ़-बढ़ कर बातें ही बनाते हैं। भला हीरा अपने मुँह से कब कहता है कि मेरा मूल्य एक लाख रुपये है। जो बड़ा आदमी होगा और

गुणी होगा वह चाहे अपने मुँह से कहे या न कहे गुणज्ञ जन उसके गुणों को स्वयं पहचान लेंगे।

चरन छुए मस्तक छुए, तऊँ न छाड़त पानि।
हियौ छुवत प्रभु छाड़ि पै, कछु 'रहीम' का जानि ॥६६॥

शब्दार्थ—चरन=पाँव। हियौ=हृदय।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि भक्त यदि भगवान् के चरणों को अपने हाथों से या मस्तक से स्पर्श कर लेता है तो भी भगवान् उसका साथ नहीं छोड़ते, उसका तो कहना ही क्या जो भगवान् को अपने हृदय से स्पर्श कर ले अर्थात् अपनी हार्दिक श्रद्धा के द्वारा भगवान् के हृदय में स्थान बना ले। ऐसी दशा में भगवान् भक्त को कैसे छोड़ सकते हैं अर्थात् हृदय से भगवान् का स्मरण करने पर भगवान् भक्त को कभी नहीं छोड़ते। वे सदा उसे अपनी शरण ही में रखते हैं।

जो 'रहीम' गति दीप की, सुत सपूत की होइ।
बड़े उजेरो तेहि रहै, गये अन्धेरो होइ ॥७०॥

शब्दार्थ—गति=अवस्था। दीप=दिया, दीपक।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जो दीपक की दशा होती है वही कुल में सुपुत्र की होती है, क्योंकि जब तक दीपक और सुपुत्र घर में रहते हैं तब तक तो प्रकाश रहता है और जब यह घर से चले जाते हैं तो अन्धकार हो जाता है।

'रहिमन' मैं या पेट सौं, बहुत कहेउँ समुझाइ।
जो तू अनखायै रहै, कब कोऊ अनखाइ ॥७१॥

शब्दार्थ—अनखायै=बिना खाये। अनखाइ=झुँझलाना, क्रुद्ध होना।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि मैंने इस पेट को बहुत समझा कर

कहा कि यदि तू बिना खाये रह जाय तो तुझ पर दूसरा कोई क्यों नाराज़ हो। इस पापी पेट के कारण ही मनुष्य को दूसरों का क्रोध भी सहना पड़ता है।

घर डर गुरु डर वंस डर, डर लज्जा डर मान।
डर जेहि के जिय में बसे, तिन पाया 'रहिमान' ॥७२॥

शब्दार्थ—रहिमान=प्रभु।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं जिसके हृदय में अपने घर वालों का भय है, वंश और जाति वालों का भय है, सदा अपनी लाज और मान-मर्यादा को बचाने का भय रहता है, वास्तव में वही भगवान् को प्राप्त कर सकता है। भाव यह कि जो मनुष्य सदा इस बात का ध्यान रखता है कि मैं ऐसी कोई बुरी बात न करूँ जिससे मेरे घर वाले, कुल वाले या जाति वाले नाराज़ हो जायँ या उनकी बदनामी हो वही प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

तनु 'रहीम' है कर्मबस, मन राखो वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यौं, खेंचत गुन के जोर ॥७६॥

शब्दार्थ—कर्मबस=कर्मों के वश। गुन=रस्सी।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि शरीर तो कर्मों के अधीन है इसलिए अपने मन को भी उसी ओर लगाये रखो जैसे नावक रस्सी के ज़ोर से पानी में नाव को प्रवाह के विरुद्ध भी खेंच कर ले जाते हैं। (नदी का बहाव नीचे की ओर जा रहा हो और नाव को ऊपर ले जाना पड़े तो उसके रस्सी बाँध दी जाती है और किनारे पर बैल या ऊँट उसे खींच कर ले जाते हैं।)

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह 'रहीम' अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसे परोस ॥७४॥

शब्दार्थ—कुसंग=बुरी संगति। महिमा=बड़ाई।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हमें इसी बात का बड़ा दुख है कि कई मनुष्य बुरी संगति में रह कर भी अपना कल्याण चाहते हैं अर्थात् जो मनुष्य बुरी संगति में रहेगा उसका कभी कल्याण नहीं होगा। जैसे कि रावण के समीप रहने के कारण अपार समुद्र भी बाँधा गया। उसकी महिमा कम हो गई। भाव यह कि बुरों के साथ रहने से कुछ न कुछ अवश्य बुरा फल मिलता है।

'रहिमन' धागा प्रेम को, मति तोरी चटकाई।
टूटे ते फिरि ना मिले, मिलै गाँठि पर जाई ॥७५॥

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि प्रेम के धागे को एकदम चटका के मत तोड़ डालो क्योंकि यदि इसे इस प्रकार सहसा तोड़ डालोगे तो यह फिर नहीं जुड़ सकेगा। और यदि किसी प्रकार जुड़ भी गया तो गाँठ अवश्य पड़ेगी। मन में पहले जैसा प्रेम कभी न रहेगा।

'रहिमन' रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस।
मीठे बोलौ नै चलौ, सबै तुम्हारो देस ॥७६॥

शब्दार्थ—रिस=क्रोध। नै चलौ=नम्र होकर चलो।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि क्रोध को छोड़ कर ग़रीबी का वेश धारण कर लो। मधुर वचन बोलो। नम्रतापूर्वक चलो या व्यवहार करो। इस प्रकार के आचरण से सारा संसार ही तुम्हारा हो जायगा। भाव यह कि नम्रता से तुम सारे संसार को अपने अधीन कर सकते हो।

जो 'रहीम' होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कौधौं केहि मानतो, आप बढ़ाई साथ ॥७७॥

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि भगवान् की गति मनुष्य के अपने हाथ में होती तो इस संसार में कौन किसका मान करता। सब

अपनी-अपनी बड़ाई आप ही किया करते, कोई किसी को न पूछता।

सदा नगारो कूच कर, बाजत आठो याम।
'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥७८॥

शब्दार्थ—कूच=प्रस्थान (यहाँ पर इसका अर्थ संसार से प्रस्थान है) याम=पहर (३ घण्टे)। को=कौन।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि सदा आठों पहर इस संसार से विदा होने का—मौत का—नगारा बजता रहता है। बात तो यह है कि संसार में आकर भला किसने यहाँ अपना स्थायी निवास बनाया है अर्थात् कोई भी तो यहाँ सदा नहीं रह सका। भाव यह कि मनुष्य के सिर पर सदा मृत्यु की छाया मँडराती रहती है, अतः उसे सदा शुभ कर्म करने चाहिएँ।

समय परे ओछे बचन, सब के सहउँ 'रहीम'।
सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे गहि भीम ॥७९॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। गहे=पकड़े।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि समय देखकर सब लोगों के बुरे वचन भी सह लो। जैसे दुःशासन ने द्रौपदी का भरी सभा में वस्त्र खींच लिया; पर भीम गदा को हाथ में पकड़े रहकर भी चुपचाप ही बैठे रहे और उन दुष्टों को दण्ड देने के लिए कुछ भी चेष्टा नहीं की। भाव यह कि समय पर धैर्य के साथ काम लेना चाहिए।

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछलो हेत।
घटत-घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥८०॥

शब्दार्थ—हेत=प्रेम। कर=हाथ।

भावार्थ—दुष्ट पुरुषों का प्रेम सदा एक-सा नहीं रहता। कुछ समय बीतने के पश्चात् उनका न तो पहले जैसा प्रेम ही रहता है और न वैसी

रीति या स्वागत-सत्कार की भावना ही रहती है। जैसे हाथ की मुट्ठी में ली गई रेत धीरे-धीरे हाथ से निकल कर घट जाती है वैसे ही दुष्टों का प्रेम भी धीरे-धीरे घट जाता है।

दोहा दीरघ अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट-कुण्डली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥८१॥

शब्दार्थ—दीरघ=बड़ा। आखर=अक्षर। आहिं=हैं या आते हैं। कुण्डली=गोल चक्कर। सिमिटि=इकट्ठा होकर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि दोहे में अक्षर तो बहुत कम होते हैं पर उसका अर्थ बहुत बड़ा होता है, जैसे कि नट एक छोटे से गोल घेरे में से इकट्ठा होकर, कूद कर निकल जाता है। जैसे इतना बड़ा आदमी छोटे से छिद्र में से निकल जाता है वैसे ही छोटे दोहे में भी बड़ा भारी अर्थ समाया रहता है। भाव यह कि रहीम जी के दोहे देखने में तो छोटे हैं पर इनका अर्थ बड़ा गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है।

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु 'रहीम' पहिचानि ॥८२॥

शब्दार्थ—दीन=ग़रीब। उर=हृदय।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े आदमी ग़रीबों के दुःख की बात सुनकर अपने हृदय में उनके प्रति दयालु हो जाते हैं। जैसे कि ग्राह के द्वारा पानी में खींचे जा रहे हाथी और भगवान् विष्णु की भला पहले कौन-सी पहचान थी जो वे उसकी पुकार सुनकर उसकी रक्षा के लिए सहसा दौड़ पड़े। भाव यह कि महापुरुष वे ही हैं जो दीन-दुखियों की पुकार सुनकर उनके दुःख दूर करने को प्रस्तुत रहें।

पुरुष तो पूजैं धोहरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहु 'रहीम' कैसे बने, भैंस-बैल को साथ ॥८३॥

शब्दार्थ—द्योहरा=देवालय। तिय=स्त्री। रघुनाथ=रामचन्द्र।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बहुत से घरों में स्त्रियाँ कुछ और ही विचार रखती हैं, पुरुष कुछ और ही। जैसे कि पुरुष तो देवालय में जाकर भगवान् शिव की पूजा करते हैं और उनकी स्त्रियाँ रामचन्द्र जी की पूजा करती हैं। इसी प्रकार भैंस तथा बैल का साथ कैसे निभ सकता है? भाव यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों को एक ही विचारों का होना चाहिए।

नैन सलोने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, मीठे ऊपर लौन ॥८४॥

शब्दार्थ—सलोने=नमकीन, सुन्दर। अधर=होठ। मधु=मीठे।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि आँखें सलोनी अर्थात् नमकीन या सुन्दर हैं और ओठ मधुर हैं। इन दोनों में से कौन किससे कम है। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर उत्कृष्ट हैं। जैसे मीठी वस्तु खाने के बाद नमकीन चीज़ अच्छी लगती है तथा नमकीन वस्तु खाने के बाद मीठी अच्छी लगती है।

धन थोरो इज्जति बड़ी, कहु 'रहीम' की बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथरन माँहिं समात ॥८५॥

शब्दार्थ—थोरो=थोड़ा, कम। इज्जति=इज्जत, मान। कुलबधू=सती-साध्वी बहू। चिथरन=चिथड़े, फटे-पुराने कपड़े।

भावार्थ—धन तो थोड़ा है पर इज़्ज़त बड़ी है। रहीम की ऐसी ही दशा है। जैसे एक भले कुल की सती-साध्वी कुल-वधू फटे-पुराने चिथड़े क्यों न पहने हो फिर भी उसका सब आदर ही करते हैं। वैसे ही मेरे पास अब चाहे पैसे नहीं रहे तो भी लोग मेरा सम्मान करते हैं।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि 'रहीम' पर-काज-हित, सम्पति सँचहि सुजान ॥८६॥

शब्दार्थ—**तरुवर**=वृक्ष। **सरवर**=तालाब। **पर-काज-हित**=दूसरे के काम के लिए। **संचहि**=इकट्ठी करते हैं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते हैं, नदियाँ अपना पानी आप नहीं पीती हैं। बात यह है कि सज्जन दूसरों के काम में आने के लिए ही सम्पत्ति इकट्ठी किया करते हैं। भाव यह है कि श्रेष्ठ पुरुष यदि धन इकट्ठा भी करते हैं तो वे उस धन का प्रयोग परोपकार के कार्यों में कर देते हैं।

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ।
उमँड़ि चलै जल पार तैं, जो 'रहीम' बढ़ि जाइ ॥८७॥

शब्दार्थ—**प्रमान**=हिसाब। **उमँड़ि चलै**=उमड़ कर बह निकलता है। **पार**=पाल, नदी का बाँध।

भावार्थ—मनुष्य को अपना निर्वाह ऐसे ही तरीके से करना चाहिए कि जिससे ग़रीबी और अमीरी में एक-सा रह सके। यदि कभी सम्पत्ति के प्राप्त हो जाने पर तुम अपनी चादर से बाहर पाँव फैला लोगे तो वही दशा हो जायगी जैसे वर्षा ऋतु में तालाबों में पानी बहुत अधिक आ जाने पर वह पानी तालाबों के बाँध के ऊपर से निकल जाता है। भाव यह है कि मनुष्य को अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए कि वह सुख और दुःख—दोनों ही अवस्थाओं में समान हो।

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अन्धु।
भली विचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु ॥८८॥

शब्दार्थ—**दिव्य**=अलौकिक। **दीनता**=ग़रीबी। **का जानै**=क्या जाने। **अन्धु**=अन्धा। **दीनबन्धु**=दीनों के बन्धु भगवान्।

भावार्थ—यह अन्धा संसार भला गरीबी के अलौकिक आनन्द को कैसे समझ सकता है? वास्तव में तो वह ग़रीबी ही अच्छी है क्योंकि

ग़रीब मनुष्य का कोई बन्धु नहीं होता। पर दीनों के बन्धु भगवान् उसके रक्षक होते हैं। भाव यह है कि ग़रीबी बड़ी अच्छी है; क्योंकि चाहे ग़रीब का कोई संसारी मनुष्य रक्षक नहीं होता पर प्रभु अवश्य उसके रक्षक होते हैं।

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरैं रहीम न धीर।
कही सुनैं सुनि-सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर ॥८६॥

शब्दार्थ—नर=मनुष्य। हाँसी=हँसी। धीर=धीरज।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस संसार के लोग दूसरों के दुःख-दर्द की बातें सुन कर उन्हें धैर्य तो बँधाना दूर रहा उलटे उनकी हँसी उड़ाते हैं। पर दूसरों के दुःख को सुनने और सुन कर दुःख के नाश का उपाय करने वाले तो भगवान् ही हैं।

बिपति भये धन ना रहै, होइ जो लाख करोर।
नभ-तारे छिपि जात हैं, जिमि 'रहीम' भे भोर ॥६०॥

शब्दार्थ—करोर=करोड़। नभ=आकाश। भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—चाहे मनुष्य के पास लाखों करोड़ों रुपये क्यों न हों जब उस पर विपत्ति या संकट आता है तो उसके पास वह धन नहीं रह सकता। किसी न किसी प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जैसे कि रात्रि में चाहे अनन्त तारे चमका करें पर प्रातःकाल होते ही सब छिप जाते हैं।

यों 'रहीम' दुख सुख सहत, बड़े लोग सहि साँति।
उदत चन्द्र जेहिं भाँति सों, अथवत वाही भाँति ॥६१॥

शब्दार्थ—उदत=उदित होता हुआ, चढ़ता हुआ। साँति=शांति। सहि=सहते हैं। अथवत=अस्त होता है, छिप जाता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े लोग सुख और दुःख दोनों को इस प्रकार बड़ी शान्ति से सह लेते हैं जैसे कि चन्द्रमा जिस आनन्द

के साथ बढ़ता है उसी आनन्द के साथ छिप भी जाता है। चन्द्रमा को उदय होते समय न हर्ष होता है और न अस्त होते समय दुःख ही होता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि जब उसके पास धन आये तब ऐसा न हो जाय कि वह फूला ही न समाये और जब उसका धन नष्ट हो जाय तब दुखी भी न हो।

मूढ़-मण्डली में सुजन, ठहरत नाहिं बिसेखि।
स्याम कचन में स्वेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि ॥६२॥

शब्दार्थ—**मूढ़**=मूर्ख। **मण्डली**=सभा, समूह। **बिसेखि**=विशेष, अधिक। **कचन**=बाल। **स्वेत**=श्वेत, सफेद।

भावार्थ—मूर्खों की मंडली में समझदार लोग उसी प्रकार अधिक देर नहीं ठहरते जैसे कि काले बालों में सफ़ेद बाल को देखते ही लोग उखाड़ डालते हैं।

'रहिमन' ओछे नरन ते, तजौ बैर औ' प्रीति।
चाटे काटे स्वान के, दुहूँ भाँति बिपरीति ॥६३॥

शब्दार्थ—**तजौ**=छोड़ दो। **बैर**=शत्रुता। **स्वान**=कुत्ता। **दुहूँ भाँति**=दोनों प्रकार से। **बिपरीति**=उलटा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि ओछे मनुष्यों के साथ प्रेम एवं शत्रुता दोनों ही नहीं करनी चाहिएँ, जैसे कि कुत्ता यदि प्रेम में आकर मनुष्य के शरीर को चाटने लगे तो अपवित्र कर देगा और यदि क्रोध में आकर काट खाये तो दुःख होगा ही।

यद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवन्त सर ताल।
'रहिमन' एकै मानसर, मनसा रमत मराल ॥६४॥

शब्दार्थ—**अवनि**=पृथ्वी। **अनेक**=बहुत से। **तोयवन्त**=जल वाले। **मनसा**=मन। **रमत**=लगता है। **मराल**=हंस।

भावार्थ—रहीम जो कहते हैं कि यद्यपि यों तो इस पृथ्वी पर बहुत से तालाब व तलैया हैं पर हंस का मन तो केवल मानसरोवर में ही लगता है। भाव यह है कि गुणज्ञ व्यक्ति विद्वानों के पास रहकर ही प्रसन्न होते हैं।

मानसरोवर ही मिलै, हंसनि मुकता भोग।
सफरिन भरे 'रहीम' सर, विपुल बलाकनि जोग ॥६५॥

शब्दार्थ—मुकता=मोती। सफरिन=मछलियाँ। विपुल=बहुत। बलाकनि=बगलों की पंक्तियाँ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हंसों को मोतियों का भोजन तो मानसरोवर में ही मिल सकता है। इसके विपरीत मछलियों से भरे हुए बहुत से तालाब तो बगलों के लिए ही हैं। भाव यह है कि विद्वानों का मन विद्वानों में ही लगता है, मूर्ख लोग भले ही मूर्खों में प्रसन्न रहें।

बिहारी

परिचय

जन्म-संवत् १६६०   मृत्यु-संवत् १७२०

सर्वोत्कृष्ट शृंगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। युवावस्था में ये कुछ वर्षों तक राजा मिर्जा जयसिंह के आश्रय में रहे। किंवदन्ती है कि राजा जयसिंह अपनी एक नवविवाहिता वधू के प्रेम में इतने आसक्त थे कि उन्होंने दरबार में आना छोड़ दिया और सभी राज्य-कार्यों से मुँह मोड़ लिया था। अनेक प्रयत्न किये गये, पर कुछ न बन सका तो बिहारी ने नीचे का एक दोहा—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

लिख कर अन्दर भेज दिया तो राजा दौड़े-दौड़े बाहर आये। उन्होंने बिहारी को गले से लगा लिया और पुनः राज्य-कार्यों में दत्तचित्त हो गये।

इन्होंने जो दोहे लिखे हैं वे नीति, शृंगार और आध्यात्मिकता इन तीन रूपों में बाँटे जा सकते हैं। इनकी संख्या कुल सात सौ है। परन्तु फिर भी जितनी ख्याति इनको हुई है और किसी की नहीं। बिहारी की कविता में ऊहा और चमत्कार का प्रयोग है परन्तु गूढ़ता और गम्भीरता में भी वे कम नहीं हैं।

इनका काव्य मुक्तक है। मुक्तक-रचना को प्रबन्धकाव्य से क्लिष्ट माना जाता है। बिहारी का काव्य मुक्तक-लेखकों के लिए आदर्श है क्योंकि उसके सभी आवश्यक गुण इसमें मिलते हैं। उनके काव्य में सरसता तथा वाग्वैदग्ध्य दोनों ही बातें हैं। एक ही पद्य में अनेक भावों

का समावेश और रस का सन्निवेश कर कवि ने लोकोत्तर चमत्कार प्रकट किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी कवि का यश उनकी रचनाओं के परिमाण से न होकर उसके गुणों से देखा जा सकता है, बिहारी की रचना इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। किसी की निम्न उक्ति उनके दोहों के लिए बिलकुल उपयुक्त बैठती है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोरे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

और भी कहा है—

ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि बिसाल।
सब की भूषन सतसई, रची बिहारीलाल॥

दोहे

सार और आलोचना

आपकी कविता शृंगार का पुट लिये हुए कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम की प्रकाशिका है। सम्पत्ति के बढ़ने से मनुष्य का मन भी बढ़ता जाता है। सम्पत्ति के घट जाने से मनुष्य का मन भी छोटा होता चला जाता है इत्यादि भावनाओं ने संसार का सजग चित्र खींच दिखलाया है। रत्न की परीक्षा जौहरी ही कर सकता हैं, इस भाव को "चले जाइ, ह्याँ को करै" इत्यादि कविता में खूब समझाया गया है।

आप शृंगार रस के अद्वितीय कवि होते हुए अन्य रसों के चित्रण में भी सिद्धहस्त कहलाये। "चिरजीवौ जोरी जुरै" में राधा को बैल की बहन और कृष्ण को बैल का भाई बतला कर कितनी स्वभाव समता का चित्रण किया है। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। बिहारी के पाण्डित्य की छाप हिन्दी-साहित्य में सदा अमर रहेगी, इनकी केवल एक ही कृति 'बिहारी-सतसई' ने इसका दिग्दर्शन करा दिया है।

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटिहै वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥१॥

शब्दार्थ—**वृषभानुजा**=वृषभानु की पुत्री राधिका और वृषभ-बैल की अनुजा बहिन गौ। **हलधर**=हल को चलाने वाला बैल और हल शस्त्र को चलाने वाले बलदेव। **बीर**=भाई। **घटि**=कम। **गँभीर**=गहरा।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल जी कहते हैं कि—यह जोड़ी (राधा-कृष्ण की) चिरकाल तक बनी रहे। इनका गम्भीर प्रेम भला क्यों न चिरस्थायी होगा ? अवश्य होना ही चाहिए। इनमें भला कौन कम है ? कोई भी नहीं। क्योंकि राधिका तो वृषभानुजा (वृषभानु की पुत्री या

बैल की बहिन गौ) है और इधर श्रीकृष्ण भी हलधर के वीर (बलदेव के अथवा बैल के भाई) हैं।

ज्यों ह्वै हौं, त्यों होऊँगो, हौं हरि, अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है, मौ तारिबौ गोपाल ॥२॥

शब्दार्थ—हठु=हठ। कठिनु=कठिन। तारिबौ=उद्धार। ह्वै-हौं=होऊँ या हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मैं जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा। हे गोपाल! मेरा उद्धार करना बड़ा कठिन है, अतः मेरे उद्धार के लिए आप अधिक हठ न करें। क्योंकि लाख प्रयत्न करने पर भी मेरी बुरी आदतें छूटेंगी नहीं और आप मेरा उद्धार नहीं कर सकेंगे।

अपने अपने मत लगै, बादि मचावत सोरु।
ज्यों ज्यों सबकौं सेइबौं, एकै नन्दकिसोरु ॥३॥

शब्दार्थ—मत लगै=मतों के लिए। बादि=व्यर्थ। सोरु=शोर। नन्दकिसोरु=कृष्ण भगवान्। सेइबों=सेवा की जाती है।

भावार्थ—सब लोग अपने-अपने मत का प्रचार करने के लिए व्यर्थ ही में शोर मचाते हैं। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो सभी लोग किसी न किसी प्रकार उस एक नन्दकिशोर (श्रीकृष्ण जी) परब्रह्म ही की उपासना करते हैं। भाव यह है कि कोई शिव, कोई विष्णु, कोई देवी, कोई गणेश आदि अपने-अपने इष्टदेवों की उपासना करते हैं, पर इन सब रूपों में वे एक परब्रह्म श्रीकृष्ण ही की पूजा कर रहे हैं।

तो, बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर।
जो तुम नीकै कै लख्यो, मौ करनी की ओर ॥४॥

शब्दार्थ—बलियै=बलिहारी। भलियै बनी=भला हो, उद्धार

हो सके। नीकैं कै=अच्छी प्रकार। लख्यो=देखो। करनी=करतूत।

भावार्थ—हे नागर—चतुर नन्दकिशोर! यदि आप मेरी करतूतों की ओर भी उदारतापूर्वक देखें तो मेरा भला हो सकता है। अर्थात् मेरे कर्म तो अच्छे नहीं हैं कि मेरा कल्याण हो सके पर यदि आप मेरे कर्मों का विचार न करके मेरे प्रति उदारता दिखायें तो भले ही मेरा उद्धार हो सकता है। इसलिए आप मेरे दुर्गुणों का ध्यान न कर मेरा उद्धार कर दीजिए।

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥५॥

शब्दार्थ—भवबाधा=सांसारिक दुःख। हरौ=दूर करो। नागरि=चतुर। सोइ=वह। स्यामु=श्रीकृष्ण या दुःख, पाप। हरित दुति=हरी कान्ति वाला; हरी-भरी प्रसन्न कान्ति वाला, नष्ट हुई कान्ति वाला। झाँईं=परछाईं। तन=शरीर। परै=पड़ते ही।

भावार्थ—जिसके शरीर की झलक पड़ते ही श्याम श्रीकृष्ण हरित कान्ति वाले हो जाते हैं वह चतुर राधिका मेरे सांसारिक दुःखों को दूर करे। यहाँ पर 'स्यामु' व 'हरित-दुति' शब्द श्लिष्ट और अत्यन्त मार्मिक रहस्य से भरे हुए हैं। इनके निम्न चार अर्थ प्रसिद्ध हैं:—

(१) कृष्ण हरे रंग की कान्ति वाले हो जाते हैं। तप्त सुवर्णाभगौर (पीत) राधा की कान्ति की झलक पड़ते ही श्रीकृष्ण की श्याम नील कान्ति का हरा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। क्योंकि पीले और नीले के संयोग से ही हरा रंग बनता है।

(२) कृष्ण हरित अर्थात् हरी-भरी प्रसन्न कान्ति वाले हो जाते हैं—राधा की झलक पड़ते ही प्रभु प्रसन्नता से नाच उठते है।

(३) राधा के सौन्दर्य की कान्ति के समक्ष अनन्त सौंदर्यशाली श्रीकृष्ण की छटा भी हरित—अपहृत अर्थात् नष्ट सी हो जाती है—

राधिका के सौन्दर्य के सामने श्रीकृष्ण की सुन्दरता भी तुच्छ प्रतीत होती है।

(४) स्यामु, अघ, पाप, दुःख (पाप और दुःखों को काला कहा जाता है) नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् राधा के दर्शन मात्र से भक्तों के सब पाप और दुःख नष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त चारों अर्थों से यह ध्वनि निकलती है कि जो राधा अनन्त कोटि ब्रह्मांड के नायक श्रीकृष्ण को भी प्रसन्न कर सकती है या उनका भी रंग बदल सकती है या उनकी शोभा अथवा महिमा भी जिनके सामने तुच्छ प्रतीत होती है—वह उनसे भी बढ़कर है, वह राधिका मेरे सांसारिक दुःख को अवश्य दूर कर सकती है, उसे मेरे उद्धार करने में देर या श्रम ही क्या लगेगा!

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होय ॥६॥

शब्दार्थ—अनुरागी=प्रेमी। गति=दशा, अवस्था। बूड़ै=डूबता। उज्जलु=उज्ज्वल। स्याम=काला।

भावार्थ—इस कृष्ण के प्रेम में लीन चित्त की गति को कोई समझ नहीं सकता, क्योंकि यह ज्यों-ज्यों श्याम के रंग में डूबता है त्यों-त्यों काले होने के स्थान पर उज्ज्वल होता जाता है। यही इसकी समझ में न आने वाली बात है कि श्याम रंग में डूब कर श्याम होने के स्थान पर उज्ज्वल होता है। श्याम का अर्थ कृष्ण करने से इस विरोध का परिहार हो जाता है। श्रीकृष्ण के प्रेम में रंगे मन का निर्मल होना स्वाभाविक ही है।

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ ॥७॥

शब्दार्थ—मोहन मूरति=मोहिनी मूर्ति। अति=बड़ी। अद्भुत=आश्चर्यजनक। सुचित=शुद्ध हृदय। प्रतिबिम्बित=झलकता हुआ।

भावार्थ—कृष्ण की मन को मोहित कर देने वाली मूर्ति की गति ड़ी अद्भुत है, क्योंकि वह रहती तो शुद्ध हृदय के अन्दर है, फिर भी ह वाहर सारे संसार में प्रतिबिम्बित-सी दिखाई देती है। भाव यह कि गवान् भक्तों के हृदय में रहते हुए भी सृष्टि के कण-कण में समाये

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति विदारनहार ।।८।।

शब्दार्थ—संग्रहौ=संग्रह करे। कोटिक=करोड़ों। यदुपति=ीकृष्ण। बिपति-बिदारनहार=दुःखों को दूर करने वाले।

भावार्थ—कवि कहता है कि कोई करोड़ों रुपयों का संग्रह करे और हज़ारों-लाखों का, किन्तु मेरी सम्पत्ति तो विपत्ति को नष्ट करने वाले ीकृष्ण ही हैं। इसलिए मुझे किसी दूसरे धन की आवश्यकता नहीं।

कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु, गनो न गोपीनाथ ।।९।।

शब्दार्थ—पतितनु=पापियों। गुन—गुण। औगुन=अवगुण। ननु=समूह। गनो=समझो। गोपीनाथ=श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हे भगवन्! अपने हृदय में मेरे प्रति ऐसा ही विचार ीजिए कि जैसा विचार और पापियों का उद्धार करते समय किया था। गोपीनाथ! मेरे गुण और अवगुणों के समूह की ओर ध्यान न दीजिए अब मेरा उद्धार कर दीजिए। भाव यह कि जिस प्रकार आपने दूसरे ापियों के गुण-दोषों की ओर ध्यान दिये बिना उनका उद्धार कर दिया उसी प्रकार मेरा भी कर दीजिए।

हरि, कीजति बिनती यहै, तुमसों बार हजार।
जिहिं-तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रहौं दरबार ।।१०।।

शब्दार्थ—**बिनती**=प्रार्थना। **कीजति**=की जाती है। **परचौ रहौं**=पड़ा रहूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मैं तुम से हज़ार बार प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जिस किसी तरह अपने द्वार पर पड़ा रहने दो। मैं आप से और कुछ नहीं चाहता, केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने द्वार पर अपनी शरण में ले लीजिए।

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचो नाचै वृथा, साँचै राँचै राम॥११॥

शब्दार्थ—**सरै**=बनेगा। **काँचो**=कच्चा। **वृथा**=व्यर्थ। **साँचै**=सच्चा। **राँचै**=प्रसन्न।

भावार्थ—जप, माला, छापा, तिलक आदि धर्म के बाह्याडम्बरों से कुछ काम न चलेगा, जब तक मन कच्चा है तब तक यह सभी व्यर्थ है। भगवान् तो सचाई से प्रसन्न होते हैं, बाहरी दिखावों से कुछ लाभ नहीं होगा। अतः बाहरी दिखावे को छोड़ कर मन को पवित्र करना चाहिए।

जगतु जनातौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यों आँखिन सबु देखियै, आँख न देखी जाहिं॥१२॥

शब्दार्थ—**जिहिं**=जिसने। **जनायौ**=उत्पन्न किया। **सकलु**=सम्पूर्ण, सारा।

भावार्थ—जिस प्रभु ने सारे संसार को बनाया है, मनुष्य उसे ठीक उसी प्रकार नहीं जान पाता, जैसे—जो आँखें सारे संसार को देखती हैं, मनुष्य अपनी उन आँखों को स्वयं नहीं देख सकता। भाव यह कि संसार का निर्माता वह प्रभु सर्वव्यापक होता हुआ भी स्थूल आँखों से दिखाई नहीं दे सकता।

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साइहिं न भूलि।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूलि ॥१३॥

शब्दार्थ—दीरघ=लम्बे। साईंहि=प्रभु को। दई दई=दैव दैव, भाग्य भाग्य, हे भगवान्। कबूलि=स्वीकार कर ले।

भावार्थ—हे मनुष्य, तू दुःख में लम्बी-लम्बी आहें मत भर और सुख में अपने प्रभु को मत भूल जा। तू दैव-दैव अथवा भाग्य-भाग्य या 'हे भगवान्, हे भगवान्' क्यों पुकारता है, भगवान् ने जो दे दिया उसे ही स्वीकार कर अर्थात् मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में सन्तुष्ट रहना चाहिए। दुःख में घबराना नहीं चाहिए और सुख-सम्पत्ति के दिनों में अभिमान में भगवान् को भूलना नहीं चाहिए।

बंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ!
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥१४॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब। तारयौ=उद्धार किया। तूठे=प्रसन्न। बिरद=यश, उपाधि।

भावार्थ—हे प्रभो! आज तक आप किस गरीब के हितैषी या बन्धु हुए और आपने किसका उद्धार किया है। आप 'पतितपावन' की झूठी ही उपाधि प्राप्त कर अपने आप फूले फिरते हैं। वास्तव में आपने किसी भी पतित को पावन नहीं बनाया है। (मैं तो आप को तब पतितपावन समझूँ जब आप मेरा उद्धार कर दें। यह भक्त की भगवान् के प्रति व्यंग्योक्ति है।)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ ॥१५॥

शब्दार्थ—टेरतु=पुकारता हूँ। सहाइ=सहायक। जगत-गुरु=जगत् के गुरु। जग-बाई=जगत् की—दुनिया की हवा।

भावार्थ—कवि अपने उद्धार के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवन् ! मैं न जाने कब से दीन बन कर आप को पुकार रहा हूँ। पर आप मेरी सहायता नहीं करते। हे जगत् के नायक, जगत् के गुरु ! ऐसा प्रतीत होता है कि आप को भी आजकल संसार की हवा लग गई है। 'दुनिया की हवा लगना' मुहावरा है, जिसका अर्थ चालाक हो जाना है ! भाव यह है कि भगवान् भी पहले भोले-भाले थे जो भक्तों का तत्काल उद्धार कर देते थे, पर अब चालाक हो गये दीखते हैं, जो इतनी देर लगा रहे हैं।

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥१६॥

शब्दार्थ—**सीस**=सिर। **कटि**=कमर। **काछनी**=कछनी। **कर**=हाथ। **उर**=हृदय। **माल**=माला। **बानक**=वेश। **बसौ**=रहो।

भावार्थ—सिर पर मोर मुकुट, कमर में कछनी, हाथ में बंशी तथा हृदय पर माला धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्ण सदा मेरे मन में निवास करें।

भजन कह्यौ तातें भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातें कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥१७॥

शब्दार्थ—**भजन**=भजन करने के लिये। **कह्यो**=कहा। **तातैं**=उससे। **भज्यौ**=भागा। **भज्यौ**=भजन किया।

भावार्थ—हे मूर्ख ! तुझे जिस (प्रभु) का भजन करने के लिए कहा गया, तू उससे दूर भागता रहा, उसका तूने एक बार भी भजन नहीं किया, किन्तु जिन (विषय-वासनाओं) से तुझे दूर भागने के लिये कहा गया उनकी तूने उपासना की, उन्हीं में तू सदा लगा रहा।

या भव-पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ।

शब्दार्थ—**भव-पारावार**=संसार रूपी समुद्र। **उलँघि**=लाँघ कर। **तिय-छवि**=स्त्री की सुन्दरता। **छाया-ग्राहिनी**=एक राक्षसी जो समुद्र के ऊपर उड़ते हुए जीवों की छाया को पकड़ कर निगल जाती थी। **ग्रहै**=ग्रस लेती है, पकड़ लेती है।

भावार्थ—इस संसार रूपी समुद्र को लाँघ कर भला कौन पार जा सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जा सकता। क्योंकि स्त्री की सुन्दरता की झलकरूपी छाया-ग्राहिणी उसे बीच ही में आकर पकड़ लेती है और संसार रूपी समुद्र से पार नहीं होने देती।

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटै ग्रह जपु दानु॥१९॥

शब्दार्थ—**बसै**=रहती है। **तन**=शरीर। **सनमानु**=सम्मान। **खोटे**=बुरे। **जपु**=जाप।

भावार्थ—जिनके शरीर में दुष्टता रहती है अर्थात् जो लोग कुटिल और दुष्ट होते हैं, संसार में उन्हीं का मान होता है। सीधे-सादे सज्जनों को कोई पूछता भी नहीं। जैसे शनि आदि दुष्ट ग्रहों के लिए तो सब लोग दान-पुण्य करवाते हैं पर बृहस्पति आदि शुभ ग्रहों को कोई पूछता भी नहीं।

को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखै बड़ी यौं भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु ये फूल॥२०॥

शब्दार्थ—**को**=कौन। **लखै**=देख कर। **दीने दई**=दे दिये।

भावार्थ—बड़े आदमियों की बड़ी भूल को देख कर भी उन्हें वह कौन बता सकता है। देखो भगवान् ने गुलाब की इन कटीली कठोर शाखाओं—टहनियों—पर इतने सुकोमल सुन्दर कुसुम लगा दिये—यह कितनी बड़ी भूल की किन्तु यह भला उनसे कौन बताये।

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ।।२१।।

शब्दार्थ—समै समै=समय समय पर। रुचि=इच्छा।

भावार्थ—संसार में कोई भी वस्तु सुन्दर या असुन्दर नहीं है। समय-समय पर सभी वस्तु सुन्दर या असुन्दर हो जाती हैं। बात यह है कि जिसके मन की जैसी भावना है अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसे कोई वस्तु सुन्दर तो कोई वस्तु असुन्दर प्रतीत होती है।

इहिं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल ।।२२।।

शब्दार्थ—अटक्यौ रहतु=ठहरा हुआ है। अलि—भ्रमर। ह्वैहै=होंगे।

भावार्थ—भौंरा इसी आशा पर पतझड़ में भी गुलाब के पास में घूमता रहता है कि बसन्त ऋतु में इन्हीं काँटों वाली शाखाओं पर फिर वैसे ही कोमल सुन्दर फूल लगेंगे। भाव यह कि अच्छे सेवक विपत्ति में भी स्वामी का साथ इसीलिए नहीं छोड़ते कि कभी फिर भी अच्छे दिन आयेंगे।

नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ।।२३।।

शब्दार्थ—नीर=जल। जोइ=देखो। जेतौ=जितना। तेतौ=उतना। गति=अवस्था। ह्वै=होकर।

भावार्थ—इस सिद्धान्त को भली भांति समझ लो कि मनुष्य और नल के पानी की दशा एक जैसी होती है; क्योंकि ये दोनों जितने नीचे होकर चलते हैं (मनुष्य जितना ही नम्र होता है और नल का पानी ऊँचे स्थान से जितना ही नीचे आता है) ये दोनों उतना ही ऊँचा उठ जाते हैं।

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल-बल जलु ऊँचै चढ़ै, अन्त नीच को नीचु ॥२४॥

शब्दार्थ—**कोटि**=करोड़ों। **जतन**=प्रयत्न। **प्रकृतिहिं**=प्रकृति में। **बीचु**=अन्तर। **नल-बल**=नल के ज़ोर से।

भावार्थ—कोई करोड़ों यत्न क्यों न करे किन्तु मनुष्य की प्रकृति में अन्तर नहीं पड़ता—उसका स्वभाव नहीं बदलता, जैसे कि पानी नल की सहायता से ऊपर चढ़ जाता है पर अन्त में नीचे का नीचे ही गिरता है।

गुनी गुनी सबकैं कहै, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तें, अरक समान उदोतु ॥२५॥

शब्दार्थ—**निगुनी**=निगु`ण। **तरु**=वृक्ष, पौधा। **अरक**=आक और सूर्य। **उदोतु**=प्रकाश।

भावार्थ—सब लोगों द्वारा किसी निगु`ण को गुणी नाम से पुकार देने पर भी वह वास्तव में गुणवान् नहीं हो सकता जैसे कि (अर्क सूर्य और आक के पौधे दोनों का नाम है) आक के पौधों को अर्क कह देने पर भी उसमें सूर्य के समान प्रकाश थोड़े ही हो सकता है।

मरतु प्यासा पिंजरा, सुआ समै कै फेर।
आदरु दै दै बोलियत, बाइसु बलि की बेर ॥२६॥

शब्दार्थ—**सुआ**=तोता। **समै कै फेर**=समय के बदल जाने पर। **बोलियत**=बुलाते हैं। **बाइसु**=वायस, कौआ। **बलि**=श्राद्ध में कौवे, कुत्ते व गाय को देने के लिए निकाले हुए भोजन को बलि कहते हैं। **बेर**=समय।

भावार्थ—समय के परिवर्तन के कारण तोता तो पिंजरे में पड़ा-पड़ा प्यासा मर रहा है, किन्तु श्राद्ध में बलि खिलाने के लिए कौवों को आदर-पूर्वक बुलाया जा रहा है। भाव यह है कि किसी-किसी समय ऐसी परिस्थिति

उत्पन्न होती है कि गुणवानों को तो कोई पूछता नहीं, वे तो दुःख में दिन बिताते हैं, पर निर्गुण और मूर्ख खूब मौज मनाते हैं।

दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥२७॥

शब्दार्थ—आदरु=आदर। काग=कौआ। जौ लगि=जब तक। सराध पखु=श्राद्धों का पक्ष, आश्विन शुक्ल पक्ष के १५ दिन।

भावार्थ—हे कौवे! तू केवल श्राद्धों के दिनों में दस दिन का आदर पाकर अपनी बड़ाई करवा ले किन्तु स्मरण रख कि श्राद्धपक्ष के बीत जाने पर फिर तुझे कोई नहीं पूछेगा। भाव यह कि मूर्खों का आदर सदा नहीं हो सकता। विद्वानों की सदा पूछ होती है पर मूर्खों की पूछ तो किसी विशेष अवसर पर ही होती है।

अति अगाधु, अति औथरौ, नदी कूप सरु बाइ।
सो ताकौं सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥२८॥

शब्दार्थ—अगाधु=गहरा। औथरौ=उथला। कूप=कूआँ। सर=तालाब। बाइ=बावड़ी। सागरु=समुद्र।

भावार्थ—यद्यपि बहुत से नदी, कुएँ, तालाब, बावड़ी आदि बड़े-बड़े गहरे और उथले पानी के स्थान हैं, पर जिसकी जहाँ प्यास बुझ जाय उसके लिए वही सागर है। भाव यह है कि संसार में भले ही एक से एक बढ़कर बड़े धनवान् क्यों न पड़े हों पर जिससे जिसकी आशा पूरी हो उसके लिए तो वही धनी है।

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु, मन सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत फिरि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥२९॥

शब्दार्थ—संपति=धन-दौलत। सलिलु=जल। सरोजु=कमल बरु=चाहे। समूल=जड़ से। कुम्हिलाइ=कुम्हला जाय।

भावार्थ—सम्पत्ति रूपी जल के बढ़ने पर मन रूपी कमल भी बढ़ जाता है, किन्तु उसके घटने पर मन रूपी कमल घटता नहीं चाहे जड़ से ही कुम्हला क्यों न जाय। धन के बढ़ने पर (यहाँ पुरुषों का) मन उदार हो जाता है।

स्वारथु, सुकृतु न, श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि ॥३०॥

शब्दार्थ—सुकृतु=पुण्य। श्रम=परिश्रम। विहंग=पक्षी। पानि=हाथ। पच्छीनु=पक्षी को।

भावार्थ—हे बाज, तू सोचकर देख कि इसमें न तो तेरा स्वार्थ है न पुण्य ही, अतः दूसरों के हाथ पर चढ़ कर तू पक्षियों को मत मार।

यहाँ पर अन्योक्ति के द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को—जो अपने ही भाइयों पर अत्याचार कर रहा है—उसे अत्याचार करने से रोका जा रहा है, और कहा जा रहा है कि हे भाई, तू दूसरों के इशारे पर अपने देश-वासियों को क्यों सता रहा है, ऐसा करने में न तो तुझे कुछ लाभ ही प्राप्त होगा और न धर्म ही।

कहै यहै श्रुति सम्रत्यौ, कहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहिं, पातक, राजा, रोग ॥३१॥

शब्दार्थ—श्रुति=वेद। सम्रत्यौ=स्मृति ग्रन्थ (मनुस्मृति आदि)। सयाने=चतुर। निसक=निश्शक्त, कमज़ोर। पातक=पाप।

भावार्थ—यही वेद, शास्त्र और चतुर पुरुष भी कहते हैं कि पाप, राजा और रोग ये तीनों केवल निर्बल को दबाते हैं। भाव यह कि बलवान् को कोई कुछ नहीं कहता, कमज़ोर को सब सताते हैं।

जो सिर धरि महिमा मही, लहियति राजा राइ।
प्रगटत जड़ता अवनि पै, सु मुकुट पहिरत पाइ ॥३२॥

शब्दार्थ—अवनि=पृथ्वी, संसार। सु=शोभा।

भावार्थ—जिस मुकुट को सिर पर धारण कर बड़े-बड़े राजा राव संसार में शोभा प्राप्त करते हैं, उसी मुकुट को पावों में पहनकर मूर्ख अपनी मूर्खता ही प्रकट करता है। भाव यह है कि यदि किसी बड़े गुणवान् को कोई किसी छोटे काम पर लगा देवे या उसका अपमान करे तो उस बड़े आदमी की तो कुछ हानि नहीं, उल्टे उसका अपमान करने वाले की ही मूर्खता प्रकट होती है।

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ॥३३॥

शब्दार्थ—हूजै=होवें। गुननु बिनु=योग्यता के बिना। बिरद=उपाधि, नाम का यश। बड़ाई=यश। कनकु=सोना।

भावार्थ—बिना गुण (योग्यता) के नाम का यश प्राप्त कर कोई बड़ा नहीं बन सकता, देखो धतूरे को भी कनक (सोना-अर्थवाला) कहते हैं, किन्तु उससे गहना नहीं बनाया जा सकता। भाव यह है कि केवल बड़ा नाम रख लेने से कोई बड़ा नहीं बन सकता, जैसे कि धतूरे ने अपना नाम तो 'कनक'—जो सोने का भी नाम है—रख लिया पर उससे सोने के समान गहने थोड़े ही बन सकते हैं!

घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचत जाइ।
दियै लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥३४॥

शब्दार्थ—डोलत=भटकते। दीन ह्वै=ग़रीब बन कर। जनु जनु=प्रत्येक आदमी से। जाचत=माँगते हैं। चखन=नेत्र। चसमा=चश्मा। लघु=छोटा आदमी। पुनि=फिर। लखाइ=दिखाई देता है।

भावार्थ—यह लालची मनुष्य दीन बनकर घर-घर भटकते फिरते हैं और जिसको देखते हैं उसी से माँग बैठते हैं। बात तो यह है कि इन

लोगों ने अपने नेत्रों पर लोभ का चश्मा लगा रखा है, इसलिए इन्हें छोटे आदमी भी बड़े दिखाई दे रहे हैं।

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयागु ॥३५॥

शब्दार्थ—तजि—छोड़कर। तन=शरीर। दुति=कान्ति। अनुरागु=प्रेम। केलि=क्रीड़ा, खेल। मग=मार्ग।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल अपने मन को या भक्तों को कहते हैं कि दूसरे सभी तीर्थों में भटकना छोड़कर केवल उन राधा-कृष्ण के शरीर की कान्ति से प्रेम करो, जिनके कारण व्रज-भूमि के क्रीड़ा-कुंजों का पग-पग तीर्थराज प्रयाग बन जाता है। भाव यह है कि प्रयाग में श्वेत जल वाली गंगा, श्याम जल वाली यमुना और लाल रंग की अदृश्य सरस्वती ये तीन नदियाँ आकर मिलती हैं। व्रज के कुंजों के मार्गों में भी राधा की शुभ्र, कृष्ण की श्याम तथा उनके अनुराग की लाल कान्ति मिली रहती है, अतः वे भी तीर्थराज हैं। फिर तीर्थराज को छोड़कर अन्य तीर्थों में क्यों भटका जाय!

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार ॥३६॥

शब्दार्थ—कुसुम=फूल। अलि=भ्रमर। अपत=पत्तों से रहित। कँटीली=कांटों वाली।

भावार्थ—हे भ्रमर! तूने जिन बसन्त के दिनों में इन गुलाब की शाखाओं पर ये सुन्दर फूल देखे थे वे दिन बीत गये। अब तो इन शाखाओं पर पत्तों से रहित केवल काँटों-भरी शाखाएँ ही शेष रह गई हैं। भाव यह कि हे मन! सुसम्पत्ति से पूर्ण आनन्ददायक समय तो बीत गया है अब तो दुःख के दिन ही रह गये हैं।

कितो न गोकुल कुलवधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥३७॥

शब्दार्थ—कितो=कितनी। किहिं=किसने। सिख=शिक्षा। कुल गली=कुल की मर्यादा। कौने=किसने। तजी=छोड़ी। सुर=स्वर, ध्वनि।

भावार्थ—गोकुल में कितनी कुल-वधुएँ नहीं हैं और किसने किसको शिक्षा नहीं दी अर्थात् सभी को सभी शिक्षा देती रहीं (कि उस कृष्ण के कपट-जाल में मत फँस जाना) किन्तु ऐसी कौन-सी कुल-वधू है, जिसने कृष्ण की वंशी के स्वर में तन्मय होकर अपनी कुल-मर्यादा को छोड़ न दिया हो। भाव यह है कि जिस किसी ने भी कृष्ण की वंशी का शब्द सुन लिया वही अपनी सारी कुल-मर्यादा को छोड़ कर उसी को सुनने में लीन हो गई। वंशी की ध्वनि को सुनते ही सबकी लाज-शर्म हवा हो गई।

को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥३८॥

शब्दार्थ—को=कौन। कत=क्यों। कुरंग=मृग। अकुलात=व्याकुल होता है। सुरझि=सुलझकर। भज्यौ चहत=भागना चाहता है।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल कहते हैं कि हे मनुष्य रूपी मृग! तू इतना व्याकुल क्यों हो रहा है। इस संसार रूपी जाल में फँसकर भला कौन छूट सका है अर्थात् कोई भी नहीं छूटा। इससे ज्यों-ज्यों सुलझकर भागने का प्रयत्न किया जाता है त्यों-त्यों उलटा फँसता ही जाता है।

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चित खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि, गनैं लोग उतपातु ॥३९॥

शब्दार्थ—तजै=छोड़ता है। खरौ=बहुत। डरातु=डराता है।

निकलंकु=निष्कलंक। मयंकु=चन्द्रमा। उतपातु=उत्पात, भयसूचक चिह्न।

भावार्थ—यदि कोई बुरा व्यक्ति अपनी बुराई छोड़ भी दे तो भी लोगों का मन उससे डरता ही है। जिस प्रकार निष्कलंक चन्द्रमा को देखकर लोग समझते हैं कि कुछ-न-कुछ उत्पात ही होगा।

चितु दै देखि चकोर त्यौं, तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुनै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख ॥४०॥

शब्दार्थ—चित दै=ध्यान देकर। तीजैं=तीसरे को। चंद-मयूख=चन्द्रमा की किरण। चिनगी=चिन्गारी।

भावार्थ—इस बात को ध्यान देकर देख लो, कि चकोर या तो चिन्गारी ही चबाता है या चन्द्रमा की किरणें ही पीता है। इन दोनों वस्तुओं के सिवा तीसरी किसी वस्तु को वह कभी स्वीकार नहीं करता।

चल्यौ जाइ, ह्याँ को करै, हाथिनु को ब्योपार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुम्हार ॥४१॥

शब्दार्थ—हाथिनु=हाथियों का। जानतु=जानता है। इहिं=इस। पुर=नगर। ओड़=एक जंगली जाति।

भावार्थ—हे हाथियों के व्यापारी! तू यहाँ से चला जा। यहाँ हाथियों का व्यापार क्यों करता है, क्या तू नहीं जानता कि इस गाँव में तो धोबी, ओड़ और कुम्हार ही रहते हैं, जो गधों का व्यापार करते हैं। यहाँ हाथी खरीदने वाला कोई नहीं, सब गधों ही के ग्राहक हैं।

भाव यह है कि यहाँ गुणों का आदर करने वाला कोई नहीं है सब मूर्खों के ही ग्राहक हैं।

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोबन सो कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥४२॥

शब्दार्थ—झहलाने=व्याकुल हुए। एकत=एक ही स्थान पर। अहि=साँप। मयूर=मोर। मृग=हरिण। बाघ=शेर। दाघ=गर्मी। दीरघ=बड़ी। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु।

भावार्थ—साँप, मोर, मृग और बाघ ये परस्पर शत्रु जीव भी गर्मी से व्याकुल होकर एक ही स्थान पर (किसी वृक्ष की छाया में) पड़े हुए हैं। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की भयंकर गर्मी ने मानो सारे संसार को ही तपोवन बना दिया है।

भाव यह कि तपोवन में ऋषियों के प्रभाव से शेर और हरिण आदि परस्पर शत्रु जीव भी अपना वैर-भाव छोड़कर एक साथ रहते हैं, इधर गर्मी के कारण भी ये जीव व्याकुल होकर इतने बेसुध हो गये हैं कि शेर को तो हरिण को खाने का ध्यान नहीं और इधर हरिण को यह पता नहीं कि यहाँ शेर बैठा है वह मुझे खा जायगा सो मैं भाग जाऊँ।

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झंपत, झौंर-झौंर मधु-अंध ॥४३॥

शब्दार्थ—छकि=तृप्त होकर। रसाल=आम। सौरभ=सुगन्धि। ठौर-ठौर=स्थान-स्थान पर। झौंर-झौंर=भ्रमरों के समूह।

भावार्थ—आम की मंजरियों की मधुर सुगन्धि से तृप्त होकर स्थान-स्थान पर झूमते और झकोरे खाते हुए ये मधुर रस पीकर अंधे हुए भौंरों के झुंड के झुंड चले आ रहे हैं।

लटुआ लौं प्रभु-कर गहैं, निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी-कर तैं छुटै, निगुनियै ह्वै जाइ ॥४४॥

शब्दार्थ—लटुवा=लट्टू। लौं=समान। गहैं=पकड़ कर। लपटाइ=लिपेट देते हैं। निगुनी=डोर व गुणों से रहित। कर=हाथ। ह्वै जाइ=हो जाते हैं।

भावार्थ—भगवान् लट्टू के समान निगुण (डोरी तथा विद्या आदि

गुणों से रहित) भक्त को अपने हाथ में लेकर गुण से युक्त कर देते हैं। किन्तु यदि वही भक्त और लट्टू गुण युक्त हो जाने पर भगवान् के हाथ से छूट जाय तो फिर निर्गुण हो जाता है। भाव यह कि मनुष्य जब लट्टू को अपने हाथ में पकड़ता है तो पहले उस पर गुण—डोरी—नहीं लिपटी होती, पर मनुष्य उसे अपने हाथ में लेते ही उसे चलाने के लिए उस पर डोरी लिपेट देता है। उसके पश्चात् डोरी से युक्त होते ही जब लट्टू फिर मनुष्य के हाथ से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ता है तो उस पर लिपटी हुई डोर फिर हट जाती है। ठीक इसी प्रकार निर्गुण भक्त भी भगवान् के हाथों में जाकर सब गुणों से युक्त हो जाता है और उनकी शरण को छोड़ते ही फिर कोरा का कोरा रह जाता है।

लोपे, कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥४५॥

शब्दार्थ—**लोपे**=नष्ट कर देने के लिए। **कोपे**=क्रोध किया। **रोपे**=खड़ा कर दिया। **अकाल**=असमय में ही।

भावार्थ—इन्द्र ने क्रुद्ध होकर ब्रज-भूमि का नाश करने के लिए असमय में ही बड़ा भयंकर प्रलय लाकर खड़ा कर दिया, तब गिरिधारी गोवर्धन-पर्वत को उठाने वाले श्रीकृष्ण ने सब गौ, गोपी और ग्वालों की रक्षा कर ली।

कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग, इहि पाये बौराय ॥४६॥

शब्दार्थ—**कनक**=सोना और धतूरा। **मादकता**=नशा, मस्ती। **अधिकाय**=बढ़ाता है। **उही**=उसे। **जग**=संसार। **इहि**=इसे। **पाये**=पाकर। **बौराय**=पागल हो जाता है।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल कहते हैं कि सोना अर्थात् धन-सम्पत्ति धतूरे से भी सौगुना अधिक नशा चढ़ाता है, क्योंकि धतूरे को

तो जब मनुष्य खाता है तभी पागल होता है, पर सोने या धन-सम्पत्ति को तो पाकर ही मनुष्य पागल हो जाता है। धतूरे को जब तक न खायें तब तक उसका कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु धन के तो मिलते ही मनुष्य अपने आपे में नहीं रहता। इसीलिए कहा गया है कि धन का नशा धतूरे से भी अधिक है।

'कनक' शब्द के दो अर्थ होते हैं—सोना तथा धतूरा। पहले 'कनक' का अर्थ सोना तथा दूसरे 'कनक' शब्द का अर्थ धतूरा है।

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही तें बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥४७॥

शब्दार्थ—पराग=फूलों की सुगन्धित धूलि। **मधुर**=मीठा। **मधु**=फूलों का रस। **विकास**=खिलना। **इहि काल**=इस समय। **अली**=भौंरा। **बँध्यो**=बँध गया। **हवाल**=दशा।

भावार्थ—कहते हैं कि महाकवि बिहारी के आश्रयदाता जयपुर-नरेश मिर्ज़ा राजा जयशाह अपनी नई रानी के प्रेम में इतने तन्मय हो गये थे कि वे राज्य के काम-काज भी भूल बैठे। यहाँ तक की सप्ताहों तक महलों से बाहर भी नहीं निकले। मन्त्री आदि किसी को भी महाराज को समझाने का कोई उपाय न सूझा। तब बिहारी ने उक्त दोहा लिख कर उनके पास महलों में भिजवाया। इस दोहे को पढ़ कर महाराजा बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने राज-काज देखना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही बिहारी को ऐसे ही और दोहे लिखने को कहा। बिहारी ने ऐसे सात सौ दोहे लिखे। प्रत्येक दोहे पर मिर्ज़ा राजा जयशाह ने बिहारी को एक-एक अशर्फी या सोने की मोहर इनाम में दी। इस दोहे का अर्थ इस प्रकार है-

कवि भौंरे को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे भौंरे! अभी इस कली पर न तो सुगंधित पुष्प-धूलि उत्पन्न हुई है और न पुष्प-रस ही उत्पन्न हुआ है। अभी तो यह पूरी तरह खिल भी नहीं पाई। तू इस

अधखिली कली से ही बँध गया तो जब यह पूरी तरह खिल जायगी तो तेरी न जाने क्या दशा हो जायगी। अर्थात् तेरे लिए यह उचित नहीं है कि इस अधखिली कली में ही बँध कर अपने आपको भूल जाय। भौंरे के रूप में यहाँ विलासी मिर्ज़ा राजा जयशाह को सम्बोधित किया गया है और कहा गया है कि उनको रनिवास को छोड़कर राज-काज की देख-भाल करनी चाहिए।

नहिं पावस ऋतुराज यह, तज तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाय हैं, क्यों नव दल फल-फूल॥४८॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षा ऋतु। ऋतुराज=वसन्त ऋतु। तरुवर=वृक्ष। मति=बुद्धि, ख्याल। तज=छोड़ दे। अपत=पत्तों से रहित और मान-मर्यादा से हीन। नव=नया। दल=पत्ता।

भावार्थ—महाकवि बिहारी वृक्ष को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "हे वृक्ष! यह कोई वर्षा-ऋतु नहीं है, यह तो वसन्त-ऋतु है। तू अपने हृदय की इस भूल को दूर कर दे कि यह वर्षा ऋतु होगी। क्योंकि इस वसन्त-ऋतु में जब तक तेरे सारे पुराने पत्ते नहीं झड़ जायँगे, तब तक भला नये पत्ते, फल और फूल तुझे कैसे मिल सकते हैं? भाव यह कि वर्षा-ऋतु में वृक्षों के पुराने पत्ते भी रहते हैं और कुछ नये भी निकल आते हैं। वसन्त-ऋतु से पहले शिशिर-ऋतु में वृक्षों के पुराने सब पत्ते पहले झड़ जाते हैं फिर वसन्त में नये निकलते हैं। इसीलिए कहा गया है कि यह वर्षा-ऋतु नहीं कि जिसमें पुराने पत्तों के रहते हुए नये पत्ते भी निकल आयें। यह तो वसन्त-ऋतु है, जिसमें पुराने सब पत्ते झड़ जाते हैं। वृक्ष के रूप में, सम्राटों के अधीन रहने वाले सामन्त नरेशों को कहा गया है कि सम्राटों के दरबार में जब तक कोई मनुष्य अपनी मान-मर्यादा को तिलाञ्जलि नहीं दे देता तब तक वहाँ से कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। अथवा इसका भाव यह भी हो सकता है कि जब तक मनुष्य

कष्ट सहन नहीं करता तब तक सुख-सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

संगति सुमति न पावहिं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होइ सुगंध ॥४६॥

शब्दार्थ—संगति=अच्छे आदमी का साथ। सुमति=अच्छी बुद्धि। कुमति=बुरी बुद्धि या बुरी बुद्धि वाले। धन्ध=धन्धा, व्यवहार।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल जी कहते हैं कि जो लोग बुरी बुद्धि वालों के संसर्ग में रहते हैं, वे अच्छे लोगों की संगति में आकर भी सद्बुद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे कि हींग को चाहे कपूर जैसे सुगन्धित पदार्थ में मिलाकर क्यों न रखो, पर वह कभी सुगन्धित नहीं होती। भाव यह कि सज्जनों के साथ रहकर भी दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते।

तौ लगु या मन-सदन में, हरि आवैं किहिं बाट।
विकट जुरे जौ लगु निपट, खुलें न कपट कपाट ॥५०॥

शब्दार्थ—तौ लगु=तब तक। या=इस। सदन=महल, घर। मन-सदन=मनरूपी मन्दिर। हरि=भगवान्। बाट=मार्ग, रास्ता। विकट=मज़बूत। जुरे=बन्द हुए। जौ लगु=जब तक। निपट=सर्वथा, बिलकुल। कपाट=किवाड़। कपट-कपाट=कपटरूपी किवाड़।

भावार्थ—कवि कहता है कि तब तक तुम्हारे मनरूपी मन्दिर में भगवान् भला किस रास्ते से आ सकते हैं, जब तक कि उस मन-मन्दिर के बड़ी दृढ़ता से बन्द हुए कपटरूपी किवाड़ खुल नहीं जाते। भाव यह कि यदि मनुष्य अपने हृदयरूपी मन्दिर में भगवान् को बसाकर उनके दर्शन करना चाहता है तो उसे छल-कपट का परित्याग कर देना होगा। जब तक मनुष्य छल-कपट का त्याग नहीं कर देता, तब तक मनुष्य को भगवान् के दर्शन नहीं होते।

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधु नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज समीरु ॥५१॥

शब्दार्थ—**रनित**=शब्द करते हुए, गूँजते हुए। **भृंग**=भौंरे। **घण्टावली**=घण्टियों की पंक्तियाँ। **झरित**=झड़ता हुआ। **दान**=हाथियों के मस्तकों से बहने वाला मद-जल। **मधु**=पुष्प रस। **नीरु**=जल। **मंद मंद**=धीरे-धीरे। **आवतु**=आता है। **चल्यौ**=चलता हुआ। **कुंजरु**=हाथी। **कुंज**=झाड़ियाँ। **समीरु**=वायु।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल वसन्त ऋतु की कुञ्जों में बहने वाली शीतल मन्द वायु का मस्त हाथी के रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह कुञ्जों का वायु रूपी हाथी धीरे-धीरे चला आ रहा है। वसन्त-ऋतु में जो भौंरे गूंज रहे हैं वे ही मानो इस हाथी के घण्टे बज रहे हैं। और जो पुष्प-रस झड़ रहा है वही मानो उस हाथी के सिर का मद-जल बह रहा है। इस प्रकार हाथी में और कुञ्जों में बहती वसन्त की वायु में पूरी-पूरी समता प्राप्त होती है।

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसार पयोधि कौं, हरि नावैं करि नाउ ॥५२॥

शब्दार्थ—**पतवारी**=पतवार, नाव चलाने के चप्पू। **पकरि**=पकड़ कर। **कछ**=कुछ। **उपाउ**=उपाय। **तरि**=तर जा, पार हो जा। **पयोधि**=समुद्र। **संसार-पयोधि**=संसार रूपी समुद्र। **नावैं**=नाम। **नाउ**=नाव।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल संसार के लोगों को संसार-सागर से पार होने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि माला रूपी पतवार को पकड़ लो और भगवान् के नाम को ही नाव बना लो। इस प्रकार संसार-रूपी सागर से पार हो जाओ; क्योंकि संसार-सागर से पार होने का अन्य कोई उपाय नहीं।

यह बिरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि ॥५३॥

शब्दार्थ—**बिरिया**=बेर, अवसर। **करिया**=केवट। **सोधि**=ढूँढ़ ले। **पाहन**=पत्थर। **पाहन-नाव**=पत्थरों की नाव। **जिहिं**=जिसने। **कीने**=कर दिये।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल जी सांसारिक प्राणियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "हे मनुष्य! यह किसी दूसरे छोटे-मोटे केवट से पार होने का अवसर नहीं है। इसलिए तू उस दिव्य केवट या मल्लाह को अपने पार होने के लिए ढूँढ़, जिस भगवान् राम रूपी केवट ने नल और नील के द्वारा समुद्र में फेंके हुए पत्थरों को पानी पर नाव की भांति तैरा कर उन पत्थरों पर से ही बन्दरों को पार करा दिया था। भाव यह है कि संसार सागर से पार करने वाले भगवान् राम ही सर्वश्रेष्ठ केवट हैं। मनुष्य को उनकी ही शरण में जाना चाहिए।

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति।।५४।।

शब्दार्थ—**अधर**=होठ। **धरत**=रखने पर। **हरि**=श्रीकृष्ण। **परत**=पड़ते हैं। **दीठि**=दृष्टि। **पट**=वस्त्र। **जोति**=कान्ति, झलक। **हरित**=हरी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के होठों पर रखी हुई हरे बाँस की वंशी पर उनके होठों की लाल दृष्टि या नेत्रों की श्याम और पीताम्बर की पीली झलक पड़ रही है। इस प्रकार वह वंशी इन्द्रधनुष के समान रंग वाली हो जाती है। भाव यह है कि इन्द्रधनुष में सात रंग होते हैं। कृष्ण के होठों पर रखी हुई वंशी में भी वे रंग स्पष्ट रूप से ही दिखाई देते हैं। जैसे कि हरे बाँस की वंशी में वंशी का अपना हरा रंग तो है ही। होठों की कान्ति पड़ने से लाल भी हो गई। पीताम्बर की कान्ति से पीली हो गई। नेत्रों की श्याम झलक भी पड़ रही है। इस प्रकार हरा, पीला, नीला और लाल ये चार रंग तो प्रत्यक्ष हो ही गये, शेष तीन रंग भी

उन चारों रंगों के मिश्रण से बन जाते हैं। इस प्रकार कृष्ण की वंशी इन्द्र-धनुप के समान सतरंगी हो जाती है।

कर लै सूँघि, सराहि हूँ, रहै सबै गहि मौनु।
गंधी गंध गुलाब की, गँवई गाहकु कौनु ॥५५॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। सराहि=प्रशंसा करके। गहि=ग्रहण कर ली। गन्धी=इत्रादि सुगन्धित पदार्थ बेचने वाला। गन्ध=सुगन्धि। गँवई=छोटा गाँव। गाहकु=ग्राहक, खरीदार।

भावार्थ—हे इत्रादि सुगन्धित पदार्थ बेचने वाले गन्धी! इस छोटे से गाँव में तेरे गुलाब के इत्र का कोई ग्राहक नहीं है। क्योंकि यहाँ तो सभी तेरे इत्र को हाथ में लेते हैं उसे सूँघते हैं, उसकी सब प्रशंसा भी करते हैं और अन्त में चुप हो जाते हैं, खरीदता कोई भी नहीं। भाव यह है कि मूर्ख-मण्डली में कोई भी विद्वानों का आदर नहीं करता। मुँह से प्रशंसा भले ही कर लें पर उसकी सहायता कोई नहीं करता।

पटु पाखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा, पुहुमि में, एकै तुहि, विहंग ॥५६॥

शब्दार्थ—पटु=पट, वस्त्र। पाखै=पंख, पर। भखु=भक्ष्य, भोजन, खाता है। काँकरै=कंकर-पत्थर। परेई=कबूतरी। संग=साथ। परेवा=कबूतर। पुहुमि=पृथ्वी।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल जी सन्तोषी कबूतर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तेरे पंख ही तो वस्त्र हैं। कंकर खाकर भी तू अपना निर्वाह कर लेता है और तेरी प्रियतमा कबूतरी तेरे साथ सदा बनी रहती है। इस प्रकार हे कबूतर पक्षी! इस पृथ्वी में तू ही सब से अधिक सुखी है। भाव यह है कि जो मनुष्य सन्तोषी हैं, रूखा-सूखा जो भी मिल जाय वही खाकर निर्वाह कर लेते हैं, वे ही वास्तव में इस संसार में सुखी हैं।

कीनौ हूँ कोटिक जतनु, अब कहि काढ़े कौनु।
भौ मन मोहन रूप मिलि, पानी में कौ लौनु ॥५७॥

शब्दार्थ—कीनौ हूँ=करने पर भी। कोटिक=करोड़ों। जतनु=यत्न। कहि=किस प्रकार। काढ़े=निकाले। भौ=हो गया। लौनु=नमक।

भावार्थ—कवि कहता है कि अब तो मेरा मन श्रीकृष्ण के रूप में मिलकर उससे इस प्रकार एकाकार हो गया है कि कोई करोड़ों यत्न करने पर भी उसे कोई किसी प्रकार भी अलग नहीं कर सकता। जैसे कि पानी में मिले हुए नमक को कोई पानी में से नहीं निकाल सकता वैसे ही मेरे कृष्ण के रूप में मिले हुए मन को उससे कोई अलग नहीं कर सकता।

सोवत, जागत, सुपन बस, रस, रिस, चैन, कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसरैंहूँ बिसरै न ॥५८॥

शब्दार्थ—सुपनबस=सुपने में। रस=आनन्द, खुशी। रिस=क्रोध। सुरति=स्मरण। स्याम घन=श्रीकृष्ण। सुरति=सूरत, स्वरूप। बिसरैंहूँ=भुलाने पर।

भावार्थ—कवि कहता है कि सोते, जागते या स्वप्न में, प्रेम में या क्रोध में, शान्ति में या अशान्ति में अथवा सुख में या दुःख में घनश्याम श्रीकृष्ण के स्वरूप की याद भुलाने पर भी तो नहीं भूलती। भाव यह है कि जब से भगवान् श्रीकृष्ण की साँवली सलोनी मूर्ति के दर्शन हुए तब से चौबीसों घण्टे उसी की याद आती है।

मतिराम

परिचय

जन्म-संवत् १६७४ मृत्यु-संवत् १७७३

आप शृङ्गार-रस के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। ये भूषण के भाई हैं। ये बूँदी के महाराव भावसिंह के आश्रय में रहकर कविता लिखते रहे। आपकी कविता की भाषा रसानुकूल मनोहारिणी है। आपके भावों में स्वाभाविकता विद्यमान है।

आपके निम्न-निर्दिष्ट ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं—

ललित-ललाम, छन्दसार, लक्षणसार, साहित्यसार।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'रसराज' आदि में भी आपने कवि-हृदय खोलकर दिखा दिया है। आपकी प्रसादमयी एवं प्रांजल भाषा ने साहित्यिकों की रुचि को आपकी कविता के प्रति और भी सजग कर दिया है। राधाकृष्ण के प्रेम-चित्रण के अतिरिक्त आपने अन्योक्तियों द्वारा जो मार्मिक शिक्षाएँ दी हैं, उनका स्थान साहित्य में बहुत ऊँचा है।

दोहे

सार और आलोचना

आपने कविता में, राधा और कृष्ण का अलौकिक प्रेम जग के व्यवहार में किस प्रकार हितकर है, यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया है। राधा और कृष्ण का प्रेम अपने प्रकाश से हमारे अन्धकारमय जीवन में किस प्रकार ज्योत्स्ना की किरण फेंकता है इत्यादि वर्णन के साथ-साथ हमें अन्योक्तियों द्वारा कर्मनिष्ठा की भी शिक्षा सुचारु रूप से दी है।

आपकी भाषा भावानुगामिनी एवं मनोरंजक है। आपने दोहे जैसे छोटे छन्द में भाव-छटा को बहुत ही सुन्दर ढंग से छिटका है। आपकी शैली स्वाभाविक तथा रसिकों के हृदय में रस बहा देने वाली है।

मंजु गुंज के हार उर, मुकुट मोर पर-पुंज।
कुंज विहारी बिहरियं, मेरेई मन-कुंज ॥१॥

शब्दार्थ—मंजु=सुन्दर। गुंज=गुंजा, रत्ती। **उर=हृदय। पुंज**=समूह। **मोर-पर-पुंज**=मोरों के पंखों का समूह। **कुंज-बिहारी**=कुंजों में विहार करने वाले श्रीकृष्ण। **बिहरियं**=विहार कीजिए। **मन-कुंज**=मनरूपी कुंज।

भावार्थ—हृदय पर गुंजाओं—रत्तियों—की माला धारण किये हुए, मस्तक पर मोर के पंखों से सुशोभित मुकुट पहने हुए कुंज-विहारी—कुंजों में विहार करने वाले—हे श्रीकृष्ण! आप मेरे ही मनरूपी कुंजों में विहार कीजिए।

राधा मोहन-लाल को, जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठो हजार दस, ताकी आंखिन खेह ॥२॥

शब्दार्थ—जाहि=जिसे। भावत=अच्छा लगता। नेह=प्रेम। आँखिनि=आँखों में। खेह=मिट्टी, धूल।

भावार्थ—जिनको राधा और कृष्ण का प्रेम अच्छा नहीं लगता, उनकी आँखों में दस हज़ार मुठी धूल पड़ जाय। भाव यह कि जो राधा-कृष्ण के प्रेम को बुरा समझते हैं, उन्हें लाख बार धिक्कार है।

तेरी मुख-समता करी, साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरबिंद मुख, चंदहि लग्यौ कलंक ॥३॥

शब्दार्थ—समता=बराबरी। साहस=हौंसला, उत्साह। निरसंक=निश्शंक, निर्भय। अरबिंद=कमल। चंदहि=चन्द्रमा को।

भावार्थ—हे राधिके, कमल ने और चन्द्रमा ने तुम्हारे मुख की समता करने का साहस किया, इसलिए मानो कमल के मुख पर तो पुष्प-रज के कण रूप में धूल पड़ गई, और चन्द्रमा को कलंक लग गया। यद्यपि कमल में पराग और चाँद में कलंक स्वाभाविक है तथापि उसका यहाँ एक दूसरा कारण राधा के मुख की समता बताया गया है।

कहा भयौ मतिराम हिय, जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं, लाल गुंज की माल ॥४॥

शब्दार्थ—हिय=हृदय। लाल=एक प्रकार का लाल रंग का बहुमूल्य रत्न। गुंज=रत्ती।

भावार्थ—हे रत्तियों की माला, यदि श्रीकृष्ण ने भी तुम्हें अपने हृदय पर धारण कर लिया तो भी क्या हुआ। क्योंकि लाल रत्तियों की माला लाल रत्नों का मूल्य कभी नहीं पा सकती। अर्थात् छोटा मनुष्य किसी बड़े पद पर भी पहुँच जाय तो भी वास्तव में बड़ों के समान आदर नहीं पा सकता।

गुन औगुन कौ तनकऊ, प्रभु नहिं करत बिचार।
केतकि कुसुम न आदरत, हर सिर धरत कपार ॥५॥

शब्दार्थ—**औगुन**=अवगुण, दोष। **तनकऊ**=थोड़ा। **केतकि**=केवड़ा। **कुसुम**=पुष्प, फूल। **कपार**=कपाल, सिर।

भावार्थ—भगवान् अपने भक्तों के गुण या अवगुणों का विचार कभी नहीं करते। जैसे कि शिवजी केवड़े के सुगन्धित पुष्प को भी अपने सिर पर धारण नहीं करते, और कपाल को प्रेमपूर्वक धारण करते हैं। भगवान् किसी के गुण या दोषों पर विचार न कर सभी पर समान रूप से प्रेम करते हैं। (पौराणिक सिद्धान्तों के अनुसार भगवान् शंकर पर केवड़े का फूल नहीं चढ़ाया जाता और वे कपालों को धारण करते ।)

निज बल कौं परिमान तुम, तारै पतित बिसाल।
कहा भयौ जु न हौं तरतु, तुम खिस्याहु गोपाल ॥६॥

शब्दार्थ—**परिमान**=प्रमाण, माप। **तारै**=पार उतारे। **पतित**=नीच। **बिसाल**=विशाल, बड़ा। **जु**=जो। **तरतु**=पार उतारता। **खिस्याहु**=लज्जित होंगे।

भावार्थ—हे भगवन्, जितनी आप में शक्ति और सामर्थ्य थी, उतनी अपनी शक्ति के अनुसार आपने छोटे-मोटे कई पापियों का उद्धार कर दिया। किन्तु आप यदि मुझ एक महान् पापी का उद्धार नहीं कर पाये तो इसमें क्या हुआ; क्योंकि आप उतना ही तो कार्य कर सकते हैं जितनी आपमें सामर्थ्य है। पर स्मरण रखिए कि मेरा उद्धार न करने से आप ही को लज्जित होना पड़ेगा कि एक ऐसा बड़ा पापी आया जिसका उद्धार भगवान् भी न कर सके। (यह भक्त का भगवान् के प्रति व्यंग्य वचन है) भक्त लोग प्रायः इसी प्रकार के व्यंग्य-बाण सुना-सुना कर अपने उद्धार के लिए प्रभु को प्रेरित व उत्साहित किया करते हैं।

निडर बटोही बाट मैं, ऊखनि लेत उखार।
अरे गरीब गँवार तैं, काहै करत उजार ॥७॥

शब्दार्थ—**निडर**=बिना डर का, निर्भय। **बटोही**=यात्री।

बाट=रास्ता, मार्ग। **ऊखनि**=गन्ना, ईख। **उखार**=उखाड़ना। **तैं**=तूने। **काहे**=क्यों। **उजार**=उजाड़ना।

भावार्थ—हे गँवार! तू ईख के खेत को क्यों व्यर्थ में उखाड़ रहा है क्योंकि इसके लगे रहने से राह चलते यात्री इस ईख को तोड़ कर या उखाड़ कर उसका रस चूसकर अपने पथ-श्रम अर्थात् थकावट को मिटा लिया करते हैं। भाव यह कि दूसरों का उपकार करने वाले सज्जनों को दुर्जन हानि पहुँचाते ही रहते हैं।

बसिबे कौं निज सरवरनि, सुर जाकौं ललचाहिँ।
सो मराल बकताल मैं, पैठन पावत नाहिँ।८॥

शब्दार्थ—**बसिबे कौं**=बसने के लिए। **निज**=अपना। **सरवरनि**=सरोवर, तालाब। **सुर**=देवता। **जाकौं**=जिस के लिए। **ललचाहिँ**=ललचाते हैं। **मराल**=हंस। **बकताल**=बगुलों के तालाब। **पैठन**=प्रवेश, घुसना। **पावन**=पाते हैं। **नाहिँ**=नहीं।

भावार्थ—जिन तालाबों पर रहने के लिए देवता लोग भी ललचाते हैं, उस मानसरोवर पर हंसों के झुण्ड में बगुले नहीं टिक सकते। भाव यह कि सज्जनों में दुर्जन नहीं रह सकता।

अद्भुत या धन को तिमिर, मो पै कह्यौ न जाइ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत, त्यौं त्यौं अति अधिकाइ॥९॥

शब्दार्थ—**अद्भुत**=अनोखा। **तिमिर**=अंधेरा। **मो पै**=मुझ से। **कह्यौ**=कहना (कहा)। **मनिगन**=मणियों का समूह। **जगमगत**=जगमगाता है, चमकता है। **अधिकाइ**=अधिक, ज्यादा होता जाता है।

भावार्थ—इस धन का अंधकार बड़ा ही अद्भुत है; मैं इसका वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि ज्यों-ज्यों मणियों के समूह जगमगाते या चमकते हैं, त्यों-त्यों यह अंधकार बढ़ता ही जाता है। भाव यह है कि धन के आने पर मनुष्य की आँखों पर अँधेरा छा जाता है और अभिमान

का अंधकार ज्यों-ज्यों सम्पत्ति बढ़ती है त्यों-त्यों बढ़ता ही जाता है। धन बढ़ने पर मनुष्य बड़ा अभिमानी हो जाता है।

कोटि कोटि मतिराम कहि, जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं, नेह न कबहूँ होइ॥१०॥

शब्दार्थ—कोटि=करोड़ों। जतन=यत्न, उपाय। फाटे=फटे हुए। अरु=और। नेह=स्नेह, प्रेम तथा मक्खन।

भावार्थ—मतिराम कवि कहते हैं कि चाहे कोई करोड़ों यत्न क्यों न कर ले फिर भी फटे दूध और फटे मन में कभी भी स्नेह (प्रेम और मक्खन) नहीं निकल सकता। दो मित्रों के हृदय यदि फट जायँ, उनमें बैर-विरोध के भाव आ जायँ तो फिर उनकी वैसी मित्रता नहीं हो सकती जैसे फटे दूध से मक्खन नहीं निकल सकता।

सुबरन बरन सुबास जुत, सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक को तजै, तैंहीं भौंर गँवार॥११॥

शब्दार्थ—सुबरन=सुवर्ण, सोना। बरन=वर्ण, रंग। सुबास=सुवास, सुगन्धि। जुत=युक्त, साथ। सरस=आनन्ददायक। दलनि=पंखुड़ियाँ, फूल का दल या पत्ती। सुकुमार=कोमल, मुलायम। चम्पक=चम्पा। तजै=छोड़े, त्यागे। तैंहीं=तू ही। भौंर=भौंरा। गँवार=मूर्ख।

भावार्थ—(भ्रमर का स्वभाव है कि वह उत्कट सुगन्धि वाले पुष्पों पर नहीं जाता। जिन पुष्पों की सुगन्धि भीनी-भीनी होती है उन्हीं का रस लेता है इसलिए वह चम्पे का रस भी नहीं ले पाता) इसलिए कवि कहता है कि हे भौंरे, तू बड़ा मूर्ख है जो कि तूने स्वर्ण के समान वर्ण-वाली अत्यन्त कोमल और सुगन्ध से युक्त चम्पे की कली को भी छोड़ दिया अर्थात् उसके पास भी नहीं जाता। (यहाँ किसी ऐसे व्यक्ति का

वर्णन किया जा रहा ... अपनी सर्वगुणसम्पन्न पत्नी का भी परित्याग कर दिया है।)

सुबरन बेलि तमाल सौं, घन सौं दामिनी देह।
तूँ राजति घनस्याम सौं, राधे सरिस सनेह ॥१२॥

शब्दार्थ—बेलि=बेल, लता। तमाल=एक काले रंग का वृक्ष। सौं=से। घन=बादल, मेघ। दामिनी=बिजली। देह=शरीर। राजति=सुशोभित होती है, अच्छी लगती है। घनस्याम=श्रीकृष्णजी। सरिस=सदृश, समान। सनेह=प्रेम, स्नेह।

भावार्थ—सोने की बेल तमाल वृक्ष से और बादल से बिजली का शरीर जिस प्रकार शोभित होता है, हे राधिका, सदृश स्नेह के कारण तू वैसे ही घनश्याम से शोभित होती है। भाव यह है कि तमाल वृक्ष, बादल और कृष्ण, इन तीनों श्याम वर्ण वालों से स्वर्णलता, बिजली और राधिका ये तीनों गौर वर्ण वाली अत्यन्त सुशोभित होती हैं। राधा और कृष्ण दोनों का प्रेम बराबर होने के कारण दोनों सुशोभित होते हैं।

अब तेरौ बसिबौ इहाँ, नाहिंन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ, भयौ पंकमय ताल ॥१३॥

शब्दार्थ—बसिबौ=बसना, निवास करना। इहां=यहाँ। नाहिंन=नहीं। उचित=योग्य। मराल=हंस। सकल=सब। सूखि=सूख जाना। पानिप=जल। पंकमय=कीचड़ वाला हो। ताल=तालाब।

भावार्थ—हे हंस! अब तेरे लिए इस तालाब पर रहना उचित नहीं है, क्योंकि इस तालाब का पानी तो सारा सूख गया है और अब इसमें कीचड़ ही कीचड़ शेष रह गया है। किसी गुणी कवि को यहाँ यह कहा जा रहा है कि आश्रयदाता के निर्धन हो जाने पर अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए। गुणी पुरुष तभी तक कहीं टिक सकता है जब तक उसका भरण-पोषण होता रहे।

दुख दीनै हूँ सुजन जन, छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं, करत सुबासित देस ॥१४॥

शब्दार्थ—**दीनै**=देना। **सुजन**=सज्जन,साधु। **निज**=अपना। **सुदेस**=स्वभाव। **अगरु**=अगर, एक सुगन्धित पदार्थ। **डारियत**=डालना। **आगि**=आग। **सुबासित**=सुगन्धित। **देस**=देश।

भावार्थ—सज्जन दुःख देने पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। जैसे अगर को आग में भो डालो तो भी वह सारे स्थान को सुगन्धित ही कर देता है।

भाव यह कि श्रेष्ठ पुरुप को चाहे कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे पर वह तो दुःख में पड़ कर भी दूसरे का उपकार ही करता है तथा अपने सज्जनता के स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता। जैसे अगर को जलाने पर भी वह सुगन्धि ही देता है अर्थात् आग में जल कर भी वह अगर दूसरों को सुगंधि द्वारा प्रसन्न करता है।

सुजस ओज-सौं साह-सुत, सिवा सूरसिरदार।
सरद चंद आतप कियौ, सुचि आतप इक बार ॥१५॥

शब्दार्थ—**सुजस**=सुयश। **ओज**=तेज। **साह**=शाहजी। **साह-सुत**=शाहजी का पुत्र। **सिवा**=शिवाजी। **सूरसिरदार**=शूरवीरों का शिरोमणि। **सरद**=शरद् ऋतु का। **चंद**=चन्द्रमा। **आतप**=चाँदनी **सुचि**=ज्येष्ठ मास। **आतप**=धूप। **इक**=एक।

भावार्थ—हे शाहजी के पुत्र शूरवीरों के शिरोमणि महाराज शिवाजी! आपने अपने सुन्दर यश और तेज से शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी और ज्येष्ठ मास की तेज़ धूप दोनों ही एक साथ प्रकट कर दिये हैं। भाव यह है कि कवि लोग यश को चाँदनी के समान शीतल और तेज को सूर्य की धूप के समान कहते हैं, इसलिए मानो शिवाजी के यश और प्रताप से धूप और चाँदनी एक साथ ही प्रकट होते हैं।

आपका यश तो चाँदनी के समान मित्रों को प्रसन्न करता है और तेज धूप के समान शत्रुओं को तपाता है।

पिसुन-बचन सज्जन चितै, सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं, तुपक तीर तरवारि ॥१६॥

शब्दार्थ—पिसुन=चुगलखोर। सज्जन=साधु व्यक्ति, नेक आदमी। चितै=हृदयों को। सकै=सकना। फोरि=फाड़ना। फारि=फाड़ना। तोय मैं=जल में। तुपक=तोप। तीर=बाण। तरवारि=तलवार।

भावार्थ—चुगलखोरों की बातें सज्जनों के दो मिले हुए हृदयों को फोड़ या फाड़ नहीं सकतीं। पानी में लगी हुई तोप, तीर, तलवार और भाला उसका क्या बिगाड़ सकती हैं। जिस प्रकार तीर, तोप या तलवार के लगने पर पानी वैसे का वैसा ही रहता है; वैसे ही दुष्ट चुगलखोरों के इधर-उधर की बातें बनाने पर भी सज्जनों के मिले हुए हृदय अलग नहीं हो पाते। दुष्ट चाहे कितनी ही फूट डालने की चेष्टा करें तो भी दो सज्जनों के हृदय फट नहीं सकते।

अति सुढार अति ही बड़े पानिप भरे अनूप।
नाकमुकत नैनानि सौं, होड़ परि इहिं रूप ॥१७॥

शब्दार्थ—अति=बहुत, अत्यन्त। सुढार=सुडौल, सुन्दर। पानिप=कान्ति और जल। अनूप=अनुपम। नाकमुकत=नाक की लौंग या नाथ का मोती। नैनानि=आँखों।

भावार्थ—इस सुन्दरी के नाक के आभूषण के मोती और नैनों में मानो होड़सी लग गई है, क्योंकि दोनों ही सुन्दर, अनुपम और कान्ति से परिपूर्ण हैं। मोती भी सुन्दर है आँखें भी, मोती भी सुडौल, विशाल अच्छा बना हुआ है आँखें भी वैसी ही हैं, अतः मानो दोनों में होड़-सी लगी है कि कौन किस से सुन्दर है।

हाथी के मुखवाले गणेशजी। जगमाया=जगत की माता पार्वती। सुकुमार=बालक।

भावार्थ—गणेशजी महाराज अत्यन्त दानी, उदार और सज्जनों को सुख देने वाले हैं। वे जगज्जननी पार्वती के सुपुत्र और विश्व के वन्दनीय हैं। यहाँ पर कवि ने गणेश जी का वर्णन करते हुए उनकी उदारता आदि का दिग्दर्शन कराया है।

अंग ललित सित-रंग पट, अंग राग अवतंस।
हंस-बाहिनी कीजियै, बाहन मेरौ हंस ॥२१॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। सित=सफ़ेद। पट—वस्त्र। अंग-राग= लाली (माँग का सिन्दूर)। अवतंस=शिरोभूषण। हंसबाहिनी= हंस की सवारी करने वाली सरस्वती। बाहन=सवारी। हंस=प्राण।

भावार्थ—भगवती सरस्वती से प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है कि अपने सुन्दर अंगों पर श्वेत वस्त्र धारण किये हुए और अपने मस्तक की माँग में सिन्दूर लगाये हुए, हे हंसवाहिनी सरस्वती माता! आप मेरे मन रूपी हंस को ही अपना वाहन बनाइये। अर्थात् हे भगवती सरस्वती! आप मेरे मन में ही वास कीजिए।

जो निसिदिन सेवन करै, अरु जो करै विरोध।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु, कहौ कौन यह बोध ॥२२॥

शब्दार्थ—निसिदिन=रातदिन। परमपद=मोक्ष। बोध=समझ।

भावार्थ—भगवान् रावण आदि अपने विरोधियों का भी उद्धार कर देते हैं और भक्तों का भी, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि हे भगवन्! आपकी भी यह क्या समझ है कि जो लोग रात-दिन आपका भजन करते हैं, उन्हें तो भला आप मोक्ष देते ही हैं किन्तु जो लोग (रावण आदि) आपका विरोध करते हैं, उन्हें भी आप मोक्ष दे देते हैं। भगवान् शत्रु और मित्र को समभाव से देखते हैं।

पगीं प्रेम नँदलाल कैं, हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइकै, भीख न माँगत लोग ॥२३॥

शब्दार्थ—पगीं=तन्मय हुई। भावत=अच्छा लगता। मधुप=भ्रमर (उद्धव), गोपियाँ उद्धव को प्रायः 'मधुप' नाम से सम्बोधित करती हैं।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे भ्रमर अर्थात् उद्धव, नन्दलाल (श्रीकृष्ण) के प्रेम में तन्मय हुई हमें तुम्हारी यह योग की बातें अच्छी नहीं लगतीं। राज्य-पद को पाकर भला भीख माँगना किसको अच्छा लगेगा। भाव यह है कि जैसे राज्य पाकर कोई भीख नहीं माँग सकता वैसे ही श्रीकृष्ण के प्रेम के सामने तुम्हारे योग की बातें भी हमें अच्छी नहीं लगतीं।

मो मन मेरी बुद्धि लै, करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी, दै धतूर को फूल ॥२४॥

शब्दार्थ—हर=शिव। त्रिलोक=तीनों लोक। साहिबी=स्वामित्व।

भावार्थ—हे मेरे मन, मेरी बुद्धि को लेकर भगवान् शंकर के अनुकूल बना दे, अर्थात् मुझे भगवान् शंकर का भक्त बना दे, क्योंकि उन पर भक्त केवल धतूरे के पुष्प चढ़ाकर ही तीनों लोकों का आधिपत्य प्राप्त कर लेता है। भाव यह कि भगवान् शंकर आशुतोष हैं, वे तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं। अतः उन्हीं की भक्ति करनी चाहिए।

खल बचननि की मधुरई, चाखि साँप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए, कहत मोद गहि मौन ॥२५॥

शब्दार्थ—खल=दुष्ट। मधुरई=मधुरता। निज=अपने। श्रौन=कान। मोद=आनन्द। गहि=ग्रहण की।

भावार्थ—दुष्ट वचन कभी मधुर नहीं हो सकते, दुर्जन के वचनों की असंभवता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि दुष्टों के वचनों की मधुरता को साँप ने अपने कानों से चखा-सुना और उनका रोम-रोम पुलकित हो गया, उसका वर्णन करते-करते वे तन्मय होकर मौन हो गये। भाव यह है कि दुष्टों के वचन कभी मधुर नहीं होते, क्योंकि साँप के कान नहीं होते इसलिए वह किसी के वचन को सुन ही नहीं सकता। कवि ने कहा है कि दुष्टों के वचनों की मधुरता केवल साँप ही अपने कानों से सुन पाता है, दूसरा कोई नहीं।

मुकत-हार हरि कै हियैं, मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका, मुखमुसक्यानि उदोत ॥२६॥

शब्दार्थ—**मुकत**=मोती। **हियैं**=हृदय पर। **मरकत मनि**=नीलम। **पुनि**=फिर। **उदोत**=प्रकाश।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण की छाती पर लहराते हुए मोतियों के हार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के हृदय पर पड़ा हुआ सफ़ेद मोतियों का हार भी उनके शरीर की श्याम कान्ति से मरकत मणि—नीलम—के हार के समान दिखाई देता है। किन्तु राधा के मुख की मुस्कराहट की श्वेत-कान्ति से नीलम का सा बना हुआ वह मोतियों का हार फिर श्वेत-वर्ण कान्ति वाला बन जाता है। भाव यह कि वह पहले सफ़ेद से नीला और फिर सफ़ेद का सफ़ेद हो जाता है।

सरद चंद की चाँदनी, को कहियै प्रतिकूल।
सरद चंद की चाँदनी, कोक हियै प्रतिकूल ॥२७॥

शब्दार्थ—**सरद चंद**=शरद् ऋतु का चन्द्रमा। **को**=कौन **प्रतिकूल**=विरुद्ध। **कोक**=चकवा।

भावार्थ—शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी किसके हृदय के विरुद्ध है—किसके हृदय को अच्छी नहीं लगती, इसका उत्तर यह है कि

'कोक हिये' अर्थात् कोक (चकवे) के हृदय को शरद् ऋतु के चाँद की चाँदनी भी अच्छी नहीं लगती। यहाँ पर प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर दिया गया है, यही चमत्कार है।

स्याम-रूप अभिराम अति, सकल बिमल गुन-धाम।
तुम निसिदिन मतिराम की, मति बिसरौ मति राम ॥२८॥

शब्दार्थ—अभिराम=सुन्दर। बिमल=निर्मल। गुनधाम=गुणों के भंडार। निसिदिन=रातदिन। मति=बुद्धि।

भावार्थ—हे सम्पूर्ण श्रेष्ठ निर्मल गुणों के भंडार अत्यन्त सुन्दर भगवान् राम! तुम मतिराम का विचार अपने हृदय में से क्षण भर भी दूर मत करो अर्थात् तुम सदा मेरा ध्यान रखते रहो। यह भक्त अपने प्रभु से प्रार्थना कर रहा है।

प्रतिपालक सेवक सकल, खलनि दलमलत डाँटि।
शंकर तुम सम साँकरैं, सबल साँकरैं काटि ॥२९॥

शब्दार्थ—प्रतिपालक=पालना करने वाले। सकल=सब। खलनि=दुष्टों को। दलमलत=दल-मल देते हैं, नष्ट कर देते हैं। सम=समान। साँकरैं=संकट में और जंजीरें। सबल=बलवान्, मज़बूत।

भावार्थ—सब सेवकों का पालन करने वाले और दुष्टों को दलमल डालने वाले—नष्ट-भ्रष्ट कर देने वाले—हे भगवान् शंकर! आपके समान दुःखों या कष्टों की मज़बूत शृंखलाओं—ज़ंजीरों को काटने वाला भला मेरे लिए और दूसरा कौन है! भाव यह कि भगवान् शंकर ही भक्तों के दुःखों की बेड़ियाँ काट सकते हैं।

सेवक सेवा के सुनें, सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत हैं, दीनबंधु हर एक ॥३०॥

शब्दार्थ—अनेक=बहुत से। हरि=विष्णु। हर=शिवजी।

भावार्थ—सेवा करने वाले सेवक हैं और सेवा करने पर तो अनेकों देवता प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु संसार भर में दीन दुखियों के बन्धु तो एक भगवान् शंकर या भगवान् विष्णु ही हैं। भाव यह कि शिवजी या विष्णु भगवान् ही भक्तों के दुःख दूर कर सकते हैं।

अधम अजामिल आदि जे, हौं तिनकौ हौं राउ।
मोहूँ पर कीजै दया, कान्ह दया दरियाउ ॥३१॥

शब्दार्थ—अधम=नीच, पापी। हौं=हूँ। राउ=राजा। दया-दरियाउ=दया के सागर।

भावार्थ—कवि भगवान् से अपने उद्धार की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवन्! अजामिल आदि जितने भी नीच पापी हुए हैं, मैं उनका भी सरदार हूँ। इसलिए हे श्रीकृष्ण भगवान्, हे दया के सागर, जिस प्रकार आपने अजामिल आदि अनेक पापियों का उद्धार किया वैसे ही मेरा भी उद्धार कीजिए। भाव यह है कि जैसे और पापियों को आपने मुक्त कर दिया, वैसे ही मुझे भी मुक्त कर दीजिए।

अनमिष नैन कहै न कछु, समुझै सुनै न कान।
निरखैं मोर पखानि कैं, भयो पखान समान ॥३२॥

शब्दार्थ—अनमिष=टकटकी बांधे हुए—अपलक। निरखें=देखकर। मोरपखानि=मोर का पंख। भयो=हो गया। पखान=पत्थर।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के दर्शन होते ही भक्त कैसे तन्मय हो जाता है, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रीकृष्ण के मोरमुकुट को देखकर मैं इस प्रकार अपनी सुध-बुध खो बैठा और पत्थर के समान स्तब्ध हो गया कि टकटकी लगाये हुए जिन नेत्रों ने उस शोभा को देखा वे तो उसका वर्णन नहीं कर सकते और कान भी उसका वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने देखा नहीं। अथवा श्रीकृष्ण की शोभा को देख कर मनुष्य ऐसा तन्मय हो जाता है कि उसकी अपलक आँखें श्रीकृष्ण के

सिवा किसी दूसरे रूप को देखती ही नहीं, वाणी दूसरी बात नहीं कहती, मन अन्य किसी की बात समझना नहीं चाहता और कान दूसरी बात सुनते नहीं।

भौंर भाँवरैं भरत हैं, कोकिल-कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी, सौरभ सुख सरसात ॥३३॥

शब्दार्थ—**भौंर**=भ्रमर, भौंरे। **भाँवरैं भरत हैं**=मँडराते हैं। **कोकिल**=कोयल। **कुल**=समूह। **रसाल**=आम। **सौरभ**=सुगन्धि।

भावार्थ—इस आम की मंजरी पर कहीं तो भँवरे मँडरा रहे हैं और कहीं कोयल मस्त हो रही है; इस प्रकार यह आम्रमंजरी सुगन्धि और सुख को सरसा रही है। यहाँ पर वसन्त का वर्णन करते हुए उसमें आम के बौर और भौंरों का वर्णन किया गया है।

कपट वचन अपराध तैं, निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग मैं संकु ज्यौं, होत बिथा की खानि ॥३४॥

शब्दार्थ—**निपट**=सर्वथा, बहुत। **दुखदानि**=दुःख देने वाले। **संकु**=कील। **बिथा**=व्यथा, दुःख। **खानि**=खान।

भावार्थ—अपराध करने से भी अपराध करके झूठ बोलना और कपट-भरे वचनों से उस अपराध को छिपाने का प्रयत्न करना बहुत अधिक दुःख देता है। वे कपट वचन तो जले हुए अंग में मानो कील चुभाने के समान अधिक दुःखदायक और असत्य प्रतीत होते हैं। भाव यह कि मनुष्य अपराध करके उसे स्वीकार कर ले, सच बोल जाय तो उतना बुरा नहीं लगता पर यदि एक तो अपराध करे और ऊपर से झूठ बोले तो बहुत बुरा लगता है।

कलपद्रुम-पल्लव भयौ, तू अति दान निदान।
भोगनाथ नर-नाथ के हाथ-साथ पढ़ि दान ॥३५॥

शब्दार्थ—**कलपद्रुम**=कल्पवृक्ष नामक देवताओं का एक वृक्ष,

जो माँगने वालों को मनचाही वस्तु देता है। **पल्लव**=पत्ता। **नरनाथ**=राजा।

भावार्थ—मतिराम जी अपने आश्रयदाता राजा भोगनाथ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे मनुष्यों की मनचाही इच्छा पूरी करने वाले कल्पवृक्ष के पत्ते! तू भी महाराज भोगनाथ के हाथों के साथ दान का पाठ पढ़कर ही मानो इतना बड़ा दानी हो गया है। भाव यह है कि महाराज भोगनाथ इतनें बड़े दानी हैं कि कल्पवृक्ष भी इनके सामने तुच्छ प्रतीत होता है।

छोड़ि नेह नँदलाल को, हम नहिं चाहति जोग।
रंग बाति क्यों लेत हैं, रतन-पारखी लोग ॥३६॥

शब्दार्थ—**नेह**=प्रेम। **नँदलाल**=श्रीकृष्ण। **जोग**=योग। **रतन-पारखी**=रत्नों के परीक्षक, जौहरी। **रंग बाति**=नक़ली रत्न।

भावार्थ—गोपियाँ योग का उपदेश देने आये हुए उद्धव को कहती हैं कि श्रीकृष्ण के प्रेम को छोड़कर हमें तुम्हारा यह योग अच्छा नहीं लगता। भला रत्नों के परीक्षक जौहरी लोग असली रत्नों को छोड़कर नकली रत्न क्यों लेंगे!

भाव यह है कि जिस प्रकार कोई जौहरी कोई नकली रत्न नहीं ले सकता उसी प्रकार हम भी श्रीकृष्ण के प्रेम रूपी असली रत्न को छोड़कर तुम्हारे योग रूपी नकली रत्न को लेकर क्या करेंगी।

भोगनाथ नर-नाथ के, गुन-गन बिमल बिसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं, पग सेवत महिपाल ॥३७॥

शब्दार्थ—**गुन-गन**=गुणों के समूह। **बिमल**=निर्मल। **बिसाल**=बड़े। **भिच्छुक**=भिखारी। **सेवत**=सेवा करते हैं। **पानी**=हाथ। **पग**=पाँव। **महिपाल**=राजा।

भावार्थ—कवि मतिराम भोगनाथ के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि महाराज भोगनाथ के गुणों के समूह बड़े निर्मल एवं विशाल हैं—भिखारी तो उनके हाथों की सेवा करते हैं; राजा लोग उनके चरणों की सेवा करते हैं। भाव यह है कि भिखारियों को महाराज भोगनाथ अपने हाथों से दान करते हैं इसलिए मानो भिखारी उनके हाथों की सेवा करते हैं और राजा लोग उनके चरणों की वन्दना करते हैं।

अद्‌भुत गावत जगत सब, भोगनाथ गुनगाथ।
भूमिपाल सेवत चरन, भिच्छुक सेवत हाथ ॥३८॥

शब्दार्थ—**अद्‌भुत**=अनोखा। **गुनगाथ**=गुणों की कथा। **भूमिपाल**=राजा।

भावार्थ—भोगनाथ के अद्‌भुत गुणों की कथा को सारा संसार इस प्रकार गाता है कि राजा लोग तो उनके चरणों की सेवा करते हैं, भिखारी हाथों की सेवा करते हैं।

निज स्वरूप प्रभु देत हैं, साँच कहत मुनि-गोत।
भोगनाथ की रीझ मैं, भोगनाथ कवि होत ॥३९॥

शब्दार्थ—**निज**=अपना। **प्रभु**=स्वामी। **मुनि-गोत**=मुनियों के समूह। **रीझ**=प्रसन्नता।

भावार्थ—मुनियों के समूह यह बात ठीक कहते हैं कि स्वामी (प्रभु) अपने सेवक को भी अपना रूप दे देते हैं अर्थात् अपने ही जैसा बना लेते हैं; क्योंकि भोगनाथ महाराज के प्रसन्न होने पर कवि लोग भी भोगनाथ के समान ही धनवान् बन जाते हैं।

होत जगत मैं सुजन कौं, दुरजन रोकनहार।
केतकि कमल गुलाब के, कंटक मय परिहार ॥४०॥

शब्दार्थ—**सुजन**=सज्जन, अच्छा आदमी। **दुरजन**=दुष्ट आदमी।

रोकनहार=रोकने वाला । **केतकी**=केवड़ा । **कण्टक**=कांटे। **परिहार**=रोकने वाले ।

भावार्थ—सज्जनों को इस संसार में दुष्ट लोग रोक देते हैं जैसे कि कमल, केवड़ा और गुलाब के कांटे उन्हें चारों ओर से घेरे रहते हैं।

फूलति कली गुलाब की, सखि यहि रूप लखै न।
मनौ बुलावति मधुप कौं, दै चुटकी की सैन ।।४१।।

शब्दार्थ—**फूलति**=खिलती हुई । **लखैन**=देखो न । **बुलावति**= बुलाती है । **मधुप**=भ्रमर । **सैन**=इशारा, संकेत ।

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से चटचटा कर विकसित होती हुई कली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि, इस खिलती हुई गुलाब की कली का रूप तो देखो न । यह ऐसी प्रतीत होती है, मानो अपने प्रियतम भौंरे को रस लेने के लिए चुटकी बजाकर इशारा करती हुई अपने पास बुला रही हो ।

करौ कोटि अपराध तुम, वाके हियै न रोष।
नाह - सनेह - समुद्र मैं, बूड़ि जात सब दोष ।।४२।।

शब्दार्थ—**कोटी**=करोड़ों । **वाके**=उसके । **हियै**=हृदय में । **रोष**=क्रोध । **नाह**=नाथ, प्रियतम । **सनेह-समुद्र**=प्रेम रूपी समुद्र । **बूड़ि जात**=डूब जाते हैं ।

भावार्थ—एक सखी दूसरी मानवती सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि तुम अपने प्रियतम के चाहे करोड़ों अपराध क्यों न करो उसके हृदय में तुम्हारे प्रति कभी क्रोध नहीं आता । बात तो यह है कि उसके प्रेम रूपी समुद्र में तुम्हारे सब दोष डूब जाते हैं। जैसे समुद्र में चाहे कोई कितनी ही बड़ी वस्तु क्यों न हो सभी डूब जाती हैं, उनका कहीं पता भी नहीं लगता, वैसे ही प्रियतम के प्रेमरूपी समुद्र में तुम्हारे सब दोष डूब जाते हैं । वह प्रियतम तुम्हारी किसी बात का बुरा नहीं मानता।

भोगनाथ नरनाथ कौ, बदन इंदु अरबिंदु।
करत कबित्तनि करत वर, मधुर सुधा-मधु-बिंदु ॥४३॥

शब्दार्थ—वदन=मुख। इंदु—चन्द्रमा। अरबिंदु=कमल। वर=श्रेष्ठ। सुधा=अमृत। मधुर=मीठा। मधु=शहद।

भावार्थ—भोगनाथ महाराज का मुख चन्द्रमा तथा कमल के समान है, इसलिए जो कवि उनके मुख पर कविता करता है उसकी कविता को वे अमृत और मधु अर्थात् पुष्परस की बूँदों से सींच देते हैं। चन्द्रमा में अमृत रहता है और कमल में मधु। क्योंकि भोगनाथ का मुख इन दोनों के समान है इसलिए उस पर कविता लिखने वाले की कविता में अमृत और माधुर्य के समान सरसता का संचार हो जाना स्वभाविक ही है।

कौन भाँति कै बरनियै, सुंदरता नँदनंद।
तेरे मुख की भीख लै, भयौ ज्योतिमय चन्द ॥४४॥

शब्दार्थ—बरनियै=वर्णन करें। ज्योतिमय—प्रकाशमान।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण! तुम्हारी सुन्दरता का हम किस प्रकार वर्णन करें। तुम्हारी ही भीख को पाकर मानो यह चन्द्रमा प्रकाशमान हो गया है। चन्द्रमा को भी मानो तुमने अपनी ही थोड़ी-सी कांति दे दी है जिससे यह चमक रहा है। भाव यह कि तुम्हारी कांति चन्द्रमा से भी बढ़कर है।

दिन मैं सुभग सरोज है, निसि मैं सुंदर इंदु।
द्यौस राति हूँ चारु अति, तेरो बदन गोबिंदु ॥४५॥

शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। सरोज=कमल। निसि=रात्रि। इन्दु=चन्द्रमा। द्यौस=दिन। राति=रात्रि। चारु=सुन्दर।

भावार्थ—कमल तो दिन में ही खिलता और सुन्दर लगता है और चन्द्रमा रात्रि ही को चमकता है। पर हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा मुख दिन तथा रात्रि में भी दोनों ही समय सुशोभित होता रहता है। अर्थात् तुम्हारा

मुख उस कमल एवं चन्द्रमा इन दोनों से अधिक सुन्दर है।

सुनत सदा गुरु-बचन हित, रहत बिबुध गन साथ।
भोगनाथ यह जानियत, सदा भूमि-सुरनाथ ॥४६॥

शब्दार्थ—गुरु=गुरुजन। गुरुदेव=देवताओं के गुरु बृहस्पति। हित=हितकारक। बिबुध=देवता और विद्वान्। गन=समूह। भूमि=पृथ्वी। सुरनाथ=इन्द्र।

भावार्थ—महाराज भोगनाथ सदा गुरुजन रूपी देवगुरु बृहस्पति के वचन सुनते हैं और बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष रूपी देवताओं के साथ रहते हैं। इस प्रकार वे मानो पृथ्वी के देवराज इन्द्र ही हैं।

सरनागत-पालक महा, दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह, पग्यौ रहत रस-बीर ॥४७॥

शब्दार्थ—सरनागत=शरण में आया हुआ। पालक=पालना करने वाला। पग्यौ रहत=लीन रहता है या भरा रहता है।

भावार्थ—शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाले, दान और युद्ध में अत्यन्त धीर रहने वाले भोगनाथ महाराज सदा वीररस में पगे रहते हैं।

जगति जगति दोऊ भुजा, जग्य यूप कैं रूप।
भोगनाथ नरनाथ की, भौंह निहारत भूप ॥४८॥

शब्दार्थ—जगति=जगत् में, संसार में। जगति=जागता है, चमकता है। जग्य=यज्ञ। यूप=खंभा। निहारत=देखते हैं।

भावार्थ—महाराज भोगनाथ की यज्ञ के स्तम्भों के समान पवित्र दोनों भुजाएँ संसार में सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों के विनाश के लिए सदा जागती रहती हैं और राजा लोग इस आशंका से कि कहीं हमारी किसी छोटी-मोटी त्रुटि पर हम पर महाराज क्रुद्ध न हो जायँ, सदा

भोगनाथ की भौंहों की ओर देखते रहते हैं। क्योंकि मनुष्य के क्रुद्ध होते ही उसकी भौंहें तन जाती हैं।

तुरग अरब एराक के, मनि-आभरन अनूप।
भोगनाथ सौं भीख लै, भए भिखारी भूप॥ ४९॥

शब्दार्थ—**तुरग**=घोड़ा। **एराक**=ईराक देश। **मनि**=मणि रत्नादि। **आभरन**=आभूषण, गहने रत्नादि। **अनूप**=अनुपम। **भूप**=राजा।

भावार्थ—भिखारी लोग भी महाराज भोगनाथ से अरब और ईराक के घोड़े तथा अनुपम रत्न आदि आभूषण भीख में प्राप्त कर राजाओं के समान बन गये हैं।

भोगनाथ नरनाथ की, रीझ्यौ खीझ अनूप।
होत भिखारी भूप हैं, भूप भिखारी-रूप॥५०॥

शब्दार्थ—**रीझ्यौ**=प्रसन्नता। **खीझ**=क्रोध।

भावार्थ—महाराज भोगनाथ की प्रसन्नता तथा क्रोध दोनों ही बड़े अनुपम हैं। क्योंकि उसके कारण राजा तो भिखारी तथा भिखारी राजा बन जाता है। भाव यह कि भोगनाथ जिस राजा पर क्रुद्ध हो जाते हैं उसे तो भिखारी बना डालते हैं और जिस भिखारी पर प्रसन्न हो जाते हैं उसको इतना दान दे देते हैं कि उसको राजा बना देते हैं।

मुरलीधर गिरिधरन प्रभु, पीतांबर घनस्याम।
बकी-बिदारन कंस-अरि, चीर-हरन अभिराम॥५१॥

शब्दार्थ—**मुरलीधर**=वंशी को धारण करने वाले। **गिरिधरन**=गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले। **पीतांबर**=पीले वस्त्रों को धारण करने वाले। **घनस्याम**=बादलों के समान कृष्णवर्ण वाले। **बकी-बिदारन**=बकासुर का नाश करने वाले। **कंस-अरि**=कंस के शत्रु।

चीरहरन=गोपियों के वस्त्रों को हरने वाले। **अभिराम**=सुन्दर।

भावार्थ—कवि श्रीकृष्ण के नामों तथा गुणों का वर्णन करता हुआ कहता है कि श्रीकृष्ण वंशी बजाने वाले, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, पीताम्बर पहनने वाले, घन के समान श्याम वर्ण वाले, बकासुर का नाश करने वाले, कंस को मारने वाले और यमुना में नंगी नहाती हुई गोपियों के वस्त्रों को हरण करने वाले परम सुन्दर हैं।

पीत झँगुलिया पहिरि कै, लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं, ब्रजबासिन ब्रजनाथ ॥५२॥

शब्दार्थ—**पीत**=पीली। **झँगुलिया**=झग्गा, कुर्ता। **लकुटिया**=छड़ी। **ब्रजबासिन**=ब्रज में रहने वालों में। **ब्रजनाथ**=श्रीकृष्ण।

भावार्थ—श्रीकृष्ण गले में पीला झग्गा या कुर्ता पहिन कर हाथ में लाल छड़ी पकड़ कर धूल से भरे हुए अपने ब्रजवासी सखाओं के साथ खेलते थे।

तिरछी चितवनि स्याम की, लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै, यह मन-सुख बरजोर ॥५३॥

शब्दार्थ—**चितवनि**=देखना। **लसति**=शोभित होती हुई। **मन-सुख**=मन का सुख। **बरजोर**=जोर से या खूब।

भावार्थ—कवि श्रीकृष्ण से प्रार्थना करता है कि हे भगवान्! आप राधिका की ओर निहारती हुई अपनी तिरछी चितवन के दर्शन का सुख भोगनाथ महाराज को सदा प्रदान करते रहिए। भाव यह है कि भोगनाथ महाराज राधिका की ओर निहारते हुए आपके सदा दर्शन करते रहें।

मेरी मति मैं राम हैं, कबि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं, चित मेरैं आराम ॥५४॥

शब्दार्थ—**मति**=बुद्धि। **आराम**=चारों ओर से राम बसे हुए हैं।

भावार्थ—कवि मतिरामजी कहते हैं कि मेरी बुद्धि में सदा राम बसे हुए हैं। मेरे चित्त में बड़ा आराम या शान्ति है और मेरे मन में चारों ओर से भगवान् राम व्याप्त हो रहे हैं।

रोस न करि जौ तजि चल्यौ, जानि अँगार गँवार।
छिति-पालनि की माल मैं, तैंहीं लाल सिंगार ॥५५॥

शब्दार्थ—रोस=क्रोध। तजि चल्यौ=छोड़ गया। जानि=जान कर, समझ कर। अँगार=आग का अंगारा। छितिपालनि=छितिपाल, राजा।

भावार्थ—हे लाल—एक प्रकार के अमूल्य रत्न! यदि तुझे कोई गँवार मनुष्य, जो तेरे गुणों को नहीं पहचानता, छोड़कर चला भी गया तो भी कुछ बुरा मत मान; क्योंकि गँवार लोग भले ही तेरा कोई आदर न करें पर राजाओं के मुकुटों का तो तू ही शृंगार है। भाव यह है कि किसी विद्वान् गुणी व्यक्ति का कोई मूर्ख यदि आदर न भी करे तो भी उसे दुखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि समझदार लोग तो उसका सदा सम्मान ही करेंगे।

देखैं हूँ विन देखि हूँ, लगी रहै अति आस।
कैसेहूँ न बुझाति है, ज्यौं सपने की प्यास ॥५६॥

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि प्रियतम श्रीकृष्ण को यदि देखती हैं तो भी उनको और अधिक देखते रहने की इच्छा बनी रहती है और यदि वे नहीं दीखते हैं तो इच्छा का बना रहना स्वाभाविक ही है। जिम प्रकार स्वप्न की प्यास किसी प्रकार नहीं बुझती वैसे ही प्रियतम के दर्शन की लालसा भी उन्हें देखें या न देखें दोनों ही अवस्था में बनी रहती है।

तरु ह्वै रह्यौ करार कौ, अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार कौ, चरन-कमल सुकुमार ॥५७॥

शब्दार्थ—**तरु**=वृक्ष । **ह्वै रह्यौ**=होगया । **करार**=किनारा। **करार**=प्रतिज्ञा । **उर**=हृदय । **धरि**=धारण कर। **नन्दकुमार**= श्रीकृष्ण। **सुकुमार**=अत्यन्त कोमल।

भावार्थ—कवि मतिराम संसारी प्राणियों को विशेषतः बूढ़ों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे वृद्ध मनुष्यो ! अब तुम नदी किनारे के वृक्ष हो गये हो। तुम अब लोगों के साथ और कितनी नई-नई प्रतिज्ञाएँ करते रहोगे कि हम यह करेंगे और वह करेंगे। अब तुम्हें चाहिए कि तुम संसारी धन्धों को छोड़कर श्रीकृष्ण के सुकोमल चरणों का अपने हृदय में ध्यान धरो।

तनु आगैं कौं चलतु है, मन वाही मग लीन।
सलिल सोत मैं ज्यौं चपल, चलत चढ़ाऊ मीन।।५८।।

शब्दार्थ—**तनु**=शरीर । **मग**=मार्ग । **लीन**=लगा हुआ है। **सलिल**=जल । **सोत**=स्रोत, प्रवाह । **चपल**=चचल। **चढ़ाऊ**= पानी में ऊपर की ओर जाने वाली। **मीन**=मछली।

भावार्थ—शरीर तो आगे की ओर जाता है पर मन उसी अपने प्रियतम की ओर पीछे लगा रहता है, जैसे नदी के पानी का प्रवाह आगे की ओर बढ़ता है किन्तु चंचल चढ़ाऊ मछली उस प्रवाह के विरुद्ध जिधर से पानी आ रहा है उधर की ओर चढ़ती जाती है।

वृन्द

परिचय

जन्म-सवत् १७४८ के लगभग

यह औरंगजेब के दरबारी कवि थे। औरंगजेब के पौत्र अजीमुश्शान के साथ यह बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक गये। ढाके में इन्होंने अपनी दृष्टान्त-सतसई अर्थात् वृन्द-विनोद-सतसई संवत् १७६१ में लिखी। यूं तो इनकी दो पुस्तकें भाव-पंचाशिका और शृंगार-शिक्षा भी प्रसिद्ध हैं, पर जो ख्याति इन्होंने उक्त प्रथम पुस्तक से प्राप्त की वह अन्य पुस्तकों से नहीं। सतसई की रचना के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं लिखा है—

समय सारि दो हानि को, सुनत होय मनमोद।
प्रगट भई, वह सतसई, भाषा वृन्द विनोद॥

अति उदार रिझवार जग, शाह अज़ीमुश्शान।
सतसैया सुनि वृन्द को, कीनौ अति सनमान॥

संवत् ससि-रस-वार-ससि, कातिक सुदि ससि वार।
याते ढाका सहर में, उपज्यो येह विचार॥

कृष्णगढ़ महाराज राजसिंह वृन्द से बहुत प्रेम करते थे। वह इन्हें गुणवान् मानते थे। वन्द के वंशज अब भी कृष्णगढ़ में रहते हैं।

वृन्द के जन्म और मृत्यु का ठीक निर्णय नहीं हो सका। लगभग संवत् १७४८ का अनुमान किया जाता है। वृन्द के दोहे बहुत ही सरस और शीघ्र कंठस्थ हो जाने वाले हैं। इन पर संस्कृत-कविता की छाप गहराई से मिलती है। इनके दोहे बड़े ही शिक्षाप्रद हैं।

दोहे

सार और आलोचना

जो भाग्य ही प्रतिकूल हो तो उद्यम करने से कुछ नहीं बनता—केवल इस प्रकार की उक्तियाँ कही ही नहीं, प्रत्युत दृष्टान्तों द्वारा सिद्ध भी कर दिया है कि परिश्रम द्वारा हरे-भरे बनाये हुए खेत को टिड्डीदल निर्मूल कर देता है।

दोहों में सांसारिक अनुभूति की पुट है। इन सभी दोहों में जीवन का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। आपके उपदेशात्मक दोहों को अपना लेने से मनुष्य जीवन में असफल नहीं हो सकता। मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ही काम करना चाहिए तभी वह जीवन-क्षेत्र में सफल हो सकता है। "सब साधे सब जाय" वाली उक्ति पर मनन करने से मानव सफल हो सकता है। आपके दोहे सज्जीवन का निर्माण करने वाले हैं।

श्री गुरुनाथ प्रभाव तें, होत मनोरथ सिद्धि।
घन तैं ज्यों तरु बेलि दल, फूल फलन की बृद्धि ॥१॥

शब्दार्थ—**घन**=बादल। **तरु**=वृक्ष। **बेलि**=बेल। **दल**=पत्ते। **बृद्धि**=बढ़ते।

भावार्थ=श्री गुरुदेव के प्रभाव से मनुष्य के सभी मनोरथ इस प्रकार सिद्ध हो जाते हैं जैसे बादल की वर्षा से वृक्ष, बेल, पत्ते, फल, फूल—सभी बढ़ते हैं।

कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत को, करैं सलभ निरमूल ॥२॥

शब्दार्थ—**उद्यम**=पुरुषार्थ। **प्रतिकूल**=विरुद्ध। **सलभ**=टिड्डियाँ। **निरमूल**=जड़ से रहित, नष्ट।

भावार्थ—यदि भगवान् ही विरुद्ध हैं तो पुरुषार्थ करने से ही क्या बनेगा। जैसे कि यदि भाग्य अनुकूल नहीं है तो उपजे उपजाये खेत को टिड्डियाँ नष्ट कर डालती हैं। भाव यह कि पुरुषार्थ से भाग्य बड़ा है।

जो जाको गुन जानहीं, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी लेत ॥३॥

शब्दार्थ—**कोकिल**=कोयल। **अम्ब**=आम। **काग**=कौआ। **निबौरी**=नीम की निबोली।

भावार्थ—जो जिसके गुण जानता है वही उसका मान करता है दूसरा नहीं। जैसे कि कोयल आम के गुण को जानती है इसलिए वह आम ही का रस लेती है। पर कौआ तो नीम की निबोली ही लेगा। भाव यह कि विद्वान् पुरुष ही गुणियों के गुणों को जानता है, मूर्ख नहीं।

रहत समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त हैं, वृक्ष बराबर बेल ॥४॥

शब्दार्थ—**समीप**=पास।

भावार्थ—बड़े मनुष्यों के साथ रहने से बहुत अधिक लाभ होता है, जैसे कि इस बात को सभी जानते हैं कि बेल भी वृक्ष के बराबर ही बढ़ती है।

भाव यह कि जितना ऊँचा वृक्ष होता है बेल भी उतनी ऊँची चली जाती है। वृक्ष यदि छोटा होगा तो बेल भी छोटी रह जायगी, वृक्ष बड़ा होगा तो बेल भी बढ़ती जायगी। उसी प्रकार मनुष्य यदि अच्छों की संगति करेगा तो अच्छा बन जायगा और बुरों में बैठेगा तो बुरा हो जायगा।

मान होत है गुननि तें, गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखैं सबै, काग न राखे कोइ ॥५॥

शब्दार्थ—**सुक**=तोता। **सारी**=सारिका, मैना। **काग**=कौआ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि संसार में किसी मनुष्य का मान उसके गुणों से ही होता है। बिना गुणों के कोई किसी का मान नहीं करता। जैसे कि तोते और मैना को सब पालते हैं, क्योंकि उनमें मधुर वाणी से बोलने का गुण है। इसके विपरीत कौआ कठोर वाणी बोलता है, उसमें कोई गुण नहीं है। इसलिए उसका कोई आदर भी नहीं करता।

जैसे गुन दीनो दई, तैसों रूप निबन्ध।
ए दोऊ कहँ पाइये, सोनौ और सुगन्ध ॥६॥

शब्दार्थ—**दई**=दैव, विधाता। **निबन्ध**=बन्धन।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि भगवान् मनुष्य को जैसे गुण देते हैं वैसी सुन्दरता नहीं देते। जिसको सुन्दरता देते हैं उसको वैसे विद्या-बुद्धि आदि गुण नहीं देते। जैसे कि सोना तथा सुगन्ध ये दोनों एक स्थान पर कभी नहीं मिल सकते। भाव यह है कि विद्या आदि गुण और सुन्दरता एक-साथ बहुत कम मिलती हैं।

तउ गुनहीन मनाइयै, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तउ, आग न आनत कौन ॥७॥

शब्दार्थ—**भौन**=भवन, घर। **सुख भौन**=सुख का घर, सुख देने वाला। **तउ**=तो भी। **आनत**=लाता है।

भावार्थ—चाहे मनुष्य गुणहीन क्यों न हो तो भी यदि वह हमारे जीवन के लिए सुखदायक है तो उसे मना ही लेना चाहिए; उसका आदर-सत्कार करना ही चाहिए। जैसे कि आग शहर को जला देती है

फिर भी आग क्योंकि हमारे काम की है उसे घर में कौन नहीं रखता अर्थात् सभी रखते हैं।

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देत जराय ॥८॥

शब्दार्थ—**अति**=अधिक। **परिचै**=परिचय, जान-पहचान। **अरुचि**=लापरवाही। **अनादर**=अपमान। **मलयागिरि**=मलयाचल। **भीलनी**=लकड़ियाँ बेचने वाली जंगली जाति की स्त्री।

भावार्थ—अत्यधिक जान-पहचान या साथ रहने से गुणवान् व्यक्ति के प्रति भी मनुष्य के हृदय में उपेक्षा और अनादर के भाव आ जाते हैं जैसे कि मलयाचल पर्वत पर रहने वाली भीलनी चन्दन को भी जला देती है; क्योंकि वहाँ चन्दन अधिक उत्पन्न होता है। भाव यह कि अधिक साथ रहने पर मनुष्य के हृदय में वैसा आदर नहीं रहता।

भाव सरस समझत सबै, भले लगैं यह भाय।
जैसे अवसर की कही, बानी सुनत सुहाय ॥९॥

शब्दार्थ—**अवसर**=समय, मौका। **सुहाय**=अच्छी लगे।

भावार्थ—हमें यह विचार अच्छा लगता है कि सरस भाव को सभी बड़े प्रेम से समझ लेते हैं, जिस प्रकार मौके पर कही हुई बात सभी को अच्छी लगती है।

नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात ॥१०॥

भावार्थ—यदि उचित अवसर का विचार किये बिना अच्छी भी बात कही जाय तो भी अच्छी नहीं लगती, जैसे कि युद्ध में शृंगार रस की बातें अच्छी नहीं लगतीं।

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कों, दीपहि देत बुझाय॥११॥

शब्दार्थ—सबल=बलवान्। **पवन**=हवा।

भावार्थ—सभी बलवान् के सहायक होते हैं, कमज़ोर का कोई सहायक नहीं बनता। जैसे कि हवा आग—जो बलवान् (तेज़) होती है उसे तो भड़काती है, पर विचारे निर्बल दीपक को वही हवा बुझा देती है। भाव यह कि कमज़ोर का कोई मित्र नहीं।

जो जाही को ह्वै रहै, सो तिहि पूरे आस।
स्वाति बूँद बिनु सघन मैं, चातक मरत पियास॥१२॥

शब्दार्थ—चातक=पपीहा। **स्वाति बूंद**=स्वाति नक्षत्र के समय की वर्षा।

भावार्थ—जो जिसका बन कर रहता है वही उसकी आशा पूरी करता है। जैसे स्वाति नक्षत्र की बूँद के बिना पपीहा प्यासा ही मरता है किन्तु स्वाति नक्षत्र ही उसकी आशा पूरी करता है।

जाही तैं कछु पाइये, करियै ताकी आस।
रीते सरबर पै गए, कैसे बुझत पियास॥१३॥

शब्दार्थ—रीते=खाली। **सरबर**=तालाब।

भावार्थ—जिस व्यक्ति से हमें कुछ प्राप्त होने की आशा हो उसी के पास जाना चाहिए और उसी से आशा करनी चाहिए जैसे कि यदि कोई प्यासा मनुष्य खाली तालाब पर पानी की आशा से जायगा तो उसे भला वहाँ पानी कहाँ से मिलेगा! वहाँ तो उसे प्यासा ही मरना पड़ेगा।

अपनी पहुँच विचारिकै, करतब करियै दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥१४॥

शब्दार्थ—जेते=जितनी। **तेते**=उतने। **सौर**=चादर।

भावार्थ—जहाँ तक अपनी पहुँच हो वहीं तक सोच-समझकर अपनी

शक्ति के अनुसार कार्य करना चाहिए। जैसे कहावत है कि पाँव उतने ही लम्बे फैलाने चाहिएँ जितनी लम्बी चादर हो।

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घटि जाय ॥१५॥

शब्दार्थ—प्रीति=प्रेम। छीलर=छोटा। ताल=तालाब।

भावार्थ—नीच पुरुष की प्रीति की यही रीत बताई है कि जैसे छोटे तालाब का पानी घटते-घटते बिल्कुल घट जाता है वैसे ही नीच पुरुष का प्रेम भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

रस अनरस समझै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मंत्र न जानई, साँप पिटारे हाथ ॥१६॥

शब्दार्थ—बीछू=बिच्छू।

भावार्थ—यह मूर्ख 'क्या रस है और क्या रस नहीं है' इस बात को तो जानते ही नहीं और प्रेम की बातें करते फिरते हैं। यह तो वैसी ही बात है, जैसे कोई बिच्छू का तो मन्त्र जानता नहीं और साँप के पिटारे में हाथ डालता है।

कछु सहाय न चलि सकै, होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहाँ, भौ कुरुवंस-विनास ॥१७॥

शब्दार्थ—सहाय=बस, चारा। कुरुवंस=कौरव व पांडवों का बंश। विनास=नाश।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि होनहार या भाग्य पर किसी का बश नहीं चलता। जैसे कि भीष्म और युधिष्ठिर जैसे वीरों और गुणियों के रहते हुए भी कौरवों और पांडवों के वंश को कोई न बचा सका। अन्त में उनका नाश हो ही गया। भाव यह है कि भाग्य के लिखे को कोई नहीं टाल सकता। भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने वंश के नाश को न

रोक सके तो दूसरे की तो शक्ति ही क्या है कि वह भाग्य को मिटा सके।

होय बुराई तें बुरी, यह कीनौ निरधार।
खाड़ खनैगो और कौ, ताको कूप तयार ॥१८॥

शब्दार्थ—**निरधार**=निश्चय। **खाड़**=खड्डा। **खनैगो**=खोदेगा। **कूप**=कूआँ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि दूसरों का बुरा करने से तुम्हारा भी बुरा होगा। इस बात को निश्चित रूप से समझ लो। बात तो यह है कि जो आदमी दूसरों के लिए खड्डा खोदेगा उसके अपने लिए कूआँ पहले ही से तैयार हो जायगा। भाव यह है कि कभी किसी का अनिष्ट या बुरा नहीं करना चाहिए; क्योंकि दूसरे का बुरा करने वाले या सोचने वाले का अपना बुरा पहले हो जाता है।

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, पोखै राखै ओट।
सरपहि केतौ हित करौ, चुपै चलावै चोट ॥१९॥

शब्दार्थ—**छाँड़ै**=छोड़े या छोड़ता है। **पोखै**=पालन-पोषण करे। **राखै ओट**=अपने आश्रय में लेकर रक्षा करे। **सरपहि**=साँप को। **केतौ**=कितना ही। **हित करौ**=प्यार करो। **चुपै**=चुपचाप।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता चाहे कोई उसका कितना ही पालन-पोषण क्यों न करे और अपने आश्रय में भी क्यों न रख ले। जैसे साँप को चाहे कोई कितना ही प्यार क्यों न करे वह मौका पाकर चुपचाप उस पर चोट चला ही देगा।

अपनी अपनी ठौर पर, सोभा लहत विसेष।
चरन महावर ही भलौ, नैनन अंजन-रेख ॥२०॥

शब्दार्थ—**ठौर**=स्थान। **लहत**=प्राप्त करते हैं। **रेख**=रेखा।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि सभी वस्तुएँ अपने-अपने स्थान पर ही शोभा देती हैं, जैसे कि पैरों में लगाने की लाली महावर पाँव में ही और आँखों में लगाने का अंजन आँखों में ही शोभा देता है।

जो समझै जा बात कौं, सो तिहिं कहै विचार।
रोग न जानै ज्योतिषी, वैद्य ग्रहन की चार ॥२१॥

भावार्थ—जो मनुष्य जिस बात को समझता है वही उस विषय की बात को विचार कर कह सकता है। सब कोई सभी बातें नहीं बता सकते। जैसे कि ज्योतिषी रोग को नहीं जानता और वैद्य ग्रहों की गति नहीं बता सकता।

कुल बल जैसौ होय सो, तैसी करिहै बात।
बनिक-पुत्र जाने कहा, गढ़ लैवे की घात ॥२२॥

शब्दार्थ—बनिक=बनिया, व्यापारी। **लैवे की**=लेने की। **घात**=उपाय।

भावार्थ—जिसके कुल की जैसी शक्ति हो उसे वैसी ही बात करनी चाहिए। जैसे कि व्यापारी बनियों के पुत्र भला बड़े-बड़े किलों या गढ़ों के जीतने की बात क्या जान सकते हैं? बनियों का कार्य युद्ध विजय करना नहीं है। यदि वे युद्ध की बातें करेंगे तो यह उनके योग्य न होगा।

फेर न ह्वैहै कपट सों, जो कीजै ब्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥२३॥

शब्दार्थ—दूजी=दुबारा।

भावार्थ—कपट से किया हुआ कार्य कभी दुबारा नहीं हो सकता। काठ की हाँडी (आग पर) दुबारा कभी नहीं चढ़ सकती क्योंकि वह तो पहली बार में ही जल जायगी। भाव यह कि मनुष्य दूसरे को एक बार धोखा दे सकता है बार-बार नहीं।

नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निरमल आरसी, भली बुरी कह देत ॥२४॥

शब्दार्थ—आरसी=दर्पण।

भावार्थ—मनुष्य के हृदय के प्रेम-भाव या द्वेष को आँखें स्वयं वैसे ही बता देती हैं जैसे कि निर्मल दर्पण मुख की भलाई-बुराई—मुख के स्वच्छता या मलिनता आदि सब भावों—को स्पष्ट बता देता है।

अति हठ मत कर हठ बढ़ै, बात न करिहै कोय।
ज्यों ज्यों भीजे कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥२५॥

शब्दार्थ—कामरी=कम्बल।

भावार्थ—बहुत अधिक हठ नहीं करना चाहिए; क्योंकि अधिक हठ करने से कोई बात नहीं पूछेगा। कहावत है कि कम्बल ज्यों-ज्यों भीगता जाता है त्यों-त्यों भारी होता है। भाव यह कि मनुष्य को किसी भी बात को पकड़ कर नहीं बैठ जाना चाहिए।

लालच हूँ ऐसो भलौ, जासों पूरे आस।
चाटेहूँ कहुँ ओस के, मिटे काहु की प्यास ॥२६॥

शब्दार्थ—चाटेहूँ=चाटने पर।

भावार्थ—लोभ भी ऐसा करना चाहिए जिससे आशा पूरी हो जाय। कहीं ओस के चाटने पर भी किसी की प्यास बुझ सकती है अर्थात् कभी नहीं बुझती। भाव यह कि तुच्छ वस्तुओं का लालच नहीं करना चाहिए।

एक भलै सब को भलौ, देखौ सबद विवेक।
जैसे सत हरिचंद के, उधरै जीव अनेक ॥२७॥

शब्दार्थ—विवेक=ज्ञान।

भावार्थ—एक मनुष्य के अच्छा या श्रेष्ठ होने से सब मनुष्यों का

भला हो जाता है—इस ज्ञान-युक्त शब्द-वाणी को उसी भांति विचार कर देख लो, जैसे कि एक महाराज हरिश्चन्द्र की श्रेष्ठता के कारण उनकी सारी प्रजा का उद्धार हो गया। कहते हैं कि जब हरिश्चन्द्र सशरीर स्वर्ग में गये तो अपने प्रजाजनों को भी साथ ही स्वर्ग में ले गये। यहाँ इसी कथा की ओर संकेत है।

बड़ेन पै जाँचे भलौ, जदपि होत अपमान।
गिरत दन्त गिर ढार तें, गज के तऊ बखान ॥२८॥

शब्दार्थ—जाँचे=प्रार्थना करें—माँगना। जदपि=यद्यपि, चाहे। दन्त=दाँत। गिर=पर्वत। गज=हाथी। बखान=प्रशंसा।

भावार्थ—बड़े आदमियों से प्रार्थना करते या माँगते हुए चाहे अपमान ही क्यों न हो जाय तो भी कुछ बुरा नहीं। जैसे कि पहाड़ों से टक्कर लगाते हुए यदि हाथी के दाँत भी टूट जायँ तब भी उसकी प्रशंसा ही होती है।

प्रकृत मिले मन मिलत हैं, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, काँजी ते फटि जाय ॥२९॥

शब्दार्थ—प्रकृत=प्रकृति–स्वभाव। अनमिलते=बेमेल। जमत है=जमता है।

भावार्थ—दो व्यक्तियों का स्वभाव मिलने पर ही मन मिलता है। जिनका स्वभाव नहीं मिलता उनका मन कभी नहीं मिलता। जैसे कि चाहे दही और काँजी दोनों ही खट्टे हैं फिर भी दही और दूध का स्वभाव आपस में मिलता है, इसलिए दही से तो दूध जम जाता है, पर काँजी और दूध का स्वभाव न मिलने के कारण काँजी पड़ने से दूध फट जाता है।

उत्तम जन की होड़ करि, नीच न होत रसाल।
कौवा कैसे चल सकै, राजहंस की चाल ॥३०॥

शब्दार्थ—जन=मनुष्य। होड़ करि=समता करके। रसाल=सुन्दर, श्रेष्ठ।

भावार्थ—नीच मनुष्य चाहे बड़े आदमियों की बराबरी क्यों न कर ले, किंतु वह उनके समान बड़ा नहीं हो सकता। भला, कौआ राजहंस की चाल कैसे चल सकता है! जैसे कौआ हंस नहीं हो सकता वैसे ही नीच पुरुष भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

एक भेष के आसरे, जाति बरन छिप जात।
ज्यों हाथी के पाँव में, सब को पाँव समात ॥३१॥

शब्दार्थ—भेष=वेश-भूषा। आसरे=सहारे। बरन=वर्ण, जाति।

भावार्थ—एक वेश के सहारे ही मनुष्य के सब अवगुण छिप जाते हैं। कहावत भी है कि हाथी के पाँव में सबके पाँव समा जाते हैं। भाव यह है कि किसी व्यक्ति ने यदि सुन्दर वस्त्र पहने हुए हैं तो उसमें चाहे कोई दोष भी क्यों न हो, वे सब छिप जाते हैं। दूसरे मनुष्यों पर तो पहले-पहल वेशभूषा का ही असर पड़ता है अथवा वेश का अर्थ साधुवेश भी कर सकते हैं। जब मनुष्य साधुओं का भगवा वेश धारण कर लेता है तो उसके सब गुणावगुण छिप जाते हैं।

जिहिं देखे लाँछन लगै, तासों दृष्टि न जोर।
ज्यों कोऊ चितवै नहिं, चौथ चंद की ओर ॥३२॥

शब्दार्थ—जिहिं=जिसे। लाँछन=कलंक। दृष्टि=नज़र। चितवै=देखे।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि जिसको देखकर मनुष्य को कलंक लगने की सम्भावना हो, उससे कभी आँख नहीं मिलानी चाहिए अर्थात् नीच पुरुषों से मेल-मिलाप नहीं रखना चाहिए। जैसे कि चौथ के चाँद को देखने से कलंक लगता है, इसीलिए उसे कोई नहीं देखता।

मूरख कौं हित के वचन, सुनि उपजतु है कोप।
साँपहि दूध पिबाइयै, वाके मुख विष ओप ॥३३॥

शब्दार्थ—हित के=भले के। उपजतु है=उत्पन्न होता है। पिबाइयै=पिलायें। वाके=उसके। विष=ज़हर। ओप=चमक।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति को हितकारक वचन ही क्यों न सुनायें, उनसे भी उसे क्रोध ही आता है। जैसे कि साँप को चाहे दूध भी पिलाओ फिर भी उसके मुख में तो विष ही हो जायगा। भाव यह है कि मूर्ख को भले की बात भी बुरी लगती है।

रूखे सूखे उदर कौं, भरे होतु संतुष्ट।
ये मन लाख करोरि के, पावैं तुष्ट न दुष्ट ॥३४॥

शब्दार्थ—उदर=पेट। संतुष्ट=प्रसन्न। करोरि=करोड़ों (रुपये)।

भावार्थ—यह बेचारा पेट तो रूखे सूखे चाहे जैसे भी अन्न से भर जाय तो सन्तुष्ट हो जाता है, किन्तु यह मन ऐसा दुष्ट है कि इसे लाखों-करोड़ों रुपये क्यों न मिल जायँ, फिर भी यह सन्तुष्ट नहीं होता।

विद्या बिन न बिराजहीं, जदपि सरूप कुलीन।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू बास बिहीन ॥३५॥

शब्दार्थ—बिराजहीं=शोभित होते हैं। सरूप=सुन्दर रूप वाले। कुलीन=अच्छे कुल वाले। टेसू=पलाश के फूल। बास=सुगन्धि।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना ही सुन्दर और ऊँचे कुल का क्यों न हो, पर यदि उसमें विद्या नहीं है—वह विद्वान् नहीं है, तो उसकी कहीं शोभा नहीं हो सकती। जैसे कि टेसू के फूल चाहे कितने ही सुन्दर रंग वाले क्यों न हों, सुगन्धि न आने के कारण वे कुछ भी शोभा नहीं पाते। भाव यह है कि चाहे मनुष्य कितना ह

सुन्दर और धनी क्यों न हो उसे विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। विद्या के बिना सब व्यर्थ है।

एकहि भले सुपुत्र तैं, सब कुल भलौ कहाय।
सरस सुवासित वृक्ष तैं, ज्यौं बन सकल बसाय॥३६॥

शब्दार्थ—**सरस**=रसीला। **सुवासित**=सुगन्धित। **सकल**=सारा। **बसाय**=सुगन्धित हो जाता है।

भावार्थ—एक ही अच्छे सुपुत्र से सारा कुल अच्छा कहलाता है, सारे कुल की शोभा बढ़ जाती है जैसे कि अकेले ही सरस-सुगन्धित वृक्ष से सारा वन सुगन्धित हो जाता है। भाव यह कि योग्य गुणी पुत्र चाहे एक भी क्यों न हो वह एक ही अच्छा है; पर कुपुत्र चाहे बहुत से भी क्यों न हों किसी काम के नहीं।

जहाँ रहै गुनवंत नर, ताकी सोभा होत।
जहाँ धरैं दीपक तहाँ, निहचै करै उदोत॥३७॥

शब्दार्थ—**गुनवंत**=गुण वाला। **ताकी**=उसकी। **निहचै**=निश्चय से। **उदोत**=प्रकाश।

भावार्थ—जिस स्थान में गुणवान् मनुष्य रहता है, उससे उसी स्थान की शोभा होती है अथवा गुणी मनुष्य जहाँ भी रहे वहीं उसकी शोभा होती है, जैसे कि दीपक को जहाँ भी रखेंगे, वह वहीं प्रकाश कर देगा। भाव यह कि गुणी विद्वान् पुरुषों का सर्वत्र आदर होता है।

बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पै लीन।
तिय-नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन॥३८॥

शब्दार्थ—**तऊ**=तो भी। **लीन**=लगा हुआ। **तिय**=स्त्री। **नीको**=अच्छा। **मलीन**=मैला।

भावार्थ—चाहे कोई बुरी वस्तु भी क्यों न हो, पर यदि वह अच्छे

भला हो जाता है—इस ज्ञान-युक्त शब्द-वाणी को उसी भांति विचार कर देख लो, जैसे कि एक महाराज हरिश्चन्द्र की श्रेष्ठता के कारण उनकी सारी प्रजा का उद्धार हो गया। कहते हैं कि जब हरिश्चन्द्र सशरीर स्वर्ग में गये तो अपने प्रजाजनों को भी साथ ही स्वर्ग में ले गये। यहाँ इसी कथा की ओर संकेत है।

बड़ेन पै जाँचे भलौ, जदपि होत अपमान।
गिरत दन्त गिर ढार तें, गज के तऊ बखान ॥२८॥

शब्दार्थ—**जाँचे**=प्रार्थना करें—माँगना। **जदपि**=यद्यपि, चाहे। **दन्त**=दाँत। **गिर**=पर्वत। **गज**=हाथी। **बखान**=प्रशंसा।

भावार्थ—बड़े आदमियों से प्रार्थना करते या माँगते हुए चाहे अपमान ही क्यों न हो जाय तो भी कुछ बुरा नहीं। जैसे कि पहाड़ों से टक्कर लगाते हुए यदि हाथी के दाँत भी टूट जायँ तब भी उसकी प्रशंसा ही होती है।

प्रकृत मिले मन मिलत हैं, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, काँजी ते फटि जाय ॥२९॥

शब्दार्थ—**प्रकृत**=प्रकृति-स्वभाव। **अनमिलते**=बेमेल। **जमत है**=जमता है।

भावार्थ—दो व्यक्तियों का स्वभाव मिलने पर ही मन मिलता है। जिनका स्वभाव नहीं मिलता उनका मन कभी नहीं मिलता। जैसे कि चाहे दही और काँजी दोनों ही खट्टे हैं फिर भी दही और दूध का स्वभाव आपस में मिलता है, इसलिए दही से तो दूध जम जाता है, पर काँजी और दूध का स्वभाव न मिलने के कारण काँजी पड़ने से दूध फट जाता है।

उत्तम जन की होड़ करि, नीच न होत रसाल।
कौवा कैसे चल सकै, राजहंस की चाल ॥३०॥

शब्दार्थ—**जन**=मनुष्य। **होड़ करि**=समता करके। **रसाल**=सुन्दर, श्रेष्ठ।

भावार्थ—नीच मनुष्य चाहे बड़े आदमियों की बराबरी क्यों न कर ले, किंतु वह उनके समान बड़ा नहीं हो सकता। भला, कौआ राजहंस की चाल कैसे चल सकता है! जैसे कौआ हंस नहीं हो सकता वैसे ही नीच पुरुष भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

एक भेष के आसरे, जाति बरन छिप जात।
ज्यों हाथी के पाँव में, सब को पाँव समात॥३१॥

शब्दार्थ—**भेष**=वेश-भूषा। **आसरे**=सहारे। **बरन**=वर्ण, जाति।

भावार्थ—एक वेश के सहारे ही मनुष्य के सब अवगुण छिप जाते हैं। कहावत भी है कि हाथी के पाँव में सबके पाँव समा जाते हैं। भाव यह है कि किसी व्यक्ति ने यदि सुन्दर वस्त्र पहने हुए हैं तो उसमें चाहे कोई दोष भी क्यों न हो, वे सब छिप जाते हैं। दूसरे मनुष्यों पर तो पहले-पहल वेशभूषा का ही असर पड़ता है अथवा वेश का अर्थ साधुवेश भी कर सकते हैं। जब मनुष्य साधुओं का भगवा वेश धारण कर लेता है तो उसके सब गुणावगुण छिप जाते हैं।

जिहिं देखे लाँछन लगै, तासों दृष्टि न जोर।
ज्यों कोऊ चितवै नहिं, चौथ चंद की ओर॥३२॥

शब्दार्थ—**जिहिं**=जिसे। **लाँछन**=कलंक। **दृष्टि**=नज़र। **चितवै**=देखे।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि जिसको देखकर मनुष्य को कलंक लगने की सम्भावना हो, उससे कभी आँख नहीं मिलानी चाहिए अर्थात् नीच पुरुषों से मेल-मिलाप नहीं रखना चाहिए। जैसे कि चौथ के चाँद को देखने से कलंक लगता है, इसीलिए उसे कोई नहीं देखता।

मूरख कौं हित के वचन, सुनि उपजतु है कोप ।
साँपहि दूध पिबाइयै, वाके मुख विष ओप ।।३३।।

शब्दार्थ—हित के=भले के । उपजतु है=उत्पन्न होता है। **पिबाइयै**=पिलायें । **वाके**=उसके । **बिष**=ज़हर । **ओप**= चमक ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति को हितकारक वचन ही क्यों न सुनायें, उनसे भी उसे क्रोध ही आता है । जैसे कि साँप को चाहे दूध भी पिलाओ फिर भी उसके मुख में तो विष ही हो जायगा। भाव यह है कि मूर्ख को भले की बात भी बुरी लगती है।

रूखे सूखे उदर कौं, भरे होतु संतुष्ट ।
ये मन लाख करोरि के, पावैं तुष्ट न दुष्ट ।।३४।।

शब्दार्थ—**उदर**=पेट। **संतुष्ट**=प्रसन्न। **करोरि**=करोड़ों (रुपये) ।

भावार्थ—यह बेचारा पेट तो रूखे सूखे चाहे जैसे भी अन्न से भर जाय तो सन्तुष्ट हो जाता है, किन्तु यह मन ऐसा दुष्ट है कि इसे लाखों-करोड़ों रुपये क्यों न मिल जायँ, फिर भी यह सन्तुष्ट नहीं होता ।

विद्या बिन न बिराजहीं, जदपि सरूप कुलीन ।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू बास बिहीन ।।३५।।

शब्दार्थ—**बिराजहीं**=शोभित होते हैं । **सरूप**=सुन्दर रूप वाले । **कुलीन**=अच्छे कुल वाले । **टेसू**=पलाश के फूल । **बास**=सुगन्धि ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना ही सुन्दर और ऊँचे कुल का क्यों न हो, पर यदि उसमें विद्या नहीं है—वह विद्वान् नहीं है, तो उसकी कहीं शोभा नहीं हो सकती । जैसे कि टेसू के फूल चाहे कितने ही सुन्दर रंग वाले क्यों न हों, सुगन्धि न आने के कारण वे कुछ भी शोभा नहीं पाते । भाव यह है कि चाहे मनुष्य कितना ह

सुन्दर और धनी क्यों न हो उसे विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। विद्या के बिना सब व्यर्थ है।

एकहि भले सुपुत्र तैं, सब कुल भलौ कहाय।
सरस सुवासित वृक्ष तैं, ज्यौं बन सकल बसाय ॥३६॥

शब्दार्थ—सरस=रसीला। सुवासित=सुगन्धित। सकल=सारा। बसाय=सुगन्धित हो जाता है।

भावार्थ—एक ही अच्छे सुपुत्र से सारा कुल अच्छा कहलाता है, सारे कुल की शोभा बढ़ जाती है जैसे कि अकेले ही सरस-सुगन्धित वृक्ष से सारा बन सुगन्धित हो जाता है। भाव यह कि योग्य गुणी पुत्र चाहे एक भी क्यों न हो वह एक ही अच्छा है; पर कुपुत्र चाहे बहुत से भी क्यों न हों किसी काम के नहीं।

जहाँ रहै गुनवंत नर, ताकी सोभा होत।
जहाँ धरै दीपक तहाँ, निहचै करै उदोत ॥३७॥

शब्दार्थ—गुनवंत=गुण वाला। ताकी=उसकी। निहचै=निश्चय से। उदोत=प्रकाश।

भावार्थ—जिस स्थान में गुणवान् मनुष्य रहता है, उससे उसी स्थान की शोभा होती है अथवा गुणी मनुष्य जहाँ भी रहे वहीं उसकी शोभा होती है, जैसे कि दीपक को जहाँ भी रखेंगे, वह वहीं प्रकाश कर देगा। भाव यह कि गुणी विद्वान् पुरुषों का सर्वत्र आदर होता है।

बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पै लीन।
तिय-नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन ॥३८॥

शब्दार्थ—तऊ=तो भी। लीन=लगा हुआ। तिय=स्त्री। नीको=अच्छा। मलीन=मैला।

भावार्थ—चाहे कोई बुरी वस्तु भी क्यों न हो, पर यदि वह अच्छे

स्थान पर हो तो वह अच्छी लगती है जैसे कि काजल चाहे काला है, पर जब वह किसी सुन्दरी की आँखों में लग जाता है तो सुन्दर दिखाई देने लगता है। भाव यह है कि अच्छे स्थान पर रहने से ही मनुष्य की शोभा होती है।

काहू को हँसिये नहीं, हँसी कलह कौ मूल।
हाँसी ही तै ह्वै गयौ, कुल कौरव निरमूल ॥३९॥

शब्दार्थ—कलह=झगड़ा। मूल=जड़। ह्वै गयौ=हो गया। निरमूल=नष्ट।

भावार्थ—किसी की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए; क्योंकि हँसी लड़ाई की मूल है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भीमसेन ने दुर्योधन की हँसी उड़ाई थी, उसी के परिणामस्वरूप भाइयों में झगड़ा हुआ और कौरवकुल का नाश हो गया। अतः मनुष्य को किसी की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए।

जोरावर को होति है, सब के सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि लै गयौ, देखत रहे सिपाह ॥४०॥

शब्दार्थ—जोरावर=बलवान्। हरि=श्रीकृष्ण। सिपाह=सिपाही।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि बलवान् की सबके सिरों पर राह होती है अर्थात् बलवान् जो चाहे कर सकता है, जैसे कि सब सिपाही देखते रह गये और श्रीकृष्ण रुक्मिणी को हर ले गये। भाव यह कि बलवान् कुछ भी क्यों न कर डाले उसे कोई कुछ नहीं कह सकता।

देखत कोपै कछु नहीं, मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा में होति है, ज्यों जल की परतीति ॥४१॥

शब्दार्थ—खल=दुष्ट। मृगतृष्णा=गर्मियों में रेत में भटकते हुए प्यासे हरिणों को दूर चमकती हुई रेत में पानी का भ्रम हो जाता है, इसी को मृगतृष्णा कहते हैं। परतीति=विश्वास।

भावार्थ—दुष्टों का प्रेम मुँह पर ही होता है, वास्तव में नहीं होता, जैसे कि मृग को मृगतृष्णा में भी जल का विश्वास हो जाता है, पर वास्तव में वहाँ जल होता नहीं।

द्वै ही गति है बड़नि की, कुसुम मालती भाय।
कै सब के सिर पै रहै, कै बन माँहिं विलाय ॥४२॥

शब्दार्थ—द्वै ही=दो ही। **गति**=दशा। **कुसुम**=फूल। **मालती**=चमेली। **भाय**=भाव, स्वभाव। **विलाय**=नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—महापुरुषों की चमेली के फूल के समान दो ही दशाएँ होती हैं, या तो वे सब के सिरों पर ही सुशोभित होते हैं या एकान्त वनों में ही नष्ट हो जाते हैं। भाव यह है कि जैसे चमेली का फूल या तो सब लोगों के कंठों में सुशोभित होता है, या अपनी बेल पर ही जंगल में गिर कर मुरझा जाता है, वैसे ही महापुरुष भी या तो सब मनुष्यों के शिरोमणि बन कर रहते हैं, या एकान्तवास में ही अपना जीवन इस प्रकार बिता देते हैं कि कोई उन्हें जान भी नहीं पाता।

आए आदर ना करै, पीछे लेत मनाय।
आयौ नाग न पूजई, बाँबी पूजन जाय ॥४३॥

शब्दार्थ—**नाग**=साँप। **बाँबी**=बाँबी नामक कीड़ों से बना हुआ मिट्टी का उठा हुआ ढेर, जिसके बिलों में साँप छिपे रहते हैं।

भावार्थ—मनुष्य घर आये गुणी का तो आदर करते नहीं और पीछे से उसको मनाते हैं, जैसे कहावत है कि घर आये नाग को तो पूजते नहीं और बाँबी को पूजने जाते हैं (नाग-पंचमी के दिन साँप की बाँबी की पूजा करते हैं, और यदि घर में साँप निकल आये तो उसको मार डालते हैं)।

हीन जानि न बिरोधिए, वह तौ तन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारियै, चढ़ै सीस पर आय ॥४४॥

शब्दार्थ—हीन=तुच्छ। विरोधिए=विरोध करें। तन=शरीर। दुखदाय=दुख देने वाला। रज=धूल। सीस=सिर।

भावार्थ—किसी भी व्यक्ति को छोटा समझ कर उसका अपमान मत करो; क्योंकि छोटा व्यक्ति भी हमारे शरीर के लिए दुःखदायक हो सकता है, जैसे धूल को भी ठोकर मारें तो वह धरती पर से उड़ कर हमारे शरीर पर आ पड़ती है और वस्त्रों को मैला कर देती है।

छोटे नर से बड़ेन कौं, कबहूँ बुरा न होय।
फूस आगि करि ना सकै, तपत उदधि को तोय ॥४५॥

शब्दार्थ—तपत=गरम। उदधि=समुद्र। तोय=जल।

भावार्थ—छोटे आदमी बड़े आदमियों का कभी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। जैसे घास-फूस की आग से समुद्र का पानी गरम नहीं हो सकता।

दुष्ट न छोड़े दुष्टता, बड़ो ठौर हू पाय।
जैसे तजत न श्यामता, विष शिव-कण्ठ बसाय ॥४६॥

शब्दार्थ—श्यामता=कालापन। विष=ज़हर। बसाय=रह कर।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष चाहे बड़े स्थान पर ही क्यों न पहुँच जाय तो भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता, जैसे समुद्र से निकला हुआ विष भगवान् शिव के गले में जा पहुँचा, तब भी वह काले का काला ही रहा। (समुद्र के मन्थन से जो विष निकला उसे भगवान् शिव ने पी लिया और अपने गले में अटका लिया।) इसी कथा की ओर यहाँ संकेत है।

दान दीन को दीजिए, मिटै दरिद की पीर।
औसध ताकौं दीजिए, जाके रोग सरीर ॥४७॥

शब्दार्थ—दरिद=दरिद्र, गरीब। पीर=पीड़ा, दुःख। औसध=औषधि।

भावार्थ—दान ऐसे गरीब लोगों को देना चाहिए जिससे उनकी गरीबी कम हो जाय। औषधि तो उसे देनी चाहिए, जिसके शरीर में रोग हो। जो पहले ही नीरोग हो उसे दवाई देने से क्या लाभ, इसी प्रकार जो पहले ही धनवान् हैं उन्हें दान देने से कोई लाभ नहीं होता।

खाय न खर्चै सूम धन, चोर सबै लै जाय।
पीछै ज्यौं मधुमच्छिका, हाथ मलै पछिताय ॥४८॥

शब्दार्थ—सूम=कञ्जूस। मधुमच्छिका=शहद की मक्खी।

भावार्थ—कञ्जूस मनुष्य धन को न खाता है न खरचता है, उसके धन को तो चोर ही चुरा कर ले जाते हैं, जैसे शहद की मक्खी शहद एकत्रित करती रहती है, किन्तु उसे दूसरे ही लोग ले जाते हैं और वह हाथ मलती रह जाती है, वैसे ही कंजूस लोग भी धन को न खाते न खरचते और न दूसरों को देते हैं—इस प्रकार अंत में पछताते रह जाते हैं।

अति उदारता बड़ेन की, कहँ लौ बरनै कोय।
चातक जाचै तनिक धन, बरस भरै घन तोय ॥४६॥

शब्दार्थ—बरनै=वर्णन करे। चातक=पपीहा। जाचै=प्रार्थना करता है। घन=बादल। तोय=जल।

भावार्थ—बड़े आदमियों की उदारता का कोई कहाँ तक वर्णन कर सकता है, अर्थात् कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। जैसे कि पपीहा तो बादल से एक बूँद ही माँगता है किन्तु बादल इतना जल बरसा देता है कि सब स्थानों पर जल-ही-जल हो जाता है। भाव यह कि महापुरुष बड़े उदार होते हैं।

उत्तम विद्या लीजिए, जदपि नीच पै होय।
पर्‌यौ अपावन ठौर को, कंचन तजत न कोय ॥५०॥

शब्दार्थ—पर्‌यौ=पड़ा हुआ। अपावन=अपवित्र। कंचन=सोना।

भावार्थ—उत्तम विद्या चाहे नीच पुरुष के पास ही हो, ग्रहण कर लेनी चाहिए। जैसे कि सोना चाहे अपवित्र स्थान पर ही क्यों न पड़ा हो, लोग उसे उठा ही लेते हैं।

कहूँ कहूँ गुन तें अधिक, उपजत दोष सरीर।
मीठी वानी बोलिकै, परत पींजरा कीर ॥५१॥

शब्दार्थ—उपजत=उत्पन्न होता है। परत=पड़ जाता है। कीर=तोता।

भावार्थ—कहीं-कहीं अधिक गुणों के कारण भी मनुष्य को अपने शरीर पर दुःख झेलना पड़ जाता है, जैसे मधुर वाणी बोलने के ही कारण तोते पिंजरे के बन्धन में पड़ जाते हैं। भाव यह है कि अधिक गुण भी कभी-कभी दुःख का कारण बन जाते हैं; क्योंकि यदि तोता मधुर वाणी न बोलता तो उसे कोई पिंजरे में कैद न करता, उसका यह गुण भी दुःखदायी बन गया।

भले बंस संतति भली, कबहूँ नीच न होय।
ज्यौं कंचन की खान में, काँच न उपजै कोय ॥५२॥

शब्दार्थ—संतति=सन्तान। कंचन=सोना।

भावार्थ—अच्छे वंश में अच्छी ही संतान होती है, कभी बुरी सन्तान नहीं उत्पन्न होती, जैसे कि सोने की खान में काँच कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। सोने की खान में तो सोना ही उत्पन्न होगा, वैसे ही अच्छे कुल में अच्छे ही व्यक्ति पैदा होते हैं।

झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलियै, ज्यों आटे में लौन ॥५३॥

शब्दार्थ—भौन=भवन, घर। तितौ ही=उतना ही।

भावार्थ—यदि मनुष्य झूठ बिलकुल ही न बोले, तब भी वह बात

अच्छी नहीं लगती। इसके विपरीत अधिक झूठ बोलना तो दुःखदायक ही है। इसलिए झूठ उतना ही बोलना चाहिए, जितना आटे में नमक। भाव यह कि मनुष्य को प्रथम तो झूठ बोलना ही नहीं चाहिए और यदि बोलना भी पड़े तो ऐसा बोले जिससे किसी को बुरा न लगे।

ठौर देखि के हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है, बाँबी सूधो साँप ॥५४॥

शब्दार्थ—ठौर=स्थान। कुटिल=टेढ़ा। सरल=सीधा। सूधो=सीधा।

भावार्थ—जैसा-जैसा स्थान हो, मनुष्य को वैसा ही सरलतापूर्वक या कुटिलतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। जैसे कि साँप बाहर तो टेढ़ा-टेढ़ा चलता है, पर बाँबी में वह सीधा होकर ही घुसता है। भाव यह कि दुष्टों के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए एवं सज्जनों के साथ सज्जनता का व्यवहार करना चाहिए।

करै न कबहूँ साहसी, दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौ, नाहिं भखै मृगराज ॥५५॥

शब्दार्थ—साहसी=उत्साही, वीर। दीन हीन=दुःखी, ग़रीब। मृगराज=शेर। काज=काम। भखै=खाता है।

भावार्थ—साहसी वीर पुरुष कायरों जैसे कार्य कभी नहीं करते, जैसे कि शेर भूखा भले ही रह जाय, पर घास नहीं खाता।

होय भले के सुत बुरो, भलौ बुरे कै होय।
दीपक कै काजर प्रकट, कमल कीच ते होय ॥५६॥

शब्दार्थ—सुत=पुत्र। काजर=काजल।

भावार्थ—भले लोगों के बुरे तथा बुरे लोगों के भी भले पुत्र पैदा हो सकते हैं। जैसे कि दीपक जैसी प्रकाशमान वस्तु से काजल जैसी

काली वस्तु उत्पन्न हो जाती है और कीचड़ जैसी निकृष्ट वस्तु से कमल सा सुन्दर पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। भाव यह कि यह कोई आवश्यक नहीं कि अच्छे माता-पिता की सन्तान भी अच्छी ही हो।

बहुत न बकिए, कीजिए, कारज अवसर पाय।
मौन गहे बक दाव पर, मछरी लेत उठाय ॥५७॥

शब्दार्थ—कारज=कार्य। अवसर=समय, मौका। गहे=ग्रहण किये हुए। बक=बगुला।

भावार्थ—बहुत अधिक बातें नहीं बनानी चाहिएँ, परन्तु समय पर अपना कार्य कर लेना चाहिए। जैसे कि बगुला चुपचाप बैठा रहता है, किन्तु दाँव पाते ही मछली को पकड़ लेता है। भाव यह कि कार्य करने से पहले शोर नहीं मचाना चाहिए, अपना कार्य धैर्य से शान्तिपूर्वक करते रहना चाहिए।

होत निबाह न आपनौ, लीने फिरत समाज।
चूहा बिल न समात है, पूँछ बाँधिए छाज ॥५८॥

शब्दार्थ—निबाह=निर्वाह, गुज़ारा। समाज=समूह।

भावार्थ—अपना तो निर्वाह कर नहीं सकते और अपने साथ समाज को लिये फिरते हैं, जैसे कहावत है कि चूहा तो बिल में समाता नहीं है और उसकी पूँछ पर छाज बाँध रहे हैं। भाव यह कि अपनी शक्ति के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। पहले अपनी रक्षा का उपाय करे फिर दूसरे की सोचनी चाहिए।

अन्तर अँगुरी चार कौ, साँच झूठ मैं होय।
सब मानै देखी कही, सुनी न मानै कोय ॥५६॥

शब्दार्थ—अंतर=फर्क। अँगुरी=अंगुल।

भावार्थ—सत्य और झूठ में केवल चार अंगुल का अन्तर या फर्क

होता है; क्योंकि आँखों की देखी बात को तो सब मान लेते हैं, किन्तु कानों से सुनी बात को कोई नहीं मानता। भाव यह कि आँख और कान में केवल चार अंगुल का अन्तर है। इसलिए सत्य और झूठ में केवल चार अंगुल का ही अन्तर होता है। भाव यह कि मनुष्य को आँखों देखी घटना का ही विश्वास होता है, सुनी हुई बात का नहीं। इस सुनने और देखने में चार अंगुल का अन्तर है।

आप अकारज आपनौ, करतु कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने, मारतु मूरख हाथ ॥६०॥

शब्दार्थ—अकारज=काम बिगाड़ना। कुबुध=बुरी बुद्धि। कुल्हारी=कुल्हाड़ी। मारतु=मारता है।

भावार्थ—मूर्ख अपने हाथों से अपना काम बिगाड़ लेता है, वह अपनी कुबुद्धि के कारण अपने हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारता है। भाव यह कि बेसमझ लोग अपनी मूर्खता के कारण स्वयं ही अपना नुकसान कर बैठते हैं।

जो कहियै सो कीजिए, पहिलै करि निरधार।
पानी पी घर पूछनौ, नाहिन भलौ विचार ॥६१॥

शब्दार्थ—निरधार=निश्चय। नाहिन=नहीं।

भावार्थ—पहले निश्चय करके मनुष्य को बात कहनी चाहिए। और जो कह दे, उसे करके दिखाना चाहिए। बिना सोचे-समझे काम करना, व काम करके पछताना ठीक नहीं। जैसे कहावत है पानी पीकर जाति पूछना भला किस काम का। भाव यह कि किसी भी कार्य को करने से पूर्व खूब सोच-विचार कर लेना चाहिए।

का रस में का रोस में, अरि तें जनि पतियाय।
जैसे सीतल तप्त जल, डारत आगि बुझाय ॥६२॥

शब्दार्थ—रस=प्रेम। रोस=क्रोध। अरि=शत्रु। जनि=मत। पतियाय=विश्वास करो। सीतल=ठंडा। तप्त=गरम।

भावार्थ—शत्रु चाहे तुम पर क्रोध करे या तुम्हारे प्रति प्रेम ही क्यों न दिखाये, किसी भी अवस्था में उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, जैसे पानी चाहे ठंडा हो या गरम, आग को तो वह बुझा ही देता है। भाव यह कि पानी और आग का स्वाभाविक वैर है, अतः पानी चाहे गरम या ठण्डा कैसा भी क्यों न हो आग को बुझा देता है, वैसे ही शत्रु भी प्रेम से या क्रोध से दोनों प्रकार घातक ही होता है।

झूठे ही करियै जतन, कारज बिगरै नाहिं।
कपट-पुरुष घन खेत पर, देखत मृग भज जाहिं ॥६३॥

शब्दार्थ—जतन=यत्न, परिश्रम। कपट पुरुष=नकली आदमी (किसान लोग अपने खेतों पर से जानवरों को भगाने के लिए एक आदमी का नकली पुतला बना देते हैं, उसे सचमुच का आदमी समझ कर जानवर भाग जाते हैं, उसे कपट-पुरुष कहते हैं)। मृग=हरिण। भज जाहिं=भाग जाते हैं।

भावार्थ—मनुष्य को सदा कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। चाहे वह काम वास्तविक न होकर झूठा ही हो, जैसे खेतों पर लकड़ी का नकली आदमी देखकर भी जानवर भाग जाते हैं।

कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥६४॥

शब्दार्थ—जान्यौ परै=जाना जाता है। लखि=देखकर। लच्छन=लक्षण। गात=शरीर। बिरवान=पौधे। पात=पत्ते।

भावार्थ—शरीर के लक्षणों को देखकर पुत्र का बचपन में ही पता लग जाता है। जैसे कहावत है कि होनहार पौधों के पत्ते चिकने होते

हैं। भाव यह कि आम, जामुन आदि रसीले वृक्षों के सुन्दर चिकने पत्ते ही यह प्रकट कर देते हैं कि इनके फल अच्छे होंगे, वैसे ही होनहार पुत्र का भी बचपन में ही पता लग जाता है।

कायर नर को देख रन, मुख फीको दरसाय।
काँचो रंग ज्यों धूप में, झटक चटक उड़ि जाय ॥६५॥

शब्दार्थ—कायर=डरपोक। रण=युद्ध। दरसाय=दिखाई देता है।

भावार्थ—युद्ध को देखकर कायर मनुष्यों के मुख का रंग फीका पड़ जाता है, जैसे कच्चा रंग धूप में क्षण-भर में ही उड़ जाता है। भाव यह कि कमजोर—कायर—पुरुष विपत्ति में तत्काल घबरा जाते हैं। वे विपत्ति का सामना नहीं कर सकते।

बात प्रेम की राखिए, अपने ही मन माहिं।
जैसे छाया कूप की, बाहर निकसैं नाहिं ॥६६॥

शब्दार्थ—कूप=कुआँ। निकसैं=निकले।

भावार्थ—प्रेम की बात मन में ही छिपा कर रखनी चाहिए, जैसे कुएँ की छाया उसी में रहती है, बाहर नहीं निकलती। भाव यह कि हृदय की बात को किसी पर व्यक्त नहीं करना चाहिए।

रसनिधि

परिचय

संवत् १७६०

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया-राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे।

इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है, परन्तु संवत् १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहजारा अद्भुत ग्रन्थ है। हजारा में कुल दोहे-ही-दोहे हैं।

भावों को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं।

दोहे

सार और आलोचना

जिस ईश्वर का इतना बड़ा संसार है वह परमाणु से भी छोटे मन में रहता है, कितने आश्चर्य की बात है ! इस संसार में सभी कार्यों का, पाप-पुण्य का, सुख-दुःख का कारण मन ही है, इसी ने सारे संसार को बन्धन में बाँध रखा है । इस प्रकार की मार्के की उक्तियाँ रसनिधि की कविता में एक अलौकिक छटा रखती हैं ।

इनके भक्तिपरक तथा व्यवहार में निपुण बनाने की योग्यता रखने वाले दोहे वास्तव में हिन्दी-साहित्य की रसपूर्ण निधि हैं ।

लसत सरस सिंधुर-बदन, भालथली नखतेस ।
बिघनहरन मंगलकरन, गौरीतनय गनेस ॥१॥

शब्दार्थ—**लसत**=शोभित होता है । **सरस**=सुन्दर । **सिंधुर**=हाथी । **बदन**=मुख । **सिंधुर-बदन**=हाथी के मुख वाले श्री गणेश जी । **भालथली**=मस्तक । **नखतेस**=नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा । **बिघन-हरन**=विघ्नों का नाश करने वाले । **मंगलकरन**=कल्याण करने वाले । **गौरीतनय**=पार्वती जी के पुत्र ।

भावार्थ—कवि रसनिधि गणेश जी की वन्दना करते हुए कहते हैं कि सुन्दर हाथी के मुख वाले, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, विघ्नों का नाश करने वाले, कल्याण करने वाले पार्वती जी के पुत्र गणेश जी महाराज सुशोभित हो रहे हैं ।

नमो प्रेम - परमारथी, इह जाचत हौं तोहि ।
नंदलाल के चरन कौं, दे मिलाइ किन मोहि ॥२॥

शब्दार्थ—प्रेम-परमारथी = प्रेम के परोपकारी। इह = यह। जाचत = प्रार्थना करते हैं। हौं = मैं। तोहि = तुझसे। किन = क्यों नहीं।

भावार्थ—हे प्रेम के परोपकारी प्रभु! मैं तुम से यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे नन्दलाल श्रीकृष्ण के चरणों से क्यों नहीं मिला देते अर्थात् अवश्य मुझे श्रीकृष्ण से मिला दीजिए।

निसि दिन गुंजत रहत जे, बिरद गरीबनेवाज।
है निज मधुकर-सुतन की, कमल-नैन तुहि लाज ॥३॥

शब्दार्थ—निसि = रात। बिरद = यश। गरीबनेवाज = दीन-दयालु। निज = अपने। मधुकर = भ्रमर। कमलनैन = कमल के समान नेत्रों वाले।

भावार्थ—हे कमल के समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण! जो तुम्हारे पुत्र रूपी भ्रमर रात-दिन तुम्हारे दीनदयालु के यश का बखान करते हुए मानो गूँजते रहते हैं, उनकी लाज तुम्हारे ही हाथों में है। भाव यह कि भ्रमर कमलों के प्रेमी होते हैं और दिन-रात उन्हीं के गुण गाते रहते हैं। उसी प्रकार भक्त भी कमल-नयन प्रभु के गुण गाते रहते हैं।

अब तौ प्रभु तारैं बनै, नातर होत कुतार।
तुमहीं तारन-तरन हौ, सो मोरैं आधार ॥४॥

शब्दार्थ—तारैं बनै = उद्धार करने से ही काम चलेगा। नातर = नहीं तो। कुतार = बात बिगड़ जायगी। तारन-तरन = उद्धार करने वाले।

भावार्थ—हे भगवन्! अब तो मेरा उद्धार करने से ही बात बनेगी नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी। भक्तों का उद्धार करने वाले हे भगवन्! एक तुम्हीं मेरे आधार हो। यहाँ भक्त प्रभु से उद्धार के लिए प्रार्थना करता हुआ कहता है कि आप ही मेरे सहारा हैं।

अद्‌भुत गति यह रसिकनिधि, सरस प्रीत की बात ।
आवत ही मन साँवरो, उर कौ तिमिर नसात ॥५॥

शब्दार्थ—**अद्‌भुत**=अनोखी । **साँवरो**=श्याम वर्ण वाले । **उर**=हृदय । **तिमिर**=अन्धेरा । **नसात**=नष्ट हो जाता है ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि श्रीकृष्ण की रसभरी प्रीति की बड़ी अनोखी बात है कि मन में साँवले (काले रंग) के आते ही हृदय का अन्धकार नष्ट हो जाता है । अद्‌भुतता यही है कि काली चीज़ के आने पर तो अन्धेरा बढ़ना चाहिए, पर यहाँ पर तो वह अन्धेरा काली वस्तु से नष्ट हो जाता है—यह विरोध है । पर जब 'साँवरो' का अर्थ श्रीकृष्ण करते हैं, तो यह विरोध मिट जाता है; क्योंकि कृष्ण के ध्यान करते ही अज्ञानान्धकार का मिट जाना स्वाभाविक ही है । इसीलिए कहा गया है कि 'साँवले' के हृदय में आते ही हृदय का अन्धकार मिट जाता है ।

कैइक स्वाँग बनाइकै, नाचौ बहु बिधि नाच ।
रीझत नहिं रिझवार वह, बिना हिए के साँच ॥६॥

शब्दार्थ—**कैइक**=कई, बहुत से । **स्वाँग**=वेश । **बहु बिधि**=नाना प्रकार के । **रीझत**=प्रसन्न होता । **रिझवार**=प्रसन्न होने वाले श्रीकृष्ण । **हिए**=हृदय ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि तुम चाहे कितने ही स्वाँग बनाकर नाना प्रकार के नाच क्यों न नाच लो, पर जब तक तुम्हारा हृदय सच्चा नहीं हो जाता, तब तक वे प्रसन्न होने वाले श्रीकृष्ण भगवान् तुम पर कभी प्रसन्न न होंगे । भाव यह है कि मनुष्य चाहे भगवे कपड़े पहने, चाहे सिर मुँडाये, चाहे जटा बढ़ाये, इन बातों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती । भगवान् सच्चे हृदय से पूजा करने से प्राप्त होते हैं, बाहरी दिखावे से कुछ काम नहीं चलेगा । सच्ची पवित्र भावनाओं से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है ।

जाकौ गति चाहत दियौ, लेत अगति तैं राखि।
रसनिधि हूँ या बात के, भक्त भागवत साखि ॥७॥

शब्दार्थ—**गति**=मोक्ष । **अगति**=बुरी दशा, दुर्गति । **राखि लेत**=बचा लेते हैं। **या**=इस। **साखि**=साक्षी, गवाह।

भावार्थ—भगवान् जिसको गति या मोक्ष देना चाहते हैं उसे बुरी दशा से बचा लेते हैं। रसनिधि कहते हैं कि इस बात के सभी भगवान् के भक्त और भागवत आदि पुराण-ग्रन्थ गवाह हैं। भाव यह कि प्रभु मुमुक्षु साधक की सब दुःख-दैन्य-जड़ता आदि का नाश कर उसे शुद्ध चैतन्य-स्वरूप बना देते हैं।

धनि गोपी धनि ग्वाल वे, धनि जसुदा धनि नंद।
जिनके मन आगे चलै, धायौ परमानंद ॥८॥

शब्दार्थ—**धनि**=धन्य। **जसुदा**=यशोदा। **धायौ**=दौड़ते हुए। **परमानंद**=परम आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वे गोपी, ग्वाल, यशोदा और नन्द बाबा धन्य हैं, जिनके मन के आगे आनन्दकन्द श्रीकृष्ण सदा दौड़ा करते थे।

आदि अंत अस मध्य मैं, जो है स्वयं-प्रकास।
ताके चरनन की धरै, रसनिधि मन मैं आस ॥९॥

शब्दार्थ—**आदि**=पहले। **अन्त**=आखिर में। **अस**=ऐसे ही। **मध्य**=बीच में। **स्वयं-प्रकास**=अपने-आप प्रकाशमान। **ताके**=उसके। **आस**=आशा।

भावार्थ—जो परब्रह्म परमात्मा सृष्टि के आदि, सृष्टि के अन्त एवं मध्य में भी स्वयमेव प्रकाशित होता रहता है, मैं अपने मन में उसी परम प्रभु के चरणों की आशा रखता हूँ।

भूले तैं करतार के, रागु न आवै रास।
यहो समुझकै राख तू, मन करतारैं पास ॥१०॥

शब्दार्थ—करताल=खड़ताल—हाथों से बजाने वाला बाजा। रास न आवै=ठीक नहीं बैठता। करतारैं=भगवान् के।

भावार्थ—यदि मनुष्य भजन गाते हुए हाथ से बजाई जाने वाली करताल (खड़ताल) को भूल जाय तो राग ठीक नहीं बैठता। इसलिए रसनिधि जी कहते हैं कि इस बात को भली भांति समझकर तुम उस 'करतार' अर्थात् भगवान् में मन को लगाओ। यहाँ पर 'करतार' शब्द का दो भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है।

हरि कौ सुमिरौ हर घरी, हरि हरि ठौर जुबान।
हरि बिधि हरि के ह्वै रहो, रसनिधि सन्त सुजान ॥११॥

शब्दार्थ—सुमिरौ=स्मरण करो। हरि ठौर=प्रत्येक स्थान पर। हरि विधि=प्रत्येक प्रकार से। ह्वै रहो=हो जाओ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे सुजान (समझदार) सन्तो, हर घड़ी भगवान् ही का स्मरण करो। प्रत्येक स्थान पर भगवान् को ही अपनी जिह्वा पर बनाये रखो। प्रत्येक प्रकार से भगवान् के ही बनकर रहो। भाव यह कि प्रत्येक अवस्था में भक्त को प्रभुमय बन जाना चाहिए।

जिन काढ़ौ ब्रजनाथ जू, मो करनी कौ छोर।
मो कर नीके कर गहौ, रसनिधि नंदकिसोर ॥१२॥

शब्दार्थ—काढ़ौ=निकालो। छोर=अन्त। नीके=भली भांति। कर=हाथ। करनी=कार्य, करतूत।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे भगवन्! आप मेरे कामों के अन्त या परिणाम की ओर मत देखिए। आप तो मेरे हाथों को भली भांति मजबूती से पकड़ लीजिए। भाव यह कि यदि कर्मों का लेखा लगाने

लगेंगे तो मेरा कभी उद्धार न हो सकेगा अतः आप मेरे बुरे कर्मों का लेखा न देखकर मेरे उद्धार के लिए मेरा हाथ पकड़ लीजिए।

रसनिधि वाकौ कहत हैं, याही तैं करतार।
रहत निरन्तर जगत कौ, वाही के करतार ॥१३॥

शब्दार्थ— **याही तें**=इसी से। **करतार**=सृष्टि बनाने वाला। **निरंतर**=लगातार। **वाही के**=उसी के। **कर**=हाथ। **तार**=सूत्र, धागा।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि उस ईश्वर को इसीलिए 'करतार' कहते हैं कि उसके कर (हाथों) में सदा संसार का तार अर्थात् सूत्र रहता है। इस दोहे में 'करतार' शब्द की नये ढँग से निरुक्ति की गई है। वास्तव में 'करतार' का अर्थ कर्ता या करने या बनाने वाला है, पर यह कर—हाथ में तार वाला यह नया अर्थ किया गया है।

तेरी गति नँदलाड़ले, कछू न जानी जाइ।
रजहू तैं छोटो जु मन, तामैं बसियत आइ ॥१४॥

शब्दार्थ—**रजहू**=धूल से। **तामैं**=उसमें। **बसियत**=रहते हो।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे नन्दलाल ! तुम्हारी गति का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। चूँकि जो मन एक धूलि के कण से भी छोटा है, इतने छोटे से स्थान में भी जाकर तुम बस जाते हो। भाव यह कि वह परब्रह्म परमात्मा सृष्टि के अणु-अणु में समाया हुआ है।

दंपति चरण सरोज पै, जो अलि मन मड़राइ।
तिहि के दासन दास कौ, रसनिधि अंग सुहाइ ॥१५॥

शब्दार्थ—**दंपति**=पति-पत्नी, राधा-कृष्ण का जोड़ा। **सरोज**=कमल। **अलि**=भौंरा। **सुहाई**=अच्छा लगता है। **दासन दास**=दासों के भी दास।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि श्री राधाकृष्ण के चरण-कमलों पर जिनका मनरूपी भ्रमर मँडराता रहता है, उनके दासों के भी दास की संगति मुझे बहुत अच्छी लगती है। भाव यह कि भगवान् के भक्तों का साथ सदा कल्याणकारक होता है।

घरी बजी घरयार सुन, बजिकै कहत बजाइ।
बहुरि न पैहै यह घरी, हरिचरनन चित लाइ ॥१६॥

शब्दार्थ—घरी=घड़ी। घरयार=घड़ियाल, घण्टा। **बजिकै**=बजकर। **बहुरि**=फिर। **पैहै**=पाओगे। **हरि**=भगवान्। **चित लाइ**=ध्यान लगाओ।

भावार्थ—एक-एक घंटे के बाद घंटे में टन् से घड़ी बजती है। एक बार बजकर वह फिर बजती है और तुम्हें यह कहती है कि मनुष्य-जन्म की ऐसी सुन्दर घड़ी फिर नहीं आयेगी। इसलिए भगवान् के चरणों में अपना चित्त लगाओ। भाव यह कि प्रत्येक घंटे के बाद बजती हुई घड़ी मनुष्य को बार-बार प्रभु-भजन के लिए सावधान करती हुई कहती है कि यह घड़ी फेर नहीं आयेगी।

हरि बिनु मन तुव कामना, नैकु न आवै काम।
सपने के धन सौं भरे, किहि लै अपनौ धाम ॥१७॥

शब्दार्थ—तुव=तेरी। **कामना**=इच्छा। **नैकु**=ज़रा भी। **किहि**=किसने। **धाम**=घर।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि भगवान् के बिना तेरी कोई इच्छा किसी काम न आयेगी। भला बताओ तो सही कि सपने के धन से किसने अपना घर भरा है अर्थात् किसी ने नहीं भरा। जैसे स्वप्न के धन से कोई अपना घर नहीं भर सकता, वैसे ही भगवान् के बिना किसी की कोई इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इसलिए और सब कामों को छोड़कर भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

जिन वारे नँदलाल पै, अपने मन धन ल्याइ।
उनके बारे की कछू, मोपै कही न जाइ ॥१८॥

शब्दार्थ—**बारे**=न्योछावर। **ल्याइ**=लाकर। **बारे की**=सम्बन्ध की। **मोपै**=मुझ से।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जिन लोगों ने अपने तन मन धन श्रीकृष्ण पर न्योछावर कर दिये हैं, उनकी इतनी बड़ी महिमा है कि उनके सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कह सकता। भाव यह कि भगवद्-भक्तों की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता।

हरि-पूजा हरि-भजन मैं, सो ही ततपर होत।
हरि उर जाहि आइकै, हरबर करै उदोत ॥१९॥

शब्दार्थ—**ततपर**=तत्पर, लीन लगा हुआ। **उर**=हृदय। **जाहि**=जिसके। **हरबर**=प्रति समय या सहसा। **उदोत**=प्रकाश।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि जिनके हृदय में भगवान् सहसा या प्रतिसमय प्रकाश करते रहते हैं, वे ही मनुष्य भगवान् की पूजा एवं भगवान् के भजन में तत्पर हो सकते हैं—लगे रह सकते हैं। भाव यह कि जिन पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वे ही सौभाग्यशाली प्रभु-भक्ति-पूजा में लगते हैं।

रसनिधि मन मधुकर रमहिं, जो चरनांबुज माहिं।
सरस अनखुलौ खुलत है, खुलौ खुलौई नाहिं ॥२०॥

शब्दार्थ—**मधुकर**=भ्रमर,। **रमहिं**=लीन रहते हैं। **चरनांबुज**=चरण-कमल। **अनखुलौ**=जो खुला हुआ नहीं।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जिनका मन रूपी भौंरा श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में लीन रहता है, उन आँखों में यह खुला हुआ—दृश्यमान संसार तो बन्द हो जाता है और वह दूसरे लोगों की आँखों के

लिए बंद परमप्रभु का स्वरूप उनकी आँखों के सामने खुल जाता है। भाव यह कि जिनका मन भगवान् में लग जाता है वे संसार से विरक्त और प्रभु-चरणों में अनुरक्त हो जाते हैं। संसार की विषय-वासनाओं की ओर तो भक्त आँख उठाकर भ नहीं देखते और सदा भगवान् में लीन रहते हैं।

रूप दृगन स्रवनन सुजस, रसना मैं हरिनाम।
रसनिधि मन मैं नित बसैं, चरन कमल अभिराम ॥२१॥

शब्दार्थ—दृगन=आँखों में। स्रवनन=कानों में। रसना=जिह्वा। अभिराम=सुन्दर।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि मेरे नेत्रों में भगवान् का स्वरूप, कानों में भगवान् के गुणगान के शब्द, जिह्वा में भगवान् का नाम और मन में भगवान् के सुन्दर चरण-कमल सदा निवास करें। भाव यह कि वे आँख, कान, जिह्वा और मन आदि इन्द्रियों से प्रति समय प्रभु में ही लीन रहें, उसी का चिन्तन और दर्शन करते रहें।

कपटौ जब लौं कपट नहिं, साँच बिगुरदा धार।
तब लौं कैसे मिलैगौ, प्रभु साँचौ रिझवार ॥२२॥

शब्दार्थ—कपटौ=दूर करो। बिगुरदा=उत्साह, वीरता। रिझवार=प्रसन्न होने वाला।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हृदय में सच्चा उत्साह उत्पन्न करके जब तक तुम अपने हृदय के कपट को दूर नहीं कर दोगे तब तक वह सच्चा प्रेमी परमप्रभु भला तुम्हें कैसे मिल सकता है! भाव यह कि प्रभु की प्राप्ति के लिए तो अपने हृदय को निष्कपट बनाना ही होगा। जब तक मन में कपट रहेगा भगवान् कभी नहीं मिलेंगे।

नेत नेत कहि निगम पुनि, जाहि सकै नहिं जान।
भयौ मनोहर आइ ब्रज, वही सो हरि हर आन ॥२३॥

शब्दार्थ—नेत नेत='नेति नेति'—उस प्रभु का कहीं आदि-अंत नहीं है। **निगम**=वेद आदि शास्त्र। **पुनि**=फिर।

भावार्थ—जिस ब्रह्म का वेदादि शास्त्र 'नेति नेति'—'कहीं आदि-अंत नहीं है' ऐसा कहकर कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाये, वही पूर्ण परब्रह्म भगवान् विष्णु ब्रज में भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहर रूप में प्रकट हुए हैं। भाव यह कि श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्ण परब्रह्म ही हैं।

परम दया करि दास पै, गुरू करी जब गौर।
रसनिधि मोहन भावतौ, दरसायौ सब ठौर ॥२४॥

शब्दार्थ—**गौर**=ध्यान। **भावतौ**=मनचाहा, परमप्रिय। **दरसायौ**=दिखाया।

भावार्थ—जब गुरुदेव ने अपने इस दास पर बड़ी भारी दया कर के कुछ ध्यान दिया तो सभी स्थानों में अर्थात् सृष्टि के अणु-अणु में उस परम प्रिय श्रीकृष्ण का दर्शन करा दिया। भाव यह कि गुरुदेव की कृपा से ही भगवान् के दर्शन संभव हो सकते हैं।

पाप पुण्य अरु जोति तैं, रबि ससि न्यारे जान।
जद्यपि सो सब घटन मैं, प्रतिबिंबित है आन ॥२५॥

शब्दार्थ—**जोति**=प्रकाश। **अरु**=और। **रबि**=रवि, सूर्य। **ससि**=चन्द्रमा। **न्यारे**=अलग। **घटन में**=हृदयों में। **प्रतिबिम्बित**=झलकता है।

भावार्थ—सूर्य और चन्द्रमा यद्यपि सब हृदयों में प्रतिबिम्बित और प्रकाशित होते हैं, फिर भी वे उनके पाप-पुण्यों और प्रकाश से अलग रहते हैं। (इसी प्रकार वह ब्रह्म भी सब के हृदय में विद्यमान रहते हुए भी उनके पाप-पुण्यों से सदा निर्लिप्त रहता है।)

आपु भँवर आपुहि कमल, आपुहि रंग सुबास।
लेत आपुही बासना, आपु लसत सब पास ॥२६॥

शब्दार्थ—सुबास=सुगन्धि । **बासना**=सुगन्धित । **लसत**=शोभित होता है ।

भावार्थ—वह ब्रह्म स्वयं ही तो भौंरा है, आप ही कमल है; स्वयं ही रूप-रंग और सुगन्धि है । वह खुद ही सुगन्धि लेता है और स्वयं ही सर्वत्र अनेक रूपों में जगमगाता है । भाव यह कि सृष्टि के अणु-अणु में वह ब्रह्म स्वयं सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ।

पवन तुहीं पानी तुहीं, तुहीं धरनि आकास ।
तेज तुहीं पुनि जीव है, तुहीं लियौ तन बास ॥२७॥

शब्दार्थ—पवन=वायु । **धरनि**=पृथ्वी । **बास**=निवास ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जल, वायु, पृथ्वी, आकाश और तेज के रूप में हे मेरे परमप्रभु ! सर्वत्र तुम्हीं व्याप्त हो रहे हो । प्राण और आत्मा के रूप में तुमने ही प्राणियों के शरीरों में अपना निवास-स्थान बनाया हुआ है ।

कहूँ हाकमी करत है, कहूँ बंदगी आइ ।
हाकिम बंदा आपुही, दूजा नहीं दिखाइ ॥२८॥

शब्दार्थ **हाकमी**=स्वामित्व या शासन । **बंदगी**=सेवा । **हाकिम**=स्वामी या शासक । **बन्दा**=सेवक ।

भावार्थ—रसनिधि कवि अद्वैतवाद के सिद्धान्तों के अनुसार जीव-ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ब्रह्म ही कहीं तो हाकिम या शासक बनकर शासन करता है, आज्ञाएँ देता है और कहीं सेवक बन कर सेवाएँ करता है । वह स्वयं ही हाकिम है और स्वयं ही सेवक है; उसके सिवा दसरा कोई भी दिखाई नहीं देता । ब्रह्म ही अनेक रूप धारण किये हुए है ।

साँची सी यह बात है, सुनियौ सज्जन संत ।
स्वाँगी तौ वह एक है, वहि के स्वाँग अनन्त ॥२६॥

शब्दार्थ—**साँची**=सच्ची। **स्वाँगी**=स्वाँग रचने वाला। **स्वाँग**=भेस। **अनन्त**=बहुत से।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि सन्त-सज्जनो! इस सच्ची बात को बड़े ध्यान से सुन लो कि वह नाना प्रकार के स्वाँग रचने वाला ब्रह्म तो एक ही है। विश्व के नाना प्रकार के पदार्थ और प्राणी सब उसी के भिन्न-भिन्न स्वाँग हैं। भाव यह है कि वास्तव में उस एक ब्रह्म ने ही इस चराचर के रूप में अनेक रूप धारण किये हुए हैं।

कोटि घटन मैं बिदित ज्यौं, रबि प्रतिबिंब दिखाइ।
घट घट मैं त्यौंहीं छिप्यौ, स्वयं-प्रकासी आइ ॥३०॥

शब्दार्थ—**कोटि**=करोड़ों। **घटन**=घड़ों में। **बिदित**=ज्ञात, मालूम। **रबि**=सूर्य। **प्रतिबिम्ब**=झलक, ऐक्स। **घट घट में**=प्रत्येक के हृदय में। **स्वयं-प्रकासी**=अपने-आप प्रकाशित होने वाला।

भावार्थ—जैसे एक ही सूर्य के करोड़ों घड़ों के पानी में अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं पर वास्तव में वह सूर्य तो एक ही है, उसी प्रकार वह परब्रह्म भी घट-घट में स्वयं प्रकाशमान होकर प्रतिबिम्बित हो रहा है। भाव यह कि वह एक ब्रह्म ही अनेक रूप धारण किये हुए है।

ब्रह्म फटिक मन सम लसै, घट घट माँझ सुजान।
निकट आय बरतै जो रँग, सो रँग लगै दिखान ॥३१॥

शब्दार्थ—**फटिक मन**=स्फटिक मणि, बिल्लौर, शीशा। **सम**=समान। **लसै**=शोभित होता है। **माँझ**=मध्य में। **निकट**=पास में।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि ब्रह्म तो स्फटिक मणि (बिल्लौर) के समान है। वह प्रत्येक हृदय में व्याप्त होकर सुशोभित हो रहा है। उसके पास में जो रंग आता है वही रंग उसमें प्रतिबिम्बित हो जाता है। भाव यह कि जैसे शीशे के सामने हरा रंग हो तो शीशा भी हरा और लाल रंग हो तो लाल दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म भी कहीं चींटी

के रूप में, तो कहीं हाथी के रूप में, ऐसे नाना रूपों में प्रतिबिम्बित हो रहा है।

वही रंग वह आपु ही, भयौ तिली मैं तेल।
आपुन बास्यौ सुमन है, आपुहि भयौ फुलेल ॥३२॥

शब्दार्थ—बास्यौ=सुगन्धित। सुमन=पुष्प। फुलेल=इत्र।

भावार्थ—वह ब्रह्म सृष्टि के अणु-अणु में वैसे ही व्याप्त हो रहा है जैसे कि तिलों में तेल। वह स्वयं ही सुगन्धित पुष्प है और स्वयं ही फुलेल या इत्र बन जाता है।

यौं सब जीवन की लखौ, ब्रह्म सनातन आद।
ज्यौं माटी के घटन की, माटी पै बुनियाद ॥३३॥

शब्दार्थ—लखौ=देखो। सनातन=सदा रहने वाला, जिसका आदि-अन्त न हो। बुनियाद=आरम्भ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वह नित्य रहने वाला ब्रह्म इसी प्रकार सब जीवों का मूल कारण है, जैसे कि मिट्टी के घड़ों का मूल कारण मिट्टी ही है।

जलहूँ मैं पुनि आपु ही, थलहूँ मैं पुनि आपु।
सब जीवन मैं आपु है, लसत निरालौ आपु ॥३४॥

शब्दार्थ—थल=स्थल, भूमि। पुनि=फिर। लसत=शोभित होता है। निरालौ=निराला, अनुपम।

भावार्थ—वह ब्रह्म जल में भी स्वयं है व स्थल में भी आप ही शोभित हो रहा है। सब जीवों में निराला वह प्रभु स्वयं ही सुशोभित हो रहा है। भाव यह कि वह प्रभु सर्वव्यापक है।

मोहनवारौ आपु ही, मन मानिक पुनि आपु।
पोहनवारौ आपु ही, जोहनिहारौ आपु ॥३५॥

शब्दार्थ—मोहनवारौ=मोहित करने वाला। **मन मानिक**=मणि-माणिक्य। **पोहनहारौ**=पिरोने वाला। **जोहनहारौ**=देखने वाला।

भावार्थ—वह परब्रह्म स्वयं ही मोहित करने वाला है, अर्थात् मणि-माणिक्यों (हीरे-जवाहरातों) को पहनकर दर्शकों को मोहित करने वाला वह स्वयं ही है। और मणि-माणिक्य भी स्वयं ही है। और मणि-माणिक्यों को माला के रूप में पिरोने वाला भी वही है। तथा उस माला को धारण करने वाले को देखने वाला भी वह स्वयं ही है।

वंशी हू मैं आपु ही, सप्त सुरन मैं आपु।
बजवैया पुनि आपु ही, रिझवैया पुनि आपु ॥३६॥

शब्दार्थ—सप्त=सात। **सुरन**=स्वर। **बजवैया**=बजाने वाला। **रझवैया**=प्रसन्न होने वाला।

भावार्थ—वह ब्रह्म वंशी में भी स्वयं ही व्याप्त है, सातों स्वरों में भी वही व्याप्त है, बजाने वाला भी वह स्वयं ही है और उस वंशी की ध्वनि को सुनकर उस पर प्रसन्न होने वाला भी वही है। उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है।

बीज आपु जर आपु ही, डार पात पुनि आपु।
फूलहि मैं पुनि आपु फल, रस मैं पुनि निधि आपु ॥३७॥

शब्दार्थ—जर=जड़। **निधि**=भंडार, घर।

भावार्थ—बीज में और जड़ में भी वह ब्रह्म स्वयं ही समाया हुआ है। शाखाओं या डालियों, पत्तों, फूलों, फलों और रसों में भी वह स्वयं ही व्याप्त हो रहा है।

पंचन पंच मिलाइकै, जीव ब्रह्म में लीन।
जीवनमुक्त कहावही, रसनिधि वह परबीन ॥३८॥

शब्दार्थ—पंचन=पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंच

महाभूत। **जीवनमुक्त**=जो अपने जीवन-काल में ही मुक्त हो गया। **परबीन**=प्रवीण, चतुर।

भावार्थ—जिन महापुरुषों ने पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु, इन पाँच तत्त्वों को पाँचों में मिलाकर जीव को ब्रह्म में मिला दिया, वे चतुर पुरुष ही जीवन्मुक्त कहाते हैं। भाव यह है कि जो मनुष्य अपने शरीर के पंचमहाभूतों में से जल में जल को, वायु में, वायु को आकाश में आकाश को, तेज में तेज को, पृथ्वी में पृथ्वी को मिला देते हैं, न वे पृथ्वी के गुण सुगन्धि के लिए उत्सुक होते हैं, न जल के गुण किसी रस के लिए ही ललचाते हैं, न तेज के गुण रूप पर ही मोहित होते हैं, न आकाश के गुण शब्द—गाने आदि पर मस्त होते हैं और न वायु के गुण किसी सुखद स्पर्श की ही आकांक्षा करते हैं। इस प्रकार रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि विकारों से जिनका मन विकृत नहीं होता, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

कुदरत वाकी भर रहो, रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन बिन बनियौ रहै, ज्यौं पाहन में आग ॥३९॥

शब्दार्थ—**वाकी**=उसकी। **जाग**=स्थान। **बनियौ रहै**=बनी रहती है। **पाहन**=पत्थर।

भावार्थ—जैसे बिना ईंधन के भी पत्थर में आग समाई रहती है, वैसे ही सभी स्थानों में उस प्रभु की महिमा व्याप्त हो गई है।

अलख सबैई लखत वह, लख्यौ न काहू जाइ।
दृग तारिन के तिलक की, झाँकि न झाँकी जाइ ॥४०॥

शब्दार्थ—**अलख**=जो किसी को दिखाई न दे, वह ईश्वर। **सबैई**=सबको। **लखत**=देखता है। **लख्यौ जाय**=देखता जाता। **दृग**=आँखें। **तारिन**=पुतलियाँ।

भावार्थ—वह अलक्ष्य ईश्वर सब को देखता है पर उसे कोई नहीं देख सकता, जैसे आँखों की पुतलियाँ सबको देखती हैं पर कोई भी अपने

आप अपनी उन पुतलियों को नहीं देख पाता।

गरजन मैं पुनि आपु ही, बरसन मैं पुनि आपु।
सुरझन मैं पुनि आपु त्यौं, उरझन मैं पुनि आपु ॥४१॥

शब्दार्थ—सुरझन=सुलझना। उरझन=उलझना।

भावार्थ—बादलों के गर्जने में भी वह ब्रह्म ही है एवं उनके बरसने में भी वही व्याप्त हो रहा है। सुलझने में भी वही है और उलझने में भी वही है। अर्थात् सारे संसार में उसके सिवाय और दूसरा कोई नहीं है।

कहुँ गावै नाचै कहूँ, कहूँ देत है तार।
कहूँ तमासा देखही, आपु बैठ रिझवार ॥४२॥

शब्दार्थ—तार=ताल। रिझवार=प्रसन्न होने वाला।

भावार्थ—वह ब्रह्म कहीं नाचता है, कहीं गाता है, कहीं ताल देता है और कहीं बैठा प्रसन्न होकर दर्शक के रूप में तमाशा देखता है। भाव यह कि ब्रह्म ही अनेक रूपों में व्याप्त है।

नर पसु कीट पतंग मैं, थावर जंगम मेल।
ओट लियै खेलत रहै, नयौ खिलारी खेल ॥४३॥

शब्दार्थ—कीट=कीड़ा। थावर=स्थावर, स्थिर रहने वाले जड़ पदार्थ। जंगम=चलते-फिरते, चेतन पदार्थ। ओट=आड़, परदा।

भावार्थ—वह ब्रह्म रूपी खिलाड़ी मनुष्य, पशु, कीड़े, पतंगे, जड़ और चेतन आदि नाना रूपों की ओट लेकर नाना प्रकार के खेल नित्य ही खेलता रहता है।

हिंदू मैं क्या और है, मुसलमान मैं और।
साहिब सब का एक है, व्याप रहा सब ठौर ॥४४॥

शब्दार्थ—साहिब=स्वामी, ईश्वर।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वह ईश्वर हिन्दुओं का कोई दूसरा और मुसलमानों का क्या कोई और है ? वह सर्वव्यापक प्रभु तो हिन्दू और मुसलमान दोनों का एक ही है।

कहुँ नाचत गावत कहूँ, कहूँ बजावत बीन।
सब मैं राजत आपु ही, सब ही कला प्रबीन ॥४५॥

शब्दार्थ—राजत=शोभित होता है। प्रबीन=चतुर।

भावार्थ—वह ब्रह्म कहीं गाता, कहीं बीन बजाता, कहीं नाचता है। सभी कलाओं में निपुण वह ईश्वर ही सब रूपों में सुशोभित हो रहा है।

जल समान माया लहर, रबि समान प्रभु एक।
लहि वाके प्रतिबिंब कौं, नाचत भाँति अनेक ॥४६॥

शब्दार्थ—समान=जैसा। रबि=रवि, सूर्य। लहि=प्राप्त करके। वाके=उसके। प्रतिबिम्ब=परछाईं। अनेक भाँति=कई प्रकार के, कई तरह से।

भावार्थ—यह माया तो जल की लहर के समान है और वह एक प्रभु परमात्मा सूर्य के समान है। उस परमात्मा रूपी सूर्य के प्रतिविम्ब माया रूपी जल की लहरों में अनेक रूप धारण कर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

राई कौ बीसौ हिसा, ताहूँ मैं पुनि आई।
प्रभु बिन खाली ठौर कहुँ, इतनौहूँ न दिखाइ ॥४७॥

शब्दार्थ—बीसौ=बीसव। हिसा=हिस्सा, भाग। ताहू में=उसमें भी। ठौर=स्थान।

भावार्थ—राई के बीसवें भाग के समान सूक्ष्मतम अंश में भी वह प्रभु व्याप्त हो रहा है। कोई इतना-सा स्थान भी ऐसा नहीं है जो प्रभु की सत्ता से रहित हो।

अलख जात इन दृगनि सौं, विदित न देखी जाइ।
प्रेम कांति वाकी प्रगट, सब ही ठौर दिखाइ ।।४८।।

शब्दार्थ—अलख=अलक्ष्य, ईश्वर। दृगनि=आँखें। विदित=ज्ञात, मालूम। कान्ति=चमक।

भावार्थ—उस अलक्ष्य—न दिखाई देने वाले—प्रभु की ज्योति या मूर्ति इन नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती। पर उसके प्रेम की कांति या चमक तो सर्वत्र ही दिखाई देती है।

जदपि रह्यौ है भावतौ, सकल जगत भरपूर।
बल जैयै वा ठौर की, जहँ ह्वै करै जहूर ।।४९।।

शब्दार्थ—भावतौ=मनभाया ईश्वर। बल जैयै=बलिहारी जाऊँ। ह्वै=होकर। जहूर=प्रकाश।

भावार्थ—यद्यपि वह परम प्रियतम परब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, फिर भी राम-कृष्ण आदि के जिन-जिन विग्रहों या शरीरों के द्वारा वह अपनी कांति का प्रकाश करता है, मैं उनकी बलिहारी हूँ। भाव यह कि यूँ तो सृष्टि का अणु-अणु उस प्रभु का रूप ही है पर फिर भी राम-कृष्ण आदि अवतारों के रूप में वह अपनी शक्ति को विशेष व्यक्त करता है।

पंच तत्त्व की देह मैं, त्यौं सुर व्यापक होइ।
विस्वरूप मैं ब्रह्म ज्यौं, व्यापक जानौ सोइ ।।५०।।

शब्दार्थ— व्यापक=सब जगह फैला हुआ। विश्वरूप=विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड ही जिसका रूप है, वह परब्रह्म। सुर=शब्द, देवता या प्राण।

भावार्थ—जिस प्रकार पंचतत्त्वों द्वारा निर्मित शरीर में प्राण सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, वैसे ही इस ब्रह्माण्ड के रूप में उस परम प्रभु परमात्मा को भी सर्वत्र व्याप्त समझो।

रस ही मैं औ' रसिक मैं, आपुहि कियौ उदोत।
स्वाति-बूँद मैं आपु ही, आपुहि चात्रिक होत ॥५१॥

शब्दार्थ—औ=और। उदोत=प्रकाश। चात्रिक=चातक, पपीहा।

भावार्थ—उस ब्रह्म ने रस में भी अपना प्रकाश किया हुआ है और रसिक में भी वह स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है। पपीहा जिसके लिए तरसता रहता है, उस स्वाति नक्षत्र की वर्षा की बूँद में भी वही है और पपीहा भी वही है।

करत फिरत मन बावरे, आप नहीं पहिचान।
तो ही मैं परमातमा, लेत नहीं पहिचान ॥५२॥

शब्दार्थ—बावरे=पागल।

भावार्थ—हे पागल मन! तू इधर-उधर भटकता रहता है और अपने-आपको नहीं पहचानता। वह परम प्रियतम प्रभु तुझमें ही है, तू उसे पहचान क्यों नहीं लेता!

तूं सज्जन या बात कौं, समुझ देख मन माहिं।
अरे दया मैं जो मजा, सो जुलमन मैं नाहिं ॥५३॥

भावार्थ—हे सज्जन! तू इस बात को मन में समझ कर देख ले कि दूसरे लोगों पर दया करने में जो आनन्द है, वह दूसरों पर अत्याचार करने से कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

सज्जन हो या बात को, करि देखो जिय गौर।
बोलन चितवन चलन वह, दरदवंत को और ॥५४॥

शब्दार्थ—गौर=ध्यान। चितवन=देखना। दरदवंत=दूसरे के दुःख-दर्द को जानने वाला, दयालु।

भावार्थ—हे सज्जन! इस बात को हृदय में ध्यान देकर देख लो कि

दूसरे के दुःख-दर्द को जानने वाले दयालु पुरुषों का बोलना, चलना आदि सभी कार्य और ही प्रकार के होते हैं, अर्थात् उनके प्रत्येक कार्य में दया के भाव झलकते हैं।

मीता तूँ या बात कौं, हिए गौर करि हेर।
दरदवंत बेदरद कौं, निसि बासर कौं फेर ॥५५॥

शब्दार्थ—मीता=मित्र। बेदद=निर्दय। निसि=रात। बासर=दिन। फेर=भेद, अन्तर।

भावार्थ—हे मित्र ! तू इस बात को अपने हृदय में विचार कर देख ले कि निर्दय और दयालु पुरुषों में रात-दिन का अन्तर होता है।

सज्जन पास न कहु अरे, ये अनसमझी बात।
मोम-रदन कहुँ लोह के, चना चबाये जात ॥५६॥

शब्दार्थ—अनसमझी=बेसमझों जैसी, मूर्खता की। रदन=दाँत।

भावार्थ—हे भाई ! सज्जनों के पास कोई मूर्खता की बात मत कहो। भला कहीं मोम के दाँतों से भी लोहे के चने चबाये जा सकते हैं, अर्थात् कभी नहीं चबाये जा सकते। भाव यह है कि जैसे मोम के दाँतों से लोहे के चने नहीं चबाये जा सकते ऐसे ही समझदार मूर्खता की बात को नहीं मान सकते।

जब देखौ तब भलन तैं, सजन भलाई होहि।
जारै जारै अगर ज्यौं, तजत नहीं खसबोहि ॥५७॥

शब्दार्थ—जारैं=जलाने पर। अगर=एक सुगन्धित पदार्थ जिसकी अगरबत्ती बनती है। खसबोई=खुशबू, सुगन्धि।

भावार्थ—भले पुरुषों से सज्जनों की भलाई ही होती है। जैसे कि अगर को जलाया जाय तो उससे सुगन्धि ही आती है वह जलने पर भी अपनी सुगन्धि को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार सज्जन कष्ट सहकर भी दूसरों का उपकार करते हैं।

बेदाना सै होत है, दाना एक किनार।
बेदाना नहिं आदरै, दाना एक अनार ॥५८॥

शब्दार्थ—बेदाना=जो बुद्धिमान् न हो, मूर्ख। दाना=बुद्धिमान्।

भावार्थ—मूर्ख मनुष्यों में से बुद्धिमान् मनुष्य अलग हो जाते हैं। जैसे कि बिना दाने के अनार का कोई आदर नहीं करता, पर अनार के एक-एक दाने का सभी आदर करते हैं।

प्रीतम इतनी बात कौ, हिय कर देखु बिचार।
बिनु गुन होत सु नैकहूँ, सुमन हिए कौ हार ॥५६॥

शब्दार्थ—गुन=गुण और तागा। सुमन=सुन्दर मन और पुष्प।

भावार्थ—हे सज्जनो, तुम अपने मन में इस बात को विचार कर देख लो कि बिना गुणों के कोई भी व्यक्ति किसी भी शुद्ध मन वाले व्यक्ति के हृदय का हार नहीं हो सकता। जैसे कि बिना धागे के कोई भी हृदय का हार नहीं बन सकता। फूल जब धागे में पिरोये जाते हैं, तभी हार बनकर दूसरों के हृदयों पर स्थान प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी तभी किसी के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकता है जब उसमें गुण हों। बिना गुणों के कोई किसी को नहीं पूछता। यहाँ गुण शब्द के दो अर्थ हैं—विद्या आदि गुण और धागा।

हित करियत यह भाँ ति सौं, मिलियत है वह भाँत।
छीर नीर तैं पूछ लै, हित करिबे की बात ॥६०॥

शब्दार्थ—हित=प्रेम। छीर=क्षीर, दूध। नीर=जल।

भावार्थ—एक-दूसरे को कैसे प्रेम किया जाता है और एक-दूसरे किस प्रकार आपस में मिल जाते हैं—प्रेम करने की इस रीति को तुम दूध और पानी से पूछ लो। दूध और पानी दोनों एक-दूसरे को इतना प्यार करते हैं कि दोनों एकाकार हो जाते हैं। दूध पानी को अपने में मिलाकर

उसे भी अपने जैसा बना लेता है, यही मित्र की पहचान है कि अपने मित्र को भी अपने जैसा श्रेष्ठ बना ले।

बढ़त आपनौ गोत कौ, और सबै अनखाइ।
सुहृद नैन नैना बढ़े, देखत हियौ सिहाइ ।।६१।।

शब्दार्थ—गोत=जाति, गोत्र। अनखाई=झुँझलाते हैं, दुखी होते हैं। सुहृद=मित्र। हियौ=हृदय। सिहाइ=प्रसन्न होता है।

भावार्थ—और सब लोग तो अपनी जाति वालों को बढ़ते देखकर ईर्ष्या से जल जाते हैं, पर मित्र के बड़े नेत्रों को देखकर नेत्रों को बड़ी शान्ति मिलती है। भाव यह कि अपने प्रिय की सुन्दर और बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर मनुष्य को बड़ी प्रसन्नता होती है।

पसु पच्छी हू जानहीं, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौं तुमैं, जब जानौ पर-पीर ।।६२।।

शब्दार्थ—पच्छी=पक्षी। सुजान=सज्जन।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि अपने दुःख-दर्द को तो पशु-पक्षी भी पहचानते हैं, पर सज्जन तो वही है जो दूसरों के दुःख-दर्द को पहचाने और उन्हें दूर करने का यत्न करे।

इतनौई कहनौ हतौ, प्रीतम तोसौं मोहि।
मान राखबी बात तौ, मान राखनौ तोहि ।।६३।।

शब्दार्थ—हतौ=था। राखबी=रखना।

भावार्थ—हे प्रियतम, मुझे तुमसे इतना ही कहना था कि यदि तुम अपनी बात मनाना चाहते हो तो तुम्हें दूसरे का मान करना चाहिए। भाव यह कि तुम दूसरे का मान करोगे तो दूसरे भी तुम्हारी बात मानेंगे।

कहै अलप मति कौन बिध, तेरे गुन बिस्तार।
दीन-बन्धु प्रभु दीन कौं, लै हर बिधि निस्तार ।।६४।।

शब्दार्थ—**अलप**=थोड़ी । **मति**=बुद्धि । **कौन बिध**=किस प्रकार । **निस्तार**=छुटकारा, उद्धार । **हरबिध**=प्रत्येक प्रकार से ।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैं छोटी बुद्धि वाला भला आपके गुणों के विस्तार का किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ । हे दीनबन्धो ! मुझ दीन का आप प्रत्येक प्रकार से उद्धार कर दीजिए अथवा मेरा सदा ध्यान रखते रहिए ।

गह्यौ ग्राह गज जिहि समै, पहुँचत लगी न बार ।
और कौन ऐसे समै, संकट काटनहार ॥६५॥

शब्दार्थ—**गह्यौ**=पकड़ लिया । **ग्राह**=मगरमच्छ । **गज**=हाथी । **जेहि समै**=जिस समय । **बार**=देर । **संकट**=कष्ट । **काटनहार**=काटने वाला ।

भावार्थ—जिस समय हाथी को मगरमच्छ ने पकड़ लिया और वह उसे खींच कर पानी में ले जाने लगा तो भगवान् को उसकी रक्षा के लिए पहुँचने में कुछ भी देर नहीं लगी । ऐसे समय में भक्तों के संकट को काटने वाले भगवान् के सिवाय भला और कौन हो सकता है !

जौ कुछ उपजत आइ उर, सो वे आँखैं देत ।
रसनिधि आँखैं नाम इन, पायो अरथ समेत ॥६६॥

शब्दार्थ—**उपजत**=उत्पन्न होता है । **उर**=हृदय । **आँखैं देत**=कह देती हैं ।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि हृदय में जो कुछ विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को ये आँखें 'आख' देती हैं अर्थात् कह देती हैं । इसीलिए इनका यह सार्थक 'आँखें' नाम है । (पंजाबी में 'कह देने' को 'आख देना' कहते हैं । इसी आधार पर कवि ने आँख शब्द की यह नई निरुक्ति की है ।)

श्रवत रहत मन कौं सदा, मोहन-गुन अभिराम।
तातैं पायो रसिकनिधि, श्रवन सुहायौ नाम ॥६७॥

शब्दार्थ—श्रवत=बहता। **अभिराम**=सुन्दर। **श्रवन**=कान। **सुहायौ**=सुन्दर।

भावार्थ—क्योंकि इन कानों में श्रीकृष्ण के सुन्दर गुण स्रवित होते रहते हैं अर्थात् अन्दर की ओर झरते रहते हैं। इसीलिए इनको 'श्रवन' यह सुन्दर नाम प्राप्त हुआ है। यहाँ पर 'श्रवन' शब्द की नई और सुन्दर व्युत्पत्ति की गई है।

मन मैला मन निरमला, मन दाता मन सूम।
मन ज्ञानी अज्ञान मन, मनहिं मचाई धूम ॥६८॥

शब्दार्थ—निरमला=पवित्र, शुद्ध। **दाता**=दान देने वाला। **सूम**=कंजूस।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि मन ही मैला या अपवित्र है और मन ही पवित्र है, मन ही उदार (दान देने वाला) है और मन ही कंजूस है। मन ही ज्ञानी है, और मन ही अज्ञानी है। इस प्रकार मन ने सारे संसार में अपनी धूम मचा रखी है।

उड़ौ फिरत जो तूल सम, जहाँ तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धर्यौ, कहा जान मन नाम ॥६९॥

शब्दार्थ—तूल=रुई। **सम**=समान। **बेकाम**=व्यर्थ। **हरुये**=हल्के। **धर्यौ**=रक्खा।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि जो मन रुई के समान व्यर्थ ही इधर-उधर उड़ता फिरता है, ऐसी हल्की वस्तु का न जाने क्यों 'मन' अर्थात् चालीस सेर वज़न का मन इतना भारी नाम रखा है।

को अवराधे जोग तुव, रहु रे मधुकर मौन।
पीतांबर के छोर तैं, छोर सकैं मन कौन ॥७०॥

शब्दार्थ—अवराधे=आराधना करे। तुव=तेरा। मधुकर=भ्रमर (यहाँ इसका अर्थ उद्धव है) मौन=चुप। पीताम्बर=पीत वस्त्र धारण करने वाले श्रीकृष्ण। छोर=पल्ला।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यहाँ तुम्हारे बताये हुए योग की आराधना कौन करे अर्थात् कोई नहीं कर सकता। इसलिए तुम यहाँ योग की चर्चा मत करो और चुप हो जाओ। भला हमारे मन को पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण के पल्ले से कौन छुड़ा सकता है अर्थात् कोई नहीं अलग कर सकता।

तेरे घर विधि कौं दयौ, दयौ न कोऊ खात।
गोरस हित घर घर लला, काहे फिरत ललात ॥७१॥

शब्दार्थ—विधि=विधाता। गोरस=दूध, दही, मक्खन आदि। ललात=ललचाते हुए।

भावार्थ—घर-घर मक्खन चुराते हुए श्रीकृष्ण को रोकती हुई यशोदा कहती है कि हे लाल! तेरे घर भगवान् का दिया बहुत कुछ है। हम किसी का दिया नहीं खाते। फिर तुम गोरस अर्थात् दूध आदि के लिए घर-घर में क्यों ललचाते फिरते हो। तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि तुम दूध-दही के लिए दूसरों के घर भटकते फिरो।

जान अजान न होत है, जगत विदित यह बात।
बेर हमारी जान कै, क्यों अजान होइ जात ॥७२॥

शब्दार्थ—जान=जानने वाला। विदित=ज्ञात, मालूम।

भावार्थ—यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि कोई भी जानने वाला आदमी संसार में अनजान नहीं हो सकता। पर हे भगवन्! आप मेरी बारी मेरे उद्धार की बात जानते हुए भी क्यों अनजान बने हुए हो।

अतः हे भगवन्, मेरा उद्धार आप अवश्य कर दीजिए।

नंदलाल संग लग गए, बुध बिचार बर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग ब्रज, आयो कौन सयान ॥७३॥

शब्दार्थ—बुध=बुद्धि। बर=श्रेष्ठ। सयान=चतुर।

भावार्थ—ब्रज में उपदेश देने के लिए उद्धव को आया जानकर गोपियाँ परस्पर कहती हैं कि हमारी बुद्धि, विचार और ज्ञान पहले ही श्रीकृष्ण के साथ चले गये, अब यहाँ ऐसा कौन है जो किसी का उपदेश सुन सके, फिर न जाने कोई चतुर हमें उपदेश देने क्यों आया है। भाव यह कि हम यहाँ उद्धव के निर्गुणवाद का उपदेश नहीं सुनना चाहतीं।

मोहन लखि जो बढ़त सुख, सो कछु कहत बनै न।
नैनन कै रसना नहीं, रसना कै नहिं नैन ॥७४॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। कहत बनै न=अब कहा नहीं जाता।

भावार्थ—श्रीकृष्ण को देखकर जैसा दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्द का कोई वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि जो आँखें देखती हैं, उनके तो कोई जीभ नहीं है जो वर्णन कर सकें, और जो जीभ वर्णन कर सकती है उसके आँखें नहीं हैं। बिना देखे वह बेचारी जीभ उसका क्या वर्णन कर सकती है!

मैं जानी रसनिधि सही, मिली दुहुनि की बात।
जित दृग तित चित जात है, जित चित तित दृग जात ॥७५॥

शब्दार्थ—दृग=आँख। दुहुनि की=दोनों की।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि मैंने यह भली-भाँति जान लिया है कि मन और आँखों ने परस्पर अपनी बात बना ली है क्योंकि जहाँ नेत्र जाते हैं वहीं मन चला जाता है और जहाँ मन जाता है वहाँ आँखें भी चली जाती हैं।

तन मन तोपै वारिबौ, यह पतंग कौ नाम।
एते हूँ पै जारिबौ, दीप तिहारो हि काम ॥७६॥

शब्दार्थ—तोपै=तुझ पर। वारिबौ=न्योछावर करना। एते हूँ पै=इतने पर भी। जारिबौ=जलाना। दीप=दीया। तिहारो=तेरा।

भावार्थ—रसनिधि कवि दीपक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि पतंग तो तुझ पर अपना तन और मन सब कुछ न्योछावर कर देता है। इतने पर भी अपने इस प्रेमी को जला देना। हे निष्ठुर दीपक! तेरा ही काम है। अर्थात् वह दीपक बड़ा निर्दयी है जो अपने प्रेमी पतंगों को जला देता है।

तोय मोल में देत हौ, छीरहि सरिस बढ़ाइ।
आँच न लागन देत वह, आप पहिल जर जाइ ॥७७॥

शब्दार्थ—तोय=पानी। छीर=दूध। सरिस=सदृश, समान। जर जाइ=जल जाता है।

भावार्थ—दूध पानी को अपने में मिलाकर उसका मूल्य अपने ही समान बना देता है। पर जब दूध को आग पर गरम किया जाता है तो दूध से पहले पानी अपने को जला लेता है और दूध को बचा लेता है। इस प्रकार अपने मित्र के प्राणों की रक्षा कर उसके उपकार का बदला चुका देता है। मित्रता हो तो दूध और पानी जैसी हो।

लखि बढ़यार सुजातिया, अनख धरै मन नाहिं।
बड़े नैन लखि अपुन पै, नैनन सही सिहाहिं ॥७८॥

शब्दार्थ—लखि=देखकर। बढ़यार=बढ़ता हुआ। सुजातिया=अपनी जाति वाले को, अच्छी जाति वाला, कुलीन। अनख=ईर्ष्या, जलन। सिहाहिं=प्रसन्न और शीतल होते हैं, या ईर्ष्या करते हैं।

भावार्थ—कुलीन लोग अपनी जाति वालों को बढ़ता देखकर मन में

जलन नहीं रखते हैं जैसे आँखें बड़ी आँखों को देखकर अत्यंत प्रसन्न व शीतल हो जाती हैं। इस दोहे का अर्थ इस प्रकार भी कर सकते हैं कि अपनी जाति वालों को बढ़ता देखकर किस के मन में जलन उत्पन्न नहीं होती जैसे आँखें बड़ी आँखों को देखकर ईर्ष्या करने ही लगती हैं।

प्यास सहत पी सकत नहिं, औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी, गज ही के गर आन ॥७९॥

शब्दार्थ—**औघट**=कम गहरा घाट। **गज**=हाथी। **गरुवाई**=बड़प्पन। **गर**=गला। **आन**=आकर।

भावार्थ—हाथी प्यास सह लेता है पर औघट अर्थात् कम गहरे ऊबड़-खाबड़ घाट में पानी नहीं पी सकता। इस प्रकार हाथी के बड़प्पन का दोष . के गले पड़ा कि कम गहरे पानी से पानी नहीं पी सकता और प्यासा ही रहता है।

औघट घाट पखेरुवा, पीवत निरमल नीर।
गज गरुवाई तैं फिरै, प्यासे सागर तीर ॥८०॥

शब्दार्थ—**पखेरुवा**=पक्षी। **निरमल**=स्वच्छ। **नीर**=पानी। **गरुवाई**=भारीपन, बड़प्पन।

भावार्थ—उथले या कम गहरे घाटों पर भी पक्षी तो निर्मल पानी पी लेते हैं, पर हाथी बड़प्पन के कारण समुद्र के तट पर भी (जहाँ पानी गहरा न हो) प्यासा ही मरता है।

धरि सौने कै पींजरा, राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है, विष ही मैं सुख पाइ ॥८१॥

शब्दार्थ—**विष**=ज़हर। **कीरा**=कीड़ा।

भावार्थ—ज़हर के कीड़े को चाहे सोने के पिंजरे में भी क्यों न रखें और अमृत भी क्यों न पिलायें फिर भी वह तो ज़हर खाकर ही

प्रसन्न होगा। भाव यह है कि दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता कभी नहीं छोड़ता, चाहे उसे कितना ही सुख क्यों न दो।

बैठत इक पग ध्यान धरि, मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारै हो गए, रसनिधि याही हेत॥८२॥

शब्दार्थ—मीनन=मछलियाँ। **बक**=बगुले। **कारै**=काले। **याही हेत**=इसीलिए।

भावार्थ—ये बगुले ऊपर से तो ऐसे दीखते हैं कि मानो एक पाँव र खड़े होकर तपस्या कर रहे हैं और भगवान् का ध्यान कर रहे हैं, र ये मछलियों को पकड़ कर खा जाते हैं; इस प्रकार उन्हें दुःख देते । रसनिधि कवि कहते हैं कि मानो इसी पाप के कारण ही बगुलों के ख और चोंच काली हो गई है। कोई आदमी बुरा काम करता है तो सका मुँह काला कर दिया जाता है। बगुले मछलियों को सताने का बुरा काम करते हैं, इसीलिए मानो ईश्वर ने उनके मुख काले कर दिये हैं।

अमित अथाहै हौ भरै, जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जौ न तुम, आए प्यासन काम॥८३॥

शब्दार्थ—अमित=अपार। **अथाह**=बहुत गहरा। **समुद**=समुद्र। **अभिराम**=सुन्दर।

भावार्थ—रसनिधि कवि समुद्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे समुद्र! चाहे तुम बहुत लम्बे-चौड़े विस्तृत और बहुत गहरे हो, साथ ही दीखते भी बहुत सुन्दर हो, पर यदि किसी प्यासे के काम न आये तो तुम्हारा क्या लाभ है अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं। भाव यह कि चाहे कोई कितना भी धनवान् क्यों न हो पर यदि वह दूसरों को लाभ नहीं पहुँचाता तो उसके धनवान् होने का कोई लाभ नहीं।

गुल गुलाब अरु कमल कौ, रस लीन्हौं इक ताक।
अब जीवन चाहत मधुप, देख अकेलौ आक ॥८४॥

शब्दार्थ—गुल=फूल। मधुप=भौंरा।

भावार्थ—इस भौंरे ने अब तक तो गुलाब और कमल के फूलों का मन भर के रसपान किया है पर अब उसे अकेले आक के पौधों में अपना जीवन बिताना पड़ रहा है। भाव यह कि जो मनुष्य पहले बहुत सुख देखता है, बाद में उसे दुःख भी देखने पड़ते हैं।

काग आपनी चतुरई, तब तक लेहु चलाइ।
जब लग सिर पर दैइ नहिं, लगर सतूना आइ ॥८५॥

शब्दार्थ—काग=कौवा। लगर=बाज़, लग्घड़ नामक एक पक्षी। सतूना=बाज की झपट।

भावार्थ—हे कौए! तू अपनी चतुरता तब तक दिखा ले जब तक कि तेरे सिर पर लगर या बाज पक्षी आकर अपनी झपट नहीं मारता। भाव यह है कि जब तक मृत्यु मनुष्य को आकर नहीं पकड़ लेती, तभी तक मनुष्य का चंचल मन अपनी चतुरता दिखाता है।

चल न सकै निज ठौर तैं, जे तन द्रुम अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिबौ, लाजिम तुहि घनस्याम ॥८६॥

शब्दार्थ—निज=अपना। ठौर=स्थान। द्रुम=वृक्ष। अभिराम=सुन्दर। बरसिबौ=बरसाना। लाजिम=आवश्यक, उचित। घनस्याम=बादल।

शब्दार्थ—रसनिधि कवि बादल को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे बादल! जो बेचारे सुन्दर वृक्ष अपने स्थान से चल नहीं सकते, उन वृक्षों के पास आकर रस की वर्षा करना तुम्हारा ही काम है। अथवा तुम्हारे लिए ऐसा उचित ही है। भाव यह कि उदार दानी पुरुष या

भगवान् सब लोगों की सहायता करते हैं।

तेरो है या साहिबी, वार पार सब ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै, तुही प्रभू कर गौर ॥८७॥

शब्दार्थ—निसतार=आदि अंत। गौर=ध्यान, विचार।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि हे भगवन्! इस संसार के आर या पार सभी स्थानों में तेरी प्रभुता व्याप्त हो रही है। इसका आदि अंत भला कौन पा सकता है, यह तुम्हीं बताओ। भगवान् की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता।

रोम रोम जो अघ भरयो, पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निबाहियौ, प्रभु तेरोई काम ॥८८॥

शब्दार्थ—अघ=पाप। पतित=पापी। सिरनाम=शिरोमणि।

भावार्थ—हे भगवन्! मेरे रोम-रोम में पाप भरे हुए हैं, मैं पापियों का शिरोमणि हूँ। ऐसे मुझ पापी का निर्वाह करना या उद्धार करना, रसनिधि कवि कहते हैं कि हे प्रभु! तुम्हारा ही काम है।

गंग प्रगट जिहि चरण तैं, पावन जग कौ कीन।
तिहि चरनन कौ आसरौ, आइ रसिकनिधि लीन ॥८९॥

शब्दार्थ—पावन=पवित्र। आसरौ=सहारा। लीन=लिया।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि भगवान् विष्णु के जिन चरणों से प्रकट हुई गंगा ने सारे संसार को पवित्र कर दिया, मैंने भगवान् के उन्हीं चरणों का सहारा ले लिया है। पुराणों में लिखा है कि गंगा भगवान् विष्णु के चरणों का चरणामृत है।

लखि औगुन तन अपनै, भूल सबै सुधि जाइ।
अधम-उधारन-बिरद तुव, रसनिधि सुमिर सुहाइ ॥९०॥

शब्दार्थ—लखि=देखकर। औगुन=दोप। अधम-उधारन=

गिरिधर राय

परिचय

जन्म-संवत् १७७०

गिरिधर कुण्डलियों से हिन्दी-साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। कविराय पद से यह भाट जान पड़ते हैं। इनका जन्म १७७० के लगभग माना जाता है। यह मुलतान के किसी आसपास प्रदेश के रहने वाले थे। कहा जाता है कि इनकी एक बढ़ई से अनबन हो गई थी। उस बढ़ई का राजा के यहाँ बड़ा मान था। एक बार बढ़ई ने राजा को पलंग बनाकर दिया। पलंग सुन्दर था, राजा ने फिर उसी प्रकार दूसरा पलंग बनाने के लिए कहा। बढ़ई को गिरिधर कविराय को अपमानित करने की सूझी। उसने राजा से कहा कि यदि गिरिधर कविराय के घर की बेरी की लकड़ी मिल जाय तो वैसा पलंग तैयार हो सकता है। गिरिधर के अनुनय-विनय करने पर भी राजा ने वृक्ष कटवा ही डाला। गिरिधर ने इस अपमान को न सहते हुए अपनी पत्नी सहित बाहर जाने की ठान ली। पत्नी सहित मार्ग में घूमते हुए आपने हिन्दी-साहित्य की रत्नमयी कुण्डलियाँ लिखीं। कहा जाता है कि इनकी पत्नी भी बड़ी कवयित्री थीं। इनकी और इनकी पत्नी की कुण्डलियाँ दूध-मिश्री की भाँति मिल गई हैं। साईं नाम से लिखी हुई कुण्डलियाँ इनकी पत्नी की लिखी हुई हैं। इनकी कुण्डलियों के विषय राजनीति, समाजहित तथा धर्मादि हैं। यद्यपि इन्होंने व्याकरण पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया तथापि कुण्डलियों का स्थान इनके अनूठे कथन के कारण ऊंचा है।

कुण्डलियाँ

सार और आलोचना

मनुष्य धोखे से बड़ी-बड़ी भूल कर देता है। मित्र के वियोग के बराबर संसार मे कोई दुःख नहीं। चाहे प्राणों पर आ बने पर सज्जन अपने प्रण को भंग नहीं करते—इत्यादि सार और व्यावहारिक विचारों से आपकी कुण्डलियाँ ओत-प्रोत हैं।

आपकी कुण्डलियों में उपदेश की मात्रा अधिक है—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥

आपने अपनी कविता में उपदेश का 'भी' के स्थान पर उपदेश का 'ही' कर्म होना चाहिए, इस पर अधिक बल दिया है। आपकी कविता का लक्ष्य उपदेश से मनोरंजन करना है, मनोरंजनात्मक सामग्री से उपदेश प्राप्त करना नहीं।

सुवा एक दाड़िम के धोके, गयो नारियल खान।
कछु खायो कछु खान न पायो, फिर लागो पछितान॥
फिर लागो पछितान, बुद्धि अपनी को रोवा।
निर्गुणियन के साथ बैठि, अपने गुन खोआ॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो रे मोरे नोखे।
गयो झटाका टूटि चोंच, दाड़िम के धोखे॥१॥

शब्दार्थ—**सुवा**=तोता। **दाड़िम**=अनार। **रोवा**=रोया। **निर्गुणियन**=गुणहीन।

भावार्थ—एक तोता एक दिन अनार के धोखे में नारियल खाने के लिए चला गया। अत्यन्त कठोर होने के कारण उसने कुछ तो नारियल

खा लिया और कुछ न खा सका। फिर पछताने लगा और अपनी बुद्धि पर रोने लगा। निर्गुण व्यक्तियों के पास बैठकर मनुष्य अपने गुण भी खो देता है। गिरिधर कविराय कहते हैं कि हे मेरे प्रिय मित्रो ! सुनो इस प्रकार इस बेचारे भोले-भाले तोते की चोंच अनार के धोखे में नारियल को खाते हुए एक झटके में टूट गई। भाव यह है कि मनुष्य को कोई भी काम सोच-समझ कर करना चाहिए। अत्यधिक लोभ बुरी बला है।

मोती लादन पिय गए, धुर पटना गुजरात।
मोती मिले न पिय मिले, युग भर बीती रात॥
युग भर बीती रात, विरहिनी विरह सतावै।
चौंक परी ब्रजनारि पिया को लिखा न आवै॥
कह गिरिधर कविराय, गोपिका यह कह रोती।
आगि लगै वह देश, जहाँ उपजत हैं मोती॥२॥

शब्दार्थ—लादन=लादने के लिए, भरने के लिए। धुर=ठेठ या तक।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि अपनी प्रिया से बिछुड़ कर प्रियतम मोती लाने के लिए ठेठ गुजरात और पटना तक चले गये। इधर उनकी विरहिणी प्रेयसी के लिए एक-एक रात एक-एक युग के समान बीती और वह विरह से व्याकुल हो रही है। जैसे ब्रज की नारियाँ कृष्ण का कोई संदेश न पा कर परेशान रहती थीं वैसे ही यह विरहिणी भी पति के पत्र न आने पर दुखी रहती है और यह कहकर रो रही है कि उस देश को आग लगे जहाँ मोती उत्पन्न होते हैं, जिन मोतियों के लिए मुझसे मेरा प्रिय बिछुड़ गया।

मित्र-बिछोहा अति कठिन, मति दीजै करतार।
वाके गुण जब चित चढ़ै, वर्षत नयन अपार॥
वर्षत नयन अपार, मेघ सावन झरि लाई।
अब बिछुरे कब मिलौ, कहौ कैसी बन आई॥

कह गिरिधर कविराय, सुनो हो बिनती एहा।
हे करतार दयालु देहु, जनि मित्रबिछोहा ॥३॥

शब्दार्थ—**बिछोहा**=बिछुड़ना, विरह। **करतार**=ईश्वर। **वाके**=उसके। **वर्षत**=बरसते हैं। **झरि लाई**=झड़ी लग गई। **ऐहा**=यह। **जनि**=मत।

भावार्थ—हे प्रभु! मित्र से बिछुड़ना अत्यन्त कठिन है। इसलिए किसी को मित्र-वियोग मत दीजिए; क्योंकि जब उस मित्र के गुणों का स्मरण आता है तो आँखों में आँसुओं की इस प्रकार झड़ी लग जाती है मानो सावन-भादों के बादलों की झड़ी लगी हुई हो। मनुष्य सोचता है कि अब के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे। हम पर न जाने कैसी बन आई है।

गिरिधर कविराय कहते हैं कि हे दयालु भगवन्! मेरी यह प्रार्थना सुनें कि किसी को भी मित्र-वियोग मत दें।

पीवै नीर न सरवरौं, बूँद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चरि सकै, जो व्रत करै पचास।
जो व्रत करै पचास, विपुल गजजुत्थ बिदारै।
सुपुरुष तजे न धीर, जीव बरु कोई मारै।
कह गिरिधर कविराय, जीव जो धक भरि जीवै।
चातक बरु मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवै ॥४॥

शब्दार्थ—**पीवै**=पीता है। **नीर**=जल। **सरवरौ**=तालाब का। **स्वाति**=एक नक्षत्र। **आस**=आशा। **केहरि**=शेर। **तृण**=घास। **चरि सकै**=चर सकता है। **व्रत**=भूखे रहना। **गज**=हाथी। **विपुल**=बहुत से। **जुत्थ**=झुण्ड। **बिदारै**=चीर डाले। **सुपुरुष**=श्रेष्ठ मनुष्य। **तजे**=छोड़े। **धीर**=धैर्य। **जीव**=प्राण। **बरु**=चाहे। **धक भरि**=क्षण भर। **चातक**=पपीहा। **मरि जाय**=मर जाय।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि पपीहा स्वाति नक्षत्र में

हुए जल की बूँद की आशा में रहता है, पर वह कभी तालाब का पानी नहीं पी सकता। इसी प्रकार शेर चाहे पचासों दिन भूखा क्यों न रह जाय पर वह घास नहीं खा सकता। वह तो बड़े-बड़े हाथियों के झुण्डों को ही चीर-फाड़ फेंकता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ते चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जायँ। गिरिधर कविराय कहते हैं कि यह जीव तो घड़ी भर जीता है (श्रेष्ठ पुरुष उस जीवन की परवाह न कर अपने प्रण का वैसे ही पालन करता है जैसे कि) पपीहा मर भले ही जाय, पर तालाब का पानी नहीं पीता। भाव यह कि सज्जन अपने स्वीकृत व्रत का मरते दम तक पालन करते हैं।

मूसा कहै बिलार सौं, सुन रे झूठ झुठैल।
हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठत हो गैल।
तुम बैठत हो गैल, कचरि धक्कन सों जैहौं।
तुम तो निपट गरीब, कहा घर बैठे खैहौं।
कह गिरिधर कविराय, बात सुनिये हो हूसा।
वाउ दिनन का फेर, बिलारिहि सिसवैं मूसा ॥५॥

शब्दार्थ—**मूसा**=चूहा। **बिलार**=बिल्ली। **झूठ झुठैल**=झूठ बोलने वाला। **निकसत हैं**=निकलते हैं। **गैल**=रास्ता। **कचरि जैहौं**=कुचल जाओगे। **धक्कनसों**=धक्कों से। **निपट**=बिल्कुल, सर्वथा। **कहा**—क्या। **खैहौं**=खाओगे। **वाउ**=वह भी। **दिनन का**=दिनों का। **बिलरिहि**=बिल्ली को। **सिसव**=सिखाता है।

भावार्थ—चूहा बिल्ले को कहता है कि हे झूठ झुठैले बिल्ले! हम सैर के लिए निकलते हैं तो तुम हमारे मार्ग में आ बैठते हो। कहीं ऐसा न हो जाय कि हमारे धक्कों से कुचले जाओ। तुम बहुत गरीब हो। अगर कहीं ऐसा हो गया और तुम कुचले गये तो फिर घर बैठे क्या खाओगे।

गिरिधर कविराय कहते हैं कि मेरी बात सावधान होकर सुन लो। यह दिनों का फेर है कि चूहा बिल्ली को उपदेश दे रहा है। भाव यह कि बुरे दिन आने पर छोटे-छोटे आदमी भी बड़े-बड़ों पर शासन करने लग पड़ते हैं।

कौवा कहे मराल से, कहा जाति कह गोत।
तुम ऐसे बदरूपिया, कहूँ न जग में होत॥
कहूँ न जग में होत, महा मैले, मलखाना।
बैठि कचहरि जाय, वेद मर्याद न जाना॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो पंछी हौवा।
धन्य मुल्क यह देश, जहाँ के राजा कौवा॥६॥

शब्दार्थ—मराल=हंस। **गोत**=गोत्र। **बदरूपिया**=बुरे रूप वाले। **कहूँ**=कहीं। **मलखाना**=मैल की खान। **हौवा**=झूठी डराने वाली वस्तु।

भावार्थ—कौआ हंस से कहता है कि अरे हंस! तेरी क्या जाति और क्या गोत्र है अर्थात् तू बड़ी नीच जाति का है। तेरे जैसा कुरूप जीव तो हमने संसार में नहीं देखा। तू बड़ा मैला और मल का भण्डार है। तुझे कचहरियों अर्थात् राजसभाओं में जाकर बैठने की सभ्यता नहीं आती और न वेद की मर्यादा को ही जानता है। हे दूसरों को व्यर्थ ही भयभीत करने वाले पक्षियो! सुनो—वह देश धन्य है जहाँ के राजा कौए हैं। भाव यह कि जहाँ विद्वानों का आदर न हो, मूर्ख लोग विद्वानों पर शासन करते हों, उस देश का कभी कल्याण नहीं हो सकता।

हुक्का बाँधो फेंट में, नैग हि लीन्हीं हाथ।
चले राह में जात हैं, लिये तमाखू साथ॥
लिये तमाखू साथ, गैल को धंधा भूल्यौ।
गह सब चिन्ता भूलि, आगि देखत मन फूल्यौ॥

कह गिरिधर कविराय, यों यम कर आयो रुक्का।
जितै गयौ सो काल, हाथ में रहिगो हुक्का ॥७॥

शब्दार्थ—फेंट=कमर। नेग=हुक्के की नली। गैल=रास्ता। धंधा=काम। गृह=घर। यम कर=मौत का, यमराज का। रुक्का=पत्र।

भावार्थ—मनुष्य अपनी कमर से हुक्का बांधे, हाथ में नली लिये और साथ में तम्बाकू लिये चले जा रहे हैं। वे अपने हुक्के-तम्बाकू में इतने मस्त हैं कि घर का काम-धंधा भी भूल गये। घर की चिन्ता भी नहीं रही। हुक्के की आग को देखकर मन प्रसन्न हुआ फूला नहीं समा रहा है, पर ज्यों ही यमराज का निमन्त्रण-पत्र आया, त्यों ही हुक्का हाथ का हाथ में रह गया और काल उठाकर ले गया। भाव यह कि मनुष्य संसार के धंधों में फँसा रहता है और मौत का ध्यान नहीं रखता। एक दिन मृत्यु मनुष्य को सब कामों से छुड़ा कर अपने साथ ले जाती है, उसकी सब मन की कल्पनाएँ यहाँ धरी की धरी रह जाती हैं।

गिरिधर सो जो गिरिधरै, यत्न शून्य बिन खेद।
गिरि कारण सूक्ष्म स्थूल, तनु गिरिधर प्रत्येक वेद॥
गिरिधर प्रत्येक वेद, जो है नित ही प्रापत।
बिना श्रोत्र ध्वनि सुनै, वाक बिन शब्द अलापत॥
कह गिरिधर कविराय, जास में नहीं मित्र अर।
सब को आपन आप, आत्मा सों तू गिरिधर॥८॥

शब्दार्थ—गिरिधरै=पर्वत को धारण करे। यत्न=प्रयत्न, परिश्रम। शून्य=बिना। खेद=दुःख, कष्ट। गिरि=पर्वत। सूक्ष्म=छोटा। स्थूल=बड़ा। तनु=शरीर। वेद=जानता है। प्रापत=प्राप्त होता है। श्रोत्र=कान। ध्वनि=शब्द। वाक=वाणी, जीभ। अलापत=बोलता है। जास में=जिसमें। अर=अरि, शत्रु।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि जो व्यक्ति बिना ही विशेष

परिश्रम या प्रयत्न किये और विना किसी प्रकार के कष्ट के अपने शरीर-रूपी पर्वत को धारण करता है, वास्तव में वही 'गिरिधर' है। सूक्ष्म कारण शरीर ही गिरि है। इस सूक्ष्म कारण शरीर रूपी गिरि को धारण करने वाला यह स्थूल शरीर है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि यह आत्मा ही गिरिधर है। इस शरीर को धारण करने वाला आत्मा जो सदा सब के शरीरों में व्याप्त हो रहा है, वही गिरिधारी है। वह आत्मा या परमात्मा बिना कानों से शब्द सुनता है और बिना वाणी के ही शब्द बोलता है। न उसका कोई शत्रु है, न मित्र है। इस प्रकार वास्तव में सब की आत्मा ही अपने आप गिरिधर है।

कोप करै जिस शख्स पर, परमेश्वर जब आप।
लोकन साथ मिलाय पुनि, चाहै दिन अरु रात॥
चाहै दिन अरु रात, बासना उपजै खोटी।
कृपणता के लिए, बुद्धि हो जावे मोटी॥
कह गिरिधर कविराय, आपुनौ करिकै लोप।
अनातम चिन्तन करै, यहि ईश्वर को कोप॥६॥

शब्दार्थ—**कोप**=क्रोध। **शख्स**=मनुष्य। **पुनि**=फिर। **अरु**=और। **वासना**=तृष्णा। **उपजै**=उत्पन्न होती है। **खोटी**=बुरी। **कृपणता**=कंजूसी। **आपनौ**=अपना। **लोप**=नाश। **अनातम**=जो आत्मतत्त्व न हो। **चिन्तन करै**=विचार करता है।

भावार्थ—भगवान् जब किसी मनुष्य पर स्वयं क्रोध करता है, तो वह उसे संसारी मनुष्य, सगे-सम्बन्धियों, पुत्र-पौत्रों आदि में रात-दिन उलझाये रखता है। तब मनुष्य के हृदय में अनेक बुरी-बुरी वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह अत्यन्त कंजूस हो जाता है और कंजूसी के लिए उसकी बुद्धि भी मोटी हो जाती है। इस प्रकार अनात्मतत्त्व अर्थात् भौतिक शरीर और विषय-वासना का ही रात-दिन चिन्तन करता हुआ वह अपना

नाश कर लेता है। भाव यह कि मनुष्य जब संसारी माया-जाल में और विषय वासनाओं में फँस जाता है तो धीरे-धीरे उसका सर्वनाश हो जाता है।

करै कृपा जिस पुरुष पर, अतिशय करिकै राम।
ताको कोई ना फुरै, लौकिक वैदिक काम॥
लौकिक वैदिक काम, रहैं नहिं करनौ बाकी।
हर जगा, हर वख्त, ब्रह्म को होवे झाँकी॥
कह गिरिधर कविराय, अविद्या जिनकी मरै।
सर्व क्रिया के माँहि, एक खुद दर्शन करै॥१०॥

शब्दार्थ—अतिशय=बहुत अधिक। ताको=उसे। फुरै=दिखता। लौकिक=सांसारिक। बाकी=बाकी, शेष। सर्व=सब।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि भगवान् जिस व्यक्ति पर अत्यधिक कृपा करते हैं, उसे सांसारिक काम-धंधा या वैदिक यज्ञ-यागादि कोई भी कर्म नहीं दीखता या अच्छा नहीं लगता। उसके लिए कोई भी कर्म करना शेष नहीं रह जाता। उसे तो प्रतिक्षण प्रत्येक स्थान में उस परब्रह्म की झाँकी दिखाई देती रहती है। जिन ज्ञानी पुरुषों की अविद्या का नाश हो गया, वे सम्पूर्ण क्रियाओं में उस परब्रह्म का ही दर्शन करते हैं।

भाग सर्वत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सबल।
हरि हर मिल सागर मथ्यौ, हर को मिल्यौ गरल॥
हर को मिल्यौ गरल, हरि ने लक्ष्मी पाई।
षट् भग हो सम्पन्न, भाग की कही न जाई॥
कह गिरिधर कविराय, कोउ मिल खेले फाग।
कोउ हमेशा रोवैं आयो आपने भाग॥११॥

शब्दार्थ—सर्वत्र=सब स्थानों पर। पौरुष=पुरुषार्थ। सबल=

बलवान्। हरि=विष्णु। हर=शिव। सागर=समुद्र। मथौ=मथा। गरल=विष, ज़हर। फाग=होली। षट्=छः। भग=ऐश्वर्य।

भावार्थ—सभी स्थानों पर मनुष्य का भाग्य ही फल देता है, उसकी विद्या या पुरुषार्थ कुछ भी काम नहीं आती। जैसे कि भगवान् शिव और विष्णु दोनों ने मिलकर समुद्र का मंथन किया। यद्यपि परिश्रम दोनों का बराबर था फिर भी शिवजी महाराज को तो ज़हर मिला और भगवान् विष्णु को लक्ष्मी प्राप्त हो गई। वे छहों प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हो गये। बात तो यह है कि किसके भाग्य में क्या लिखा है, यह कोई नहीं बता सकता। गिरिधर कविराय कहते हैं कि कोई तो आनन्द से मिलकर होली खेलते हैं और कोई सदा रोते ही रहते हैं। बात तो यह है कि मनुष्य का अपना-अपना भाग्य है। किसी के भाग्य में सुख-ही-सुख लिखा है तो किसी के भाग्य में दुःख-ही-दुःख।

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँस करि भोग हैं, अज्ञानी भोगै रोय।
अज्ञानी भोगै रोय, पुनि पुनि मस्तक कूटै।
प्रारब्ध हो जोय, बिना भोग नहिं छूटै।
कह गिरिधर कविराय न दीरघ होत रहस्य।
जैसे-जैसे भाग पुरुष के, वे ही फलैं अवश्य॥१२॥

शब्दार्थ—अवश्यमेव=ज़रूर। भोक्तव्य है=भोगना पड़ता है। कृत=किये हुए। शुभाशुभ=भले-बुरे। जोय=जो। मस्तक=सिर। पुनि-पुनि=बार-बार। प्रारब्ध=प्रारम्भ किया हुआ कर्म या भाग्य। दीरघ=बड़ा, दीर्घ।

भावार्थ—मनुष्य को अपने शुभ और अशुभ कार्यों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। इन कर्मों के फलों को ज्ञानी पुरुष खुशी के साथ हँस कर भोग लेता है और अज्ञानी पुरुष रोकर, दुखी होकर भोगता है तथा

बार-बार दुःख के कारण अपना माथा ठोकता है। गिरिधर कविराय कहते हैं कि जो कर्म एक बार किया गया है, उसका फल भोगे बिना कभी छुटकारा नहीं हो सकता। वास्तव में यह कोई बहुत बड़े रहस्य की बात नहीं है। मनुष्य के जैसे कर्म और भाग्य होते हैं, उसे वैसा फल अवश्य मिलता है।

जैसा यह मन भूत है, और न दुतिय बताल।
छिन में चढ़ै अकास को, छिन में धसै पताल।
छिन में धसै पताल, होत छिन में कम ज्यादा।
छिन में शहर निवास करै, छिन बन का रादा।
कह गिरिधर बिन ज्ञान, चित्त थिर होत न ऐसा।
गुरू अनुग्रह बिना बोध, दृढ़ होत न जैसा ॥१३॥

शब्दार्थ—द्वितीय=दूसरा। रादा=इरादा, विचार। **अनुग्रह**=कृपा। **बोध**=ज्ञान।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि जैसा यह मनरूपी भूत है, वैसा कोई और नहीं बताया जा सकता। या वैसा और कोई वैताल (विक्रमादित्य का वश में किया हुआ भूत या गण जो आकाश-पाताल सब जगह पहुँच जाता था) नहीं है। यह मन रूपी भूत क्षण-भर में तो आकाश में चढ़ जाता है और दूसरे ही क्षण में पाताल में पहुँच जाता है। एक क्षण में कम हो जाता है तो दूसरे क्षण में अधिक। एक क्षण में शहर में रहता है तो दूसरे ही क्षण में जंगल में रहने का निश्चय कर लेता है। ज्ञान के बिना यह मन वैसे ही स्थिर नहीं होता जैसे कि गुरु की कृपा के बिना दृढ़ ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। भाव यह कि मनुष्य का मन बड़ा चंचल है। गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त ज्ञान से ही इस मन को वश में किया जा सकता है।

ताप मध्य में ताप हूँ, ना मैं ताप अताप।
जाप मध्य में जाप हूँ, ना मैं जाप अजाप।
ना मैं जाप अजाप, आप को आप प्रकाशक।
सूक्ष्म स्थूल प्रपंच सर्व को इक रस भासक।
कह गिरिधर कविराय पाप में पाप अपाप।
जा में जिय अरात अष्ट ज्वर जो हैं ताप ॥१४॥

शब्दार्थ—**ताप**=तप। **जाप**=जप। **प्रपंच**=संसार। **इकरस**=एक समान। **भासक**=प्रकाशित करने वाला। **अपाप**=पाप रहित। **ज्वर**=बुखार। **अरात**=अटका हुआ, स्थिर।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि यह आत्मा तप के मध्य में तप है, न तप है और अतप ही है। जप के मध्य में जप भी यही है, साथ ही जप और अजप दोनों से परे है। यह जो स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्मांड रूपी प्रपंच है, इसमें वह ब्रह्म या आत्मतत्व सर्वत्र एक समान जगमगा रहा है। वह आत्मा पापी में पापस्वरूप होते हुए भी पापरहित है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार, ईर्ष्या द्वेष इन आठ ज्वरों में यह जीव फँसा रहता है। वास्तव में यही आत्मा के लिए सब से बड़े पाप हैं।

करुणा हो श्रीराम की, औ' गुरु को परताप।
पुनः पुरुषार्थ आपनौ, कटै अविद्या पाप।
कटै अविद्या पाप, जुड़े जो यह संयोग।
देह इन्द्रिय मन प्राण, माँहिं कोउ रहे न रोग।
कह गिरिधर कविराय, छुटै जब जन्म अरु मरना।
कृत-कृत्य भयो पुमान, बहुरि कछु रहै न करना ॥१५॥

शब्दार्थ—**परताप**=प्रताप। **पुनः**=फिर। **पुरुषार्थ**=उद्योग। **अविद्या**=अज्ञान। **अरु**=और। **कृतकृत्य**=सफल, जिसने अपने

सब काम कर लिये हों देह=शरीर।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि सर्वप्रथम तो भगवान् की कृपा हो, फिर गुरुदेव का प्रताप भी हमारे लिए सहायक हो, साथ-ही-साथ कुछ पुरुषार्थ भी किया जाय, तो निश्चित रूप से अविद्या के सब पाप मिट जाते हैं। यदि संयोग हो जाय अर्थात् परमात्मा की कृपा, गुरु का अनुग्रह एवं पुरुषार्थ का संयोग हो जाय तो शरीर, मन और इन्द्रियों में कोई रोग या विकार नहीं रह सकता। जन्म और मरण के बन्धन छूट जाते हैं। यह पुरुष, यह आत्मा कृतकृत्य अर्थात् सफल हो जाता है और इसे कुछ भी करना-धरना शेष नहीं रह जाता।

भाव यह है कि मनुष्य इस अवस्था में जीवन्मुक्त हो जाता है।

चयनिका

विक्रम

राधापति हिय मैं धरौं, राधापति मुख वैन।
राधापति नैनन लहौं, राधापति सुख दैन ॥१॥

शब्दार्थ—राधापति=श्रीकृष्ण। हिय=हृदय। बैन=वचन। लहौं=प्राप्त करूँ। सुखदैन=सुख देने वाला।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि राधापति श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण करता हूँ, मुख से उन्हीं का नाम लेता हूँ और परमसुख देने वाले श्रीकृष्ण के ही अपने नेत्रों से ही दर्शन करता हूँ।

मनमोहन मन में बसौ, हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैनन्नि बसौ, मुरलीधर मुख माहिं ॥२॥

शब्दार्थ—बसौ=निवास करें। हृषीकेस=इन्द्रियों के ईश या स्वामी अर्थात् श्रीकृष्ण। कमलनैन=कमल के समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि मन को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण मेरे मन में निवास करें। और हृषीक अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण मेरे हृदय में निवास करें। कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले श्रीकृष्ण मेरे मुख में बसे रहें अर्थात् सदा मैं उनका नाम लेता रहूँ।

बृन्दाबन राजैं दुवौ, साजैं सुख के साज।
महरानी राधा उतै, महाराज ब्रजराज ॥३॥

शब्दार्थ—राजैं=शोभित होते हैं। दुवौ=दोनों। उतै=उधर।

भावार्थ—बृन्दावन में सब प्रकार के सुख के साज सजाये हुए राधा और कृष्ण दोनों अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। इधर तो भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं तो उधर महारानी राधिका जी शोभा दे रही हैं।

विहरत वृन्दा-बिपिन मैं, गोपिन सँग गोपाल।
बिक्रम हृदै सदा बसौ, इहि छबि सौं नँदलाल ॥४॥

शब्दार्थ—बिहरत=विहार कर रहे हैं। विपिन=जंगल। है=
य में।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि वृन्दावन में गोपियों के साथ
कृष्ण विहार कर रहे हैं। इस अनुपम शोभा और छवि के साथ
कृष्ण मेरे हृदय में सदा निवास करें।

मन बच कर्म सुभाय जर, रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सियराम हैं, धन्य भरथ कौ भाग ॥५॥

शब्दार्थ—रघुपति=रामचन्द्र। पद=चरण। अनुराग=प्रेम।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि मन, वचन, कर्म और स्वभाव
जिनका श्रीराम के चरणों में प्रेम है, जिनके इस वास्तविक प्रेम को
राम स्वयं जानते हैं, ऐसे भरत के भाग्य धन्य हैं।

फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि, फिरि फिरि ध्यान लगाइ।
फिरिहौं कुंजन बे-फिकिर, कब वृन्दाबन जाइ ॥६॥

शब्दार्थ—फिरिहौं=फिरूँगा। कुंजन=झाड़ियों में।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि बार-बार राधा-कृष्ण राधा-कृष्ण
ा हुआ और उन्हीं का ध्यान करता हुआ मैं वृन्दावन के कुंजों में
चन्त होकर कब घूमा करूँगा!

नदी नीर तीछन वहै, मेघ-वृष्टि अति घोर।
हरि बिनु को पारहि करै, लै नैया बरजोर ॥७॥

शब्दार्थ—नीर=जल। तीछन=तीक्ष्ण, तेज़। मेघ=बादल।
=वर्षा। अति घोर=बहुत भयंकर। पारहि करै=पार करें।
ोर=दृढ़।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि नीचे तो बड़ी भयंकर नदी का जल बह रहा है और ऊपर से भी भयंकर वर्षा हो रही है; ऐसे संकट के समय में भगवान् के सिवा दूसरा कौन है जो मज़बूत नाव लेकर पार कर दे अर्थात् भगवान् ही विपत्ति से पार करने वाले हैं।

मेरी दीरघ दीनता, दयासिंधु दिल देव।
प्रभु गुन-आला जानिकै, बालापन तैं सेव ॥८॥

शब्दार्थ—**दीरघ**=बड़ी। **दयासिंधु**=दया के समुद्र। **दीनता**=गरीबी। **गुन-आला**=गुणों का आलय—घर, भण्डार।

भावार्थ—हे दया के समुद्र भगवन्! मेरी बड़ी भारी दीनता को देख कर आप मेरी ओर अवश्य ध्यान दीजिए; क्योंकि मैं आपको गुणों का भण्डार जानकर बचपन से ही आपकी सेवा कर रहा हूँ।

प्रनत-पाल-बिरदावली, राखी आनि जहान।
अब मम बार अबार कत, कीजत कृपानिधान ॥९॥

शब्दार्थ—**प्रनतपाल**=प्रणत—नम्र भक्तों की पालना करने वाले। **बिरदावली**=यश का समूह। **जहान**=संसार। **मम**=मेरी। **अबार**=देर। **कत**=क्यों।

भावार्थ—हे भगवन्! सारा संसार आपको प्रणतपाल अर्थात् भक्तों का रक्षक कहकर आपका यश गा रहा है। फिर अब मेरी बार न जाने आपने क्यों इतनी देर लगा दी है। आप मेरा भी तत्काल उद्धार क्यों नहीं कर देते!

कै तुव कान परी नहीं, दीनबन्धु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज, लगी न एती देर ॥१०॥

शब्दार्थ—**कै**=अथवा। **तुव**=तुम्हारे। **टेर**=पुकार। **चारिभुज**=चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु। **चारजुगन**=सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, ये चार युग। **एति**=इतनी।

भावार्थ—हे दीनबन्धो ! मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि अभी तक मेरी पुकार आपके कानों तक पहुँची ही नहीं है; क्योंकि हे चतुर्भुजधारी भगवन् ! आपने पहले चारों युगों में कभी किसी पापी का उद्धार करने में देर नहीं लगाई। फिर यह कैसे हो सकता था कि मेरी पुकार तो आप सुन लेते और मेरा तत्काल उद्धार न कर देते।

दीनबन्धु ह्वै दीन की, जो तुम नहिं सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि, दीनबन्धु केहि हेत ॥११॥

शब्दार्थ—ह्वै=होकर। सुध=खबर। इमि=इस प्रकार। किमि=कैसे।

भावार्थ—हे भगवन् ! यदि आप दीनबन्धु होकर भी मुझ दीन की सुधि नहीं लेते तो आपने अपना नाम दीनबन्धु क्यों प्रसिद्ध करा रखा है ? भाव यह कि या तो आप अपने को दीनबन्धु कहलाना छोड़ दीजिए या मेरा उद्धार कर दीजिए।

निज सुभाय छोड़त नहीं, कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव, हौं अधमन-सिरमौर ॥१२॥

शब्दार्थ—निज=अपना। सुभाय=स्वभाव। हिय=हृदय। गौर=ध्यान। अधम उधारन=पापियों का उद्धार करने वाले। हौं=मैं। सिरमौर=शिरोमणि।

भावार्थ—कोई भी व्यक्ति अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। हे भगवन् ! आप इस बात को अपने हृदय में विचार कर देख लीजिए। यदि आपका नाम अधमों अर्थात् पापियों का उद्धार करने वाला है तो मैं पापियों का शिरोमणि हूँ। इसलिए आप मुझ पापी का अवश्य उद्धार कर दीजिए।

तेरौ तेरौ हौं कहत, दूजो नहीं सहाइ।
कहिबी बिरद सम्हार अब, बिक्रम मेरो आहि ॥१३॥

शब्दार्थ—बिरद=यश या उपाधि। सम्हार=सँभालो। आहि=है।

भावार्थ—हे भगवन्! मैं अपने आपको सदा तुम्हारा (सेवक) कहता हूँ! इसलिए अब आप मुझे 'अपना है' ऐसा कहकर अर्थात् अपना कर अपने यश या उपाधि की लाज रख लीजिए।

हौं चेरौ ब्रजराज कौ, जानत सकल जहान।
मेरौं कहत न चूकवी, अधम-उधारन-बान ॥१४॥

शब्दार्थ—चेरौ=दास। सकल=सारा। जहान=संसार। बान=स्वभाव, आदत।

भावार्थ—सारा संसार यह जानता है कि मैं ब्रजराज श्रीकृष्ण का सेवक हूँ। इसलिए हे भगवन्! आप 'मेरा' कहते हुए अपने अधम--पापियों के उद्धार करने के स्वभाव को मत भूल जाइए। भाव यह कि जिसे आपने अपना कह दिया है चाहे वह अधम भी है उसका उद्धार आप अवश्य करें।

दीनबंधु तुम दीन हौं, यह नातो उर लेख।
ह्वै कृपालु सुन कीजिए, बिक्रम बिनय बिशेष ॥१५॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। नातो=सम्बन्ध। उर=हृदय। लेख=समझ लो। ह्वै=होकर।

भावार्थ—हे भगवन्! आप दीनबन्धु हैं, तो मैं दीन हूँ। आपके और मेरे इस विशेष सम्बन्ध को आप हृदय में सोच लीजिए और कृपा करके मेरी इस विशेष विनय को सुन लीजिए।

मोर मुकुट कटि पीत पट, उर बनमाल रसाल।
आवत-गावत सखिन मग, लखे आज नँदलाल ॥१६॥

शब्दार्थ—कटि=कमर। पीतपट=पीला वस्त्र। उर=हृदय। रसाल=सुन्दर। मग=मार्ग। लखे=देखे।

भावार्थ—मस्तक पर मोर मुकुट, कमर में पीताम्बर और हृदय पर सुन्दर बनमाला धारण किये हुए, गाते हुए श्रीकृष्ण को आज गोपियों ने मार्ग में आते हुए देखा।

जो कबिता मैं आदरत, साहित रीति बिचार।
सो निहार लघु करि कह्यौ, निज मति के अनुसार ॥१७॥

शब्दार्थ—आदरत=आदर करता हूँ। साहित=साहित्य, शास्त्र। रीति=रीति ग्रन्थ। निहार=देखकर। लघु=छोटा। मति=बुद्धि।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि साहित्य-शास्त्र और रीतिग्रन्थों के आधार पर मैं जिस कविता का आदर करता हूँ, उसी को मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इस छोटे-से दोहे छंद में कहा है।

मनभावन आवन भवन, सुख सरसावन काज।
सावन बरसावन सुखनि, समय सुहावन आज ॥१८॥

शब्दार्थ—मनभावन=मन को भाने वाला, प्रियतम। बरसावन=बरसाने वाला। सुहावन=सुन्दर। भवन=घर।

भावार्थ—विक्रम कवि सावन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुखों की वर्षा करने वाला सावन का सुन्दर समय आज आ पहुँचा है और इसी समय सुख को सरसाने के लिए मनमोहन प्रियतम का भी घर पर आगमन हो गया है।

कुंभकरन कौ देखि कपि, नासा-करन-बिहीन।
अट्टहास करि भू झुके, मन भौ मोद अधीन ॥१९॥

शब्दार्थ—कपि=बन्दर। नासा=नासिका, नाक। करन=कर्ण, कान। विहीन=रहित अट्टहास=ज़ोर से खिलखिला कर हँसना। भू=पृथ्वी। मोद=आनन्द, खुशी। भौ=हो गया।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि कुम्भकर्ण के नाक और कान

कटे देखकर युद्ध में बन्दर ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़े और उनका मन आनन्दविभोर हो उठा।

हनूमान बहु गिरि लिए, गरजत प्रभु कौं घेर।
लगी द्दगन मैं टकटकी, रहे रिच्छ कपि हेर ॥२०॥

शब्दार्थ—**बहु**=बहुत से। **गिरि**=पर्वत। **गर्जत**=गर्ज रहे हैं। **दृग**=नेत्र, आँखें। **रिच्छ**=रीछ। **हेर**=देखना।

भावार्थ—हनुमान् जी संजीवनी बूटी से युक्त द्रोणाचल पर्वत को हाथ पर उठाये हुए भगवान् राम की जय-जयकार करते हुए ज़ोर-ज़ोर से गर्ज रहे हैं। राम की सेना के रीछ और बन्दर आदि उन्हें बड़े प्रेम से एकटक निहार रहे हैं।

रघुनंदन दसकंध के, काटे मुंड कराल।
छलक्यौ छतज कबंध तैं, कर्‌यौ भूमि नभ लाल ॥

शब्दार्थ—**रघुनंदन**=श्रीरामचन्द्र। **दसकंध**=दस कंधों या सिरों वाला रावण। **मुंड**=सिर। **कराल**=भयंकर। **छलक्यौ**=बहा। **छतज**=क्षतज, खून। **कबन्ध**=धड़। **भूमि**=पृथ्वी। **नभ**=आकाश।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी ने रावण के दसों भयंकर सिरों को काट डाला। उन धड़ों से बहे हुए खून से पृथ्वी और आकाश लाल हो गये।

रोदन करत सुलोचना, पिय कौ मरन सुनाय।
रघुनंदन के द्दग कमल, रहे आँसु उतराय ॥२२॥

शब्दार्थ—**रोदन**=रोना। **सुलोचना**=मेघनाद की स्त्री। **दृगकमल**=नेत्ररूपी कमल। **उतराय**=उतरे।

भावार्थ—मेघनाद के मर जाने पर उसकी स्त्री सुलोचना फूट-फूट कर रो रही है। उसे रोते देखकर दया के कारण भगवान् राम की भी आँखों में आँसू भर आये।

नहिं जानत गुन जासु कौ, सो तिहि निंदत जाइ।
गजमुक्ता तजिकै अधम, गुंजा लेत उठाइ ।।२३।।

शब्दार्थ—जासु कौ=जिसका। तिहि=उसका। निंदत=निन्दा करता है। गज-मुक्ता=एक विशेष मूल्यवान् मोती, कहते हैं कि यह हाथी के सिर से उत्पन्न होता है। तजिकै=छोड़कर। अधम=नीच।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि जो जिसके गुणों को नहीं जानता, वह उसको निन्दा किया ही करता है। जैसे कि नीच जाति की भीलनी बहुमूल्य गजमोतियों को छोड़कर रत्तियों को उठा लेती है।

विटप तिहारे पुहुप हम, सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढ़त, पै रावरे कहाइ ।।२४।।

शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। तिहारे=तुम्हारे। पुहुप=पुष्प। रावरे=आपके।

भावार्थ—पुष्प वृक्ष से कहते हैं कि हे वृक्ष! हम तुम्हारे पुष्प तुम्हारी शोभा बढ़ा देते हैं। चाहे हम दूसरे स्थानों पर लोगों के सिरों पर चढ़ते हैं पर कहलाते तो तुम्हारे ही हैं।

सुचि सुगंध सोभा सरस, राजत अमल अमंद।
सखि गुलाब के फूल तैं, झरत मधुर मकरंद ।।२५।।

शब्दार्थ—सुचि=शुचि, पवित्र। अमल=निर्मल। अमन्द=तेज़। मधुर=मीठा। मकरंद=पुष्प रस।

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से गुलाब की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहती है कि हे सखी! इस गुलाब के पुष्प की अत्यन्त पवित्र सुगन्धि और शोभा है। यह अपनी बड़ी निर्मल कांति से सुशोभित हो रहा है। इससे मधुर मकरन्द (पुष्प-रस) झर रहा है।

चंद बरदाई

सरस काव्य रचना रचौं, खलजन सुनिन हसन्त।
जैसें सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त ॥१॥

शब्दार्थ—रचौं=बनाता हूँ। खलजन=दुष्ट मनुष्य। सुनिन=सुनकर। हसन्त=हँसते हैं। सिंधुर=हाथी। मग=मार्ग। स्वान=कुत्ता। सुभाव=स्वभाव। भुसन्त=भौंकते हैं।

भावार्थ—महाकवि चंदबरदाई कहते हैं कि मैं महाकाव्य की रचना कर रहा हूँ। इस रचना को सुनकर दुष्ट लोग तो वैसे ही हँसेंगे जैसे हाथी को देखकर कुत्ते (मार्ग में) स्वभाव से ही भौंकने लगते हैं।

तौ पुनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल।
जूका भय जिय जानिकै, क्यों डारिये दुकूल ॥२॥

शब्दार्थ—तौ—तो भी। पुनि—फिर। रचिये—बनाता है। फूल—प्रसन्नता। जूका—जूँ। जानिकै—जानकर। डारिये—डालें, फेंकें। दुकूल—दुपट्टा।

भावार्थ—फिर भी सज्जन पुरुष तो इसके गुणों के कारण इस रचना से प्रसन्न ही होंगे जैसे कोई इस भय से कि इसमें जूँएँ न पड़ जायें, दुपट्टे को फेंक थोड़े ही देता है। जैसे जूँओं के भय से कोई दुपट्टा नहीं फेंक देता वैसे ही दुष्ट लोगों के परिहास के भय से कवि काव्य-रचना से विमुख नहीं हो सकता।

समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर।
विषम दरस वा नरन तें, सदा सरबदा दूर ॥३॥

भावार्थ—समदरसी—सबको समान भाव से देखने वाला। निकट—पास में। भुगति—भोग। मुगति—मुक्ति, मोक्ष। विषम दरस—भेद-भावना वाला।

भावार्थ—महाकवि चन्दवरदाई कहते हैं कि जो लोग समदर्शी हैं, प्राणीमात्र के लिए समान भाव रखते हैं, उनको भोग और मोक्ष दोनों अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत जो विषमदर्शी हैं, जो भेद-भावना से काम लेते हैं, उन्हें वह मुक्ति कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। ऐसे लोगों से भोग और मोक्ष दोनों दूर भागते हैं।

सूरदास

सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवति पारि।
घन आशा सब दुख सहै, अंत न याँचै वारि ॥१॥

शब्दार्थ—**परमित**—परिणाम। **चातक**—पपीहा। **चितवति**—देखता है। **घन**—बादल। **याँचै**—माँगे। **बारि**—जल।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि प्रिय के प्रेम के या परिणाम की महत्ता को जानकर या सुनकर पपीहा बादल की ओर निरन्तर देखता रहता है। उसी मेघ की आशा से सब दुःख सहता है पर मरते दम तक भी पानी के लिए प्रार्थना नहीं करता। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमी से कभी कुछ नहीं माँगता या चाहता।

देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिं समेत ॥१॥

शब्दार्थ—**करनी**=कार्य। **कीनो**=किया। **हेत**=प्रेम। **तज्यो**=छोड़ दिया। **समेत**=साथ। **सर**=तालाब।

भावार्थ—महाकवि सूरदास कहते हैं कि कमल के इस महान् कार्य को देखो कि उसने जल से प्रेम किया था तो प्राण दे दिये पर प्रेम को नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि पानी के साथ कमल भी सूख गया।

दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो, चित न भयो रस भंग ॥३॥

शब्दार्थ—**दीपक**=दीया। **पीर**=पीड़ा। **जानई**=जानता है।

पावक=अग्नि। **पतंग**=परवाना। **तनु**=शरीर। **ज्वाला**=लौ। **भंग**=नाश, टूटना।

भावार्थ—पतंगा दिये की लौ पर जलकर भस्म हो जाता है पर दीपक इसकी पीड़ा को नहीं जानता। पतंग का शरीर तो दीपक की ज्वाला में जलकर भस्म हो जाता है पर इसका प्रेम नष्ट नहीं होता।

मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥४॥

शब्दार्थ—मीन=मछली। **नीर**=पानी। **तन**=शरीर। **घटै**=कम होता है।

भावार्थ—चाहे पानी मछली की बात भी नहीं पूछता फिर भी मछली तो पानी का वियोग नहीं सह सकती। तुम मछली के प्रेम की निराली गति को देखो कि इसका निराला शरीर चला जाता है तो भी उसका पानी के प्रति प्रेम रत्ती-भर भी कम नहीं होता।

सदा सँघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान।
सो तू बिसर्‍यो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान् ॥५॥

शब्दार्थ—सँघाती=साथ रहने वाला। **बिसर्‍यो**=भूल गया। **सहज**=सरलता।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि जो ईश्वर सदा अपने साथ रहने वाला है, प्राणों का भी प्राण है, उस प्रभु को तूने अनायास ही बातों-ही बातों में भुला दिया है।

प्रभु पूरन पावन सखा, प्राणनहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ ॥६॥

शब्दार्थ— **पावन**=पवित्र। **सखा**=मित्र। **प्राणनहू**=प्राणों का भी। **नाथ**=स्वामी।

भावार्थ—वह प्रभु परिपूर्ण है, पवित्र मित्र है, प्राणों का स्वामी है। अत्यन्त दयालु है और सभी प्राणियों का जीवन उसी के हाथ में है।

जिन जड़ ते चेतन कियो, रचि गुण तत्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान ॥७॥

शब्दार्थ—**रचि**=बनाकर। **गुण**=सत्व, रज, तम, ये तीनों गुण। **तत्व**=पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व। **चरन**=पाँव। **चिकुर**=बाल। **कर**=साथ। **नासिका**=नाक।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि जिस ईश्वर ने सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणों तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच तत्त्वों के द्वारा जड़ से चेतन बना दिया और हाथ, पाँव, आँख, नाक, बाल और नाखून दिये (बड़े दुःख की बात है कि मनुष्य उसके गुणों का स्मरण नहीं करता)।

असन बसन बहु बिधि दये, औसर औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचहि पहिचानि ॥८॥

शब्दार्थ—**असन**=भोजन। **बसन**=वस्त्र। **बहुबिधि**=नाना प्रकार के। **औसर**=समय-समय पर। **आनि**=लाकर। **रुचहि**=चाह या इच्छा वाले।

भावार्थ—उसी ईश्वर ने अनेक प्रकार के भोजन वस्त्रादि समय-समय पर लाकर दिये। और साथ ही नई-नई पहचान वाले माता, पिता, भाई आदि प्रियजन भी लाकर मिलाये।

कह जानो कहँवा मुवो, ऐसे कुमति कुमीच।
हरि सों हेत बिसारिके, सुख चाहत है नीच ॥९॥

शब्दार्थ—**मुवो**=मरा (एक गाली)। **कुमति**=बुरी बुद्धि वाला। **कुमीच**=बुरी मौत। **हेत**=प्रेम। **बिसारिके**=छोड़कर।

भावार्थ—यह मनुष्य जाने कैसा दुष्ट बुरी बुद्धि वाला है। और न जाने कहाँ कैसी बुरी मौत मरेगा जो यह भगवान् से प्रेम या भक्ति को छोड़कर भी सुख चाहता है।

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार ॥१०॥

शब्दार्थ—अंक=अक्षर। सठ=शठ, दुष्ट।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि हे गँवार दुष्ट, अगर तुझे अपने दिल में शर्म नहीं है, तो मैं तुझे सौ बार क्या कहूँ क्योंकि तूने तो एक बार भी भगवान् का भजन नहीं किया।

दादूदयाल

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥१॥

शब्दार्थ—घीव=घी। रमि रह्या=व्याप्त हो रहा। बकता=बक्ता, कहने वाला।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जैसे दूध में घी सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, वैसे ही वह परब्रह्म परमात्मा सभी स्थानों में व्याप्त हो रहा है। इसका वर्णन करने वाले तो बहुत हैं पर संसार रूपी दूध को मथ कर उसमें से प्रभुरूपी मक्खन को प्राप्त कर लेने वाला कोई विरला ही है। वे और ही होते हैं जो भगवान् का दर्शन कर लेते हैं।

दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥२॥

शब्दार्थ—धरा=रखा हुआ। कर=हाथ।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि 'दीया' अर्थात् दान देना बड़ा अच्छा है, इसलिए सब कोई दान दिया करो। यदि हाथ में दीया न हो

तो अन्धेरे घर में रखी हुई चीज़ भी नहीं मिल सकती।

कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु वपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजान ॥३॥

शब्दार्थ—वपुरा=बेचारा। मूढ़=मूर्ख।

भावार्थ—गुरुदेव कहते हैं कि हे मूर्ख शिष्य! मेरी जीभ कहते-कहते थक गई और तेरे कान सुनते-सुनते थक गये (पर तूने उस उपदेश पर कभी आचरण नहीं किया)। बेचारा सद्गुरु क्या करे, यदि चेला ही मूर्ख और अनजान हो।

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी साइयाँ, दादू सतगुरु होइ ॥४॥

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि सारा संसार सुख का साथी है, पर दुःख का साथी कोई नहीं है। दुःख के साथी तो केवल सद्गुरुदेव या भगवान् ही हैं।

दादू देख दयाल को, सकल रहा भरपूर।
रोम रोम में रमि रह्यो, तू जिनि जानौ दूर ॥५॥

शब्दार्थ—दयाल=दयालु ईश्वर। सकल=सब। जिनि=मत।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि वह प्रभु तो सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है और रोम-रोम में समाया हुआ है। तू उसे अपने से दूर मत समझ।

मिसरी माँहैं मेल करि, मोल बिकाना वंस।
यों दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥६॥

शब्दार्थ—माँहें=में। बिकाना=बिक गया। हंस=आत्मा।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि मिश्री में मिलकर बाँस भी मिश्री के मूल्य में बिक जाता है। इसी प्रकार यह आत्मा भी परमात्मा में मिल

कर उसी का रूप बन जाता है। भाव यह है कि कूजे की मिश्री में जो बाँस की फाँस लगी रहती है वह भी उस मिश्री के साथ ही बिकती है। इसी प्रकार जीव भी ब्रह्म में मिलकर उसी का रूप हो जाता है।

केते पारखि पचि मुये, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूँगे का गुड़ खाइ ॥७॥

शब्दार्थ—केते=कई। पारखि=परीक्षक। कीमति=कीमत, मूल्य।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि कितने ही परीक्षक पच-पच कर मर गये पर उस प्रभु रूपी हीरे का मूल्य कोई न बता सका। दादूदयाल जी कहते हैं कि सब लोग, जिनको उस ईश्वर का ज्ञान हो भी गया, वे भी उसका वर्णन करने में वैसे ही असमर्थ हैं जैसे कि गूँगा गुड़ खाकर भी उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता।

जब मन लागै राम सों, तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों, ऐसै रहै समाइ ॥८॥

शब्दार्थ—अनत=अन्यत्र, दूसरे स्थान पर। लूण=नमक।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जब भक्त का मन भगवान् में लग जाता है तो उसका मन भगवान् को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता, जैसे कि नमक पानी में समा जाता है, फिर उससे अलग नहीं होता, वैसे ही जीव ब्रह्म से मिलकर उसके साथ एकाकार हो जाता है।

काया कठिन कमान है, खींचै बिरला कोइ।
मारै पाँचौ मिरगलौ, दादू सूरा सोइ ॥९॥

शब्दार्थ—कमान=धनुष। बिरला=कोई-कोई। मिरगलौ=मृग, हरिण (पाँचों इन्द्रियाँ रूपी हरिण) सूरा=शूरवीर।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि शरीर रूपी धनुष बड़ा

कठिन है। इसको खींचकर अपने वश में करने वाला कोई विरला है। वास्तव में पाँचों इन्द्रियों रूपी मृगों का मारकर उनको अपने वश में कर लेने वाला ही सच्चा शूरवीर है।

जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गयो समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥१०॥

शब्दार्थ—समूल = जड़ से।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जिस घर में सज्जनों की निन्दा होती है, उस घर का नाश हो जाता है। उस घर की नींव, नाम-निशान और धूल का भी पता नहीं लगता।

मलूकदास

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहैं मलूक जहँ संतजन, तहाँ रमैया जाय ॥१॥

शब्दार्थ—बच्छा = बछड़ा। रमैया = राम, ईश्वर।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार बछड़ा जहाँ जहाँ जाता है गाय भी उसके पीछे पीछे वहीं जाती है, वैसे ही जहाँ-जहाँ श्रेष्ठ पुरुष जाते हैं वहीं वहीं भगवान् भी जाते हैं।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम ॥२॥

शब्दार्थ—पंछी = पक्षी। दाता = देने वाला। चाकरी = सेवा।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि अजगर कभी किसी की सेवा नहीं करता, पक्षी कभी किसी का कोई काम नहीं करते तो भी उन्हें चारा-चुग्गा मिलता ही रहता है। बात यह है कि भगवान् ही सबको देने वाले और पालन-पोषण करने वाले हैं।

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर ॥३॥

शब्दार्थ—पीर=गुरु। पर=दूसरे की। पीर=पीड़ा। काफिर= अधर्मी या विधर्मी।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि सच्चा गुरु वही है जो दूसरे के दुःख और पीड़ा को पहचाने। जो दूसरे की पीड़ा को नहीं पहचानता वह तो पीर या गुरु नहीं प्रत्युत बे-पीर अर्थात् निगुरा और काफिर या अधर्मी ही है।

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पायौ बिसराम ॥४॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। जिभ्या=जीभ। बिसराम=विश्राम।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि न तो मैं माला लेकर भगवान् का नाम ही लेता हूँ और न हाथों की उंगलियों पर गिनकर कभी जप करता हूँ। यहाँ तक कि कभी जीभ से भी राम का नाम नहीं लेता। बात तो यह है कि मेरा भगवान् स्वयं स्मरण करता है। इसलिए मैंने तो विश्राम प्राप्त कर लिया है।

दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥५॥

शब्दार्थ—हिरदै=हृदय में। बसै=रहता है। बैन=वचन, शब्द।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि जिनके हृदय में दया धर्म है, जो अमृत के समान मधुर वचन बोलते हैं, विनय और लज्जा के कारण जिनकी आँखें सदा नीचे झुकी रहती हैं, वास्तव में वे ही ऊँचे मनुष्य या महापुरुष हैं।

आदर मान महत्व सत, वालापन को नेह।
ये चारों तबही गये, जवहि कहा कछु देह ॥६॥

शब्दार्थ—महत्व=बड़ाई। सत=सत्ता, हैसियत।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि आदर, मान, बड़ाई, सत्ता और बचपन का प्रेम, ये चारों उसी समय नष्ट हो जाते हैं, जबकि कोई मनुष्य किसी से कुछ माँगता है।

प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, प्रभुता दासी होय ॥७॥

शब्दार्थ—प्रभुता=बड़प्पन।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि बड़प्पन को तो सब कोई चाहते हैं पर उस बड़े प्रभु को प्राप्त करने का कोई कुछ प्रयत्न नहीं करता। यदि कोई उस प्रभु को प्राप्त कर ले तो प्रभुता उसकी दासी हो जाय।

सुन्दरदास

वैद्य हमारे राम जी, औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब, सुमिरण आठो जाम ॥१॥

शब्दार्थ—औषधि=दवाई। हू=भी। जाम=पहर (तीन घंटे का एक पहर)।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि भगवान् ही हमारे वैद्य हैं और वे ही हमारी औषधि हैं। हमारे लिए तो यही उपाय है कि हम आठों पहर अर्थात् दिन-रात भगवान् का स्मरण करते रहें।

सुन्दर संसय को नहीं, बड़ो महुच्छुव एह।
आतम परमातम मिलो, रहो कि बिनसो देह ॥२॥

शब्दार्थ—संसय=सन्देह। महुच्छव=महोत्सव, बड़ा भारी उत्सव। बिनसो=नष्ट हो जाय। देह=शरीर।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि शरीर चाहे रहे या चला जाय, मुझे कुछ संशय या दुःख नहीं है। मेरे लिए तो यह बड़े भारी उत्सव की बात है; क्योंकि शरीर छूटने पर तो आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तौ वह साईं दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ, तौ हाजराँ हजूर ॥३॥

शब्दार्थ—गाफिल=असावधान। बन्दा=सेवक। हजूर=स्वामी।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि यदि भक्त असावधान हुआ तो भगवान् उससे दूर भाग जायेंगे और यदि भक्त सावधान होकर सदा प्रभु की सेवा में उपस्थित रहा तो प्रभु उसके पास ही में प्रकट हो जायेंगे।

सुन्दर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥४॥

शब्दार्थ—पंछी=पक्षी। बिरछ=वृक्ष। बसेरा=निवास। आनि=आकर। राति=रात। कुटुम्ब=परिवार।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर आकर रात भर बसेरा लेता है, सारी रात वहीं काटकर प्रातःकाल होते ही वहाँ से उठ जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी इस संसार रूपी कुटुम्ब में आकर कुछ दिन रहकर फिर चला जाता है।

लौन पूतरी उदधि मैं, थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ ॥५॥

शब्दार्थ—लौन=नमक। पूतरी=पुतली, डली। उदधि=समुद्र। बिलाइ=लुप्त हो गई, नष्ट हो गई।

भावार्थ—सुन्दरदास जी जीव और ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार नमक की डली समुद्र की थाह लेने के लिए जाये तो वह समुद्र ही में समा जाती है, उसी का रूप बन जाती

है वैसे ही आत्मा भी परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर उसी का स्वरूप बन जाती है।

ललितकिशोरी

कदम-कुंज ह्वैहौं कबै, श्रीवृन्दाबन माहिं।
ललितकिशोरी, लाड़िले, बिहरैंगे तिहिं छाहिं ॥१॥

शब्दार्थ—कदम्ब=कदम्ब वृक्ष। ह्वैहौं=होऊँगा, बनूँगा। बिहरैंगे=विहार करेंगे। तिहि=उसकी। छाँहि=छाया में।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि कब मैं श्री वृन्दावन के कदम्ब कुंज में जाऊँगा जिनकी छाया में लाड़ले लाल श्रीकृष्ण विहार किया करते हैं।

कब हौं सेवा- कुंज में, ह्वैहौं स्याम तमाल।
लतिका कर गहि बिरमिहैं, ललित लड़ैतीलाल ॥२॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। सेवाकुंज=वृन्दावन में एक स्थान का नाम। स्याम=काला। तमाल=एक वृक्ष का नाम। लतिका=बेल। कर=हाथ। गहि=पकड़ कर। बिरमिहैं=विश्राम करेंगे या सहारा लेंगे। ललित=सुन्दर। लड़ैतीलाल=लाड़लेलाल श्रीकृष्ण।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि मैं वृन्दावन के सेवा-कुंज में कब ऐसा श्याम तमाल वृक्ष बन जाऊँगा जिसकी लताओं या शाखाओं को पकड़ कर प्रियतम श्रीकृष्ण विश्राम किया करेंगे। भाव यह कि ललित-किशोरी जी सेवा-कुंज का तमाल वृक्ष ही बन जाना चाहते हैं ताकि उस रूप में उन्हें भगवान् के अंगों का स्पर्श तो प्राप्त होता रहेगा।

सुमन-बाटिका-बिपिन में, ह्वैहौं कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते, धरिहैं बीनि दुकूल ॥३॥

शब्दार्थ—सुमन=फूल। वाटिका=बगीची। बिपिन=जंगल या

बाग। **दोऊ**=दोनों (राधा और कृष्ण)। **भावते**=प्रिय। **धरिहैं**=रखेंगे। **दुकूल**=दुपट्टा।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि वह दिन कब आयेगा जब मैं पुष्पवाटिकाओं अर्थात् फूलों की बगीची या बागों में ऐसा फूल बन जाऊँगा जिसे चुन-चुनकर प्रियतम श्रीकृष्ण और राधिका अपने दुपट्टे में धर लिया करेगी। भाव यह कि इस मनुष्य बनने से तो पुष्प बन जाना ही अच्छा है जिसे श्रीराधा-कृष्ण सदा अपने आँचल में लिये रहते हैं। और इस प्रकार वह सदा उनके अंगों के साथ लगा रहता है।

कब कालीदह-कूल की, ह्वै हौं त्रिविधि समीर।
जुगुल-अंग-अँग लागिहौं, उड़िहै नूतन चीर ॥४॥

शब्दार्थ—**कालीदह**=वृन्दावन में यमुना का एक घाट जहाँ 'काली' रहा करता था। **कूल**=किनारा। **त्रिबिध**=शीतल, मन्द और सुगन्धित तीन प्रकार की। **समीर**=वायु। **जुगल**=दोनों (राधा कृष्ण)। **लागिहौं**=लगूँगा। **उड़िहै**=उड़ेगा। **नूतन**=नया। **चीर**—वस्त्र।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि यमुना के कालीदह नामक घाट के किनारे की शीतल, मन्द, सुगन्धित तीन प्रकार की वायु कब बन जाऊँगा। और इस प्रकार वायु बनकर राधाकृष्ण के अंगों का इस प्रकार से कब स्पर्श करूँगा जिससे कि उनके नये वस्त्र उड़ने या लहराने लगें।

मिलिहैं कब अँग छार ह्वै, श्रीबन बीथिन धूरि।
परिहैं पद-पंकज जुगुल, मेरी जीवन-मूरि ॥५॥

शब्दार्थ—**छार**=धूल, राख। **ह्वै**=होकर। **श्रीबन**=वृन्दावन का एक बाग। **बीथिन**=मार्गों या पगडंडियों में। **धूरि**=धूल। **परिहैं**=पड़ेंगे। **पदपंकज**=चरण-कमल। **जीवनमूरि**=जीवन के आधार।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि मैं राख या धूल बनकर

कब ब्रज के श्रीवन के मार्गों या पगडंडियों में जाऊँगा ताकि मेरे जीवना-धार श्री राधा-कृष्ण के चरण-कमल मुझ पर पड़ते रहें।

भूषण

दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्री सिवराज भुवाल ॥१॥

शब्दार्थ—जू=जी। भे=हुए। गोपाल=श्रीकृष्ण। प्रगटे=प्रगट हुए। साहि=शाहजी, शिवाजी के पिता। सिवराज=शिवाजी। भुवाल=राजा।

भावार्थ—महाकवि भूषण कहते हैं कि महाराज दशरथ के श्रीराम-चन्द्र जी उत्पन्न हुए और वसुदेव के श्रीकृष्ण प्रकट हुए, वैसे ही शाहजी के श्री शिवाजी महाराज प्रकट हुए।

गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाज गत, कीरति सिवा खुमान ॥२॥

शब्दार्थ—गरब=गर्व। कत=क्यों। हीरक=हीरा। छीर=क्षीर, दूध। इती=इतनी। समाज गत=समाज में व्याप्त। कीरति=यश खुमान=शिवाजी की उपाधि।

भावार्थ—महाकवि भूषण चाँदनी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे हीरे और दूध के समान स्वच्छ चाँदनी! तू अपनी निर्मलता का अभिमान क्यों करती है; क्यों सारे समाज में व्याप्त श्री शिवाजी महाराज की तेरे ही समान स्वच्छ और निर्मल कीर्ति सारे समाज में फैल रही है। भाव यह कि शिवाजी का यश चाँदनी से भी अधिक स्वच्छ और निर्मल है।

आयो आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नावँ।
बैरि नारि दृग जलन सों, बूड़ि जात अरि गावँ ॥३॥

शब्दार्थ—**आयो**=आया। **तो**=तेरा। **नावँ**=नाम। **बैरी**=शत्रु। **नारी**=स्त्री। **दृग**=आँख। **दृगजलन**=आँख के पानी, आँसू। **बूड़ि जात**=डूब जाते हैं। **अरि**=शत्रु।

भावार्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी महाराज! आप गाँव के पास में आ पहुँचे हैं, यह बात सुनते ही शत्रुओं की स्त्रियों की आँखों के जल अर्थात् आँसुओं से उनके गाँव डूब जाते हैं। भाव यह कि शत्रुओं की स्त्रियाँ जब यह सुन लेती हैं कि शिवाजी महाराज चढ़ाई करते-करते हमारे गाँव के पास तक आ पहुँचे हैं, तो उन्हें निश्चय हो जाता है कि उनके पति अब अवश्य युद्ध में मारे जाएँगे। इसलिए वे शोकाकुल होकर इतना रोती हैं कि सारे गाँव-के-गाँव ही उनके आँसुओं में बह जाते हैं।

कबि तरुबर सिब सुजस रस, सींचे अचरज मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥४॥

शब्दार्थ—**तरुवर**=वृक्ष। **कबि-तरुबर**=कविरूपी वृक्ष। **सिब**=शिवाजी महाराज। **सुजस रस**=सुन्दर यश रूपी जल। **अचरज**=आश्चर्य। **प्रथम**=पहले।

भावार्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कवि रूपी वृक्ष शिवाजी के सुन्दर यश रूपी जल से इस प्रकार सींचे गये हैं कि उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य होता है; और क्योंकि वृक्षों के तो पहले फूल लगते हैं, फिर फल लगते हैं पर यहाँ पर शिवाजी की प्रसन्नता से कवियों को पुरस्कार रूपी फल पहले ही मिल जाता है और उसके इस परिणामस्वरूप आनन्द से वे खिल उठते हैं। इसलिए फल के पश्चात् फूल होता है, यह कहा गया है। यही आश्चर्य का विषय है।

तुही साँच द्विजराज है, तेरो कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान ॥५॥

शब्दार्थ—**साँच**=सच्चा। **द्विजराज**=चन्द्रमा और ब्राह्मण।

कला=किरण और काव्यकला। प्रमान=प्रमाणित है; मानी जाती है। सिव=शिवजी और शिवाजी महाराज। सकल=सब। जहान=संसार।

भावार्थ—भूषण कवि किसी ऐसे ब्राह्मण कवि को जिस पर शिवाजी महाराज की प्रभुता हो और चन्द्रमा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे चन्द्रमा! तू ही सच्चा द्विजराज है। तेरी कलाएँ या किरणें संसार में प्रमाणित हैं। तुझ पर भगवान् शिव ने यह कृपा की है कि तुझे अपने मस्तक पर धारण किया है। इस बात को सारा संसार जानता है।

कवि के पक्ष में इसका अर्थ इस प्रकार होगा—हे सुकवि! तू ही सब द्विजों का राजा है अर्थात् सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है। तेरी काव्य-कला संसार में प्रमाणित मानी जाती है। इस बात को सारा संसार जानता है कि तुझ पर शिवाजी महाराज की बड़ी भारी कृपा है।

सहजो बाई

निश्चय यह मन डूबता, लोभ मोह की धार।
चरनदास सतगुर मिलै, सहजो लई उबार ॥१॥

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि मेरा मन निश्चित रूप से लोभ और मोह की धारा में डूब जाता है पर चरणदास सद्गुरु मुझे मिल गये जिन्होंने मेरा उद्धार कर दिया।

सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनंत।
आदि अंत मध एक ही, सूझ परै भगवंत ॥२॥

शब्दार्थ—दीपक=दीया। नैना=आँखें। अनंत=बहुत से। आदि=शुरू में। मध=बीच में। भगवंत=भगवान्।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि सद्गुरु देव ने मुझको ज्ञान का दीपक दे दिया जिससे मेरी अनन्त आँखें हो गईं। अब मुझे आदि,

मध्य और अन्त में सर्वत्र वह एक ही प्रभु दिखाई देता है।

जब चेतै तब ही भला, मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगत मिलै, सहजो ऊँचे भाग ॥३॥

शब्दार्थ—चेतै=होश सँभाले। मोह नींद=मोह रूपी निद्रा। ऊँचे भाग=बड़े भाग्य।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि हे मनुष्य! तू जभी होश में आ जायगा तभी अच्छा है, तू मोह रूपी निद्रा से जाग जा और सज्जनों की संगति कर; क्योंकि यह बड़े भाग्यों से ही प्राप्त होती है।

दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन।
चेतन्नता हिरदै बसै, सहजो सीतल बैन ॥४॥

शब्दार्थ—दीर्घ=बड़ी। महा=बड़ी। सील=सुशीलता। सीतल=ठंडे। बैन=वचन।

भावार्थ—जिनकी बुद्धि बड़ी विशाल है, जिनके नेत्रों में सुशीलता रहती है, हृदय में ज्ञान है और वचनों में शीतलता और मधुरता है वे ही महापुरुष हैं।

ना सुख दारा सुत महल, लहै न सुख बनि भूप।
साधु सुखी सहजो कहै, तृसना रोग स्वरूप ॥५॥

शब्दार्थ—दारा=स्त्री। सुत=पुत्र। लहै=प्राप्त करके। भूप=राजा। तृसना=तृष्णा, वासना।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि स्त्री, पुत्र और महलों के प्राप्त कर लेने में सुख नहीं है और न राजा बन जाने में ही सुख है, वास्तव में साधु ही सुखी होता है; क्योंकि उसे कोई तृष्णा नहीं होती और तृष्णा रोगों का कारण है।

साधु वृक्ष बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगत बाग में, नाना फल रहे भूल ॥६॥

शब्दार्थ—बानी=वाणी, शब्द। चर्चा=भगवान् का गुणगान। संगत=साधुओं की संगति।

भावार्थ—साधु रूपी वृक्ष हैं, उनकी वाणी ही मानो कलियाँ हैं और भगवान् की चर्चा मानो फूल खिल रहे हैं। सज्जनों की संगति रूपी बाग में अनेक प्रकार के फल पक रहे हैं।

बैठ बैठ बहुतक गये, जग तरवर की छाँहि।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुरत जाहिं ॥७॥

शब्दार्थ—बहुतक=बहुत से। तरवर=वृक्ष। बटाऊ=यात्री। बाट=मार्ग।

भावार्थ—संसार रूपी वृक्ष की छाया में बहुत से लोग बैठ-बैठ कर चले गये। मार्ग के यात्री रूपी ये प्राणी एक दूसरे से कुछ समय मिलकर फेर बिछुड़ जाते हैं।

अभिमानी नाहर बड़ो, भ्रमत फिरत उजार।
सहजो नन्हीं बाकरी, प्यार करै संसार ॥८॥

शब्दार्थ—नाहर=शेर। भ्रमत=घूमता हुआ। उजार=जंगल।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि अभिमानी पुरुष को, उस बड़े भारी सिंह के समान जो उजाड़ जंगलों में घूमता फिरता है, कोई भी नहीं छुता, सब उससे डरते हैं पर अभिमान रहित नन्हीं-सी बकरी को सारा संसार प्यार करता है।

सीस कान मुख नासिका, ऊँचै ऊँचै ठाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥९॥

शब्दार्थ—नासिका=नाक। ठाँव=स्थान।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि सिर, कान, मुख और नाक सब ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर हैं, किन्तु इनको कोई नहीं पूजता बल्कि

पाँव की सब लोग पूजा करते हैं क्योंकि वे सबसे नीचे हैं भाव यह कि अभिमानी को कोई नहीं पूछता।

प्रेम दिवाने जो भये, पलट गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहाँ रंक कहँ भूप ॥१०॥

शब्दार्थ—दिवाने=पागल। पलट गयो=बदल गया। रंक=ग़रीब। भूप=राजा।

भावार्थ—जो मनुष्य प्रेम में पागल हो गये हैं उनका सारा रूप ही बदल जाता है। यहाँ तक कि उसे राजा तथा रंक में कोई भेद मालूम ही नहीं होता।

साहन को तो भै घना, सहजो निरभै रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निशंक ॥११॥

शब्दार्थ—भै=भय, डर। निरभै=निर्भय, निडर। कुंजर=हाथी।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि शाहों या धनवानों को तो बहुत अधिक भय रहता है पर ग़रीब सदा निडर ही रहते हैं। जैसे कि हाथी के पैरों में तो बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं पर कीड़ी सर्वत्र निडर होकर घूमती है।

दयाबाई

जो पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूँ मार करि, रामरूप जस लेत ॥१॥

शब्दार्थ—दृढ़=मज़बूत। जस=यश।

भावार्थ—सज्जन पुरुष जो भी पाँव उठाते हैं मज़बूती से उठाते हैं, एक बार उठाये हुए पाँव को फिर पीछे नहीं रखते हैं। दयाबाई कहती हैं कि सज्जन अहंकार को मार कर भगवान् का रूप बन जाते हैं और यश प्राप्त करते हैं।

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवै केहि ओर।
छिन उट्ठूँ छिन गिर परूँ, राम दुखी मन मोर ॥२॥

शब्दार्थ—बौरी=पगली । ह्वै=होकर । चितवत=देखती ।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि मैं पागल होकर देखती फिरती हूँ, कि भगवान् किस ओर से आते हैं ? कभी उठती हूँ, कभी गिर पड़ती हूँ। हे राम ! आपके विरह में मेरा मन बड़ा दुःखी हो रहा है।

प्रेम पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।
दया दया करि देत हैं, श्रीहरि दर्शन सोय ॥३॥

शब्दार्थ—पुंज=समूह ।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि जहाँ पर प्रेम प्रकट होता है वहाँ भगवान् स्वयं प्रकट हो जाते हैं। भगवान् फिर दया करके उसे स्वयं दर्शन दे देते हैं।

दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहीं बैकुण्ठ बेवान।
चरन कमल चित चाहत हौं, मोहि तुम्हारी आन ॥४॥

शब्दार्थ—तजि=छोड़कर। बेवान=विमान । आन=सौगंध ।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि हे भगवन्, मैं तुम्हारी सौगंध खाकर कहती हूँ कि मुझे दुःख को छोड़कर सुख की इच्छा नहीं है और न मुझे बैकुण्ठ के विमान की ही इच्छा है। मैं तो आपके चरण-कमलों में ही चित्त लगाना चाहती हूँ।

साधु संग में सुख बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥५॥

शब्दार्थ—छिन=क्षण। **कलमल**=कल्मष, पाप। **डारैं खोय**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि यदि कोई जान ले तो उसे ज्ञात होगा कि साधुओं की संगति में बड़ा भारी सुख है। सत्संगति का आधा क्षण भी मनुष्य के सब पापों को नष्ट कर देता है।